ISSN: 2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

वनस्पतिविज्ञान विशेषांक

अंक - 111

अक्तूबर-दिसंबर 2019

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY
MINISTRY OF EDUCATION
(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)
GOVERNMENT OF INDIA

© भारत सरकार, 2019
ISSN: 2320-7736

प्रकाशक:
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार, पश्चिमी खंड.7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट: www.cstt.education.gov.in
www.csttpublication.mhrd.gov.in

बिक्री हेतु पत्र व्यवहार का पता:
बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्ण पुरम
नई दिल्ली-110066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान:
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग,
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054

सदस्यता शुल्क *		
	सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए	**विद्यार्थियों के लिए**
प्रति अंक	₹ 14.00	₹ 8.00
वार्षिक चंदा	₹ 50.00	₹ 30.00
पाँच वर्ष	₹ 250.00	₹ 150.00
दस वर्ष	₹ 500.00	₹ 300.00
बीस वर्ष	₹ 1000.00	₹ 600.00

नोट: विज्ञान गरिमा सिंधु' एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है- हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी व अन्य छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएँ, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक मंडल की इनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

यह पत्रिका वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार-प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकाशित की जाती है।

*** ऑनलाईन निशुल्क**

अध्यक्ष की कलम से

वर्तमान युग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का युग है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह कृषि का हो, चिकित्सा का हो, पर्यावरण का हो, अंतरिक्ष का हो अथवा जैवप्रौद्योगिकी का हो, सभी में मिली उपलब्धियों की जानकारी छात्रों, शिक्षकों तथा जनसामान्य तक हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में पहुँचाना वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का कर्तव्य है। इस हेतु, आयोग कई महत्वपूर्ण योजनाओं जैसे - विज्ञान एवं अन्य विषयों में शब्दावली और परिभाषा कोशों का निर्माण, विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य–पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों आदि का निर्माण और समय–समय पर विषयवार शब्दावली कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा संगोष्ठियों का आयोजन विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों आदि में करता रहता है।

इसी उद्देश्य की पूर्ति में आयोग की त्रैमासिक पत्रिका 'विज्ञान गरिमा सिंधु' भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इसमें आधार विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से संबंधित ज्ञानवर्धक लेखों को प्रकाशित किया जाता है। पूर्व में इस पत्रिका के अनेक अंक जैवप्रौद्योगिकी विशेषांक, कृषि विशेषांक, गणित विशेषांक, भौतिकी विशेषांक आदि के रूप में प्रकाशित हुए हैं। इसी क्रम में पत्रिका का 111 वां अंक 'वनस्पतिविज्ञान विशेषांक' आपको सौंपते हुए मुझे हर्ष हो रहा है।

प्रस्तुत विशेषांक में वनस्पतिविज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे - आनुवंशिकी, पादप-कार्यिकी, कवक विज्ञान, जैवप्रौद्योगिकी, आर्थिक वनस्पतिविज्ञान, जैवरसायन, पर्यावरण विज्ञान, सूक्ष्म जैविकी आदि से संबंधित 20 लेखों को शामिल किया गया है तथा दो लेख शब्दावली निर्माण प्रक्रिया से संबंधित हैं। आयोग द्वारा तैयार की गई वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली के लगभग 1000 शब्दों व इनके हिंदी पर्यायों को विशेषांक के अंत में परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित किया गया है। इस संदर्भ में छात्रों, शिक्षकों, वैज्ञानिकों आदि से अपेक्षा करता हूँ कि वे प्रामाणिक एवं मानक शब्दावली का अधिक से अधिक प्रयोग कर सहयोग प्रदान करेंगे।

इस विशेषांक हेतु लेखकों ने हिंदी में विज्ञान लेखन के प्रति विशेष रुचि दिखाते हुए समय पर लेख भेजे, इसके लिए हम उनके आभारी हैं। प्रयास था कि यह अंक समय से प्रकाशित हो लेकिन कोविड-19 वैश्विक महामारी के कारण इसमें विलंब हुआ है।

इस कार्य को पूर्ण रूप से संपादित कर प्रकाशन योग्य तैयार करने का उत्तरदायित्व डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, सहायक निदेशक द्वारा निभाया गया है। मैं उन्हें तथा संपादन विशेषज्ञ समिति; जिन्होंने परिश्रमपूर्वक इस विशेषांक की सामग्री को इस रूप में प्रस्तुत करने में सहयोग दिया है और जिससे पत्रिका की गरिमा में वृद्धि हुई है; के प्रति धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

आशा है, यह विशेषांक विशेष रूप से वनस्पतिविज्ञान के छात्रों, शोधार्थियों, शिक्षकों के लिए अधिक उपयोगी होगा। इस संबंध में आपके सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

(प्रो. एम. पी. पूनियां)
30/09/21
अध्यक्ष

संपादकीय

वनस्पति के अभाव में विश्व में जीवन की कल्पना ही करना असंभव है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख है कि वनस्पतियाँ प्राण हैं – "प्राणो व वनस्पतिः" वनस्पतियाँ हमें ऑक्सीजन देती हैं अतः प्राणस्वरूप हैं। इनकी रक्षा करना अनिवार्य है। इन ग्रंथों में वनस्पतियों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। महर्षि चरक ने प्राणियों की भाँति वृक्षों में भी चेतना का होना स्वीकार किया, "तच्चेतनावद् चेतनञ्य।" उनके अनुसार वृक्षों में भी इंद्रिय हैं, अतः इनमें चेतना है। इसे जानना चाहिए, "अत्र सेंद्रियत्वेन वृक्षादीनामपि चेतनत्वम् बोद्धकम्।" आचार्य उदयन के शब्दो में, "वृक्षों के भी मानव शरीर के समान अनुभव निश्चित होते हैं - जीवन, मरण, स्वप्न, जागरण, रोग, औषधि प्रयोग, बीज, सजातीय अनुबंध, अनुकूल वस्तु स्वीकार व प्रतिकूल वस्तु का अस्वीकार।"

आज की ज्वलंत समस्या 'वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग)' को नियंत्रित करने में पेड़-पौधे ही एकमात्र विकल्प हैं। सामान्य जन भी इनकी उपयोगिता को समझकर अब घर के आसपास और घर में भी हरियाली-बागवानी करने में रुचि लेने लगा है। प्रदूषण से होने वाली हानि को ध्यान में रखते हुए उसने पादपों के-संरक्षण और प्रवर्धन के प्रति प्रयास शुरु कर दिए हैं। पर्यावरण-सुरक्षा के लिए यह चिंता स्वाभाविक भी है।

किसी भी राष्ट्र की संपन्नता उसकी दृढ़ अर्थ व्यवस्था पर निर्भर होती है। वनस्पति-संसाधन का सीधे–सीधे उपयोग और वनस्पति-प्रसंस्करण का उद्योग अर्थ व्यवस्था को प्रभावित करता है। पादपों के प्रति मनुष्य की आस्था आज भी वृक्ष-पूजा के रूप में देखी जाती है। सभ्यता के विकास में पादपों का योगदान सर्वाधिक है किंतु मनुष्य ने इस विकास के दौरान वनस्पति जगत को ही सर्वाधिक हानि पहुँचाई है। मानव और पादपों के इस अन्योन्याश्रित संबंध के संतुलन से ही पृथ्वी ग्रह को बचाए रखा जा सकता है।

प्रस्तुत विशेषांक में अधिकांश लेख अनुप्रयुक्त वनस्पतिविज्ञान से संबंधित हैं तथा कुछ लेख शोधपरक हैं। चूंकि आयोग का मुख्य कार्य मानक शब्दावली का निर्माण करना है इसलिए शब्दावली पर दो विशेष लेखों को भी सम्मिलित किया गया है ताकि पाठकों को आयोग के क्रिया-कलापों की एक झलक, इन लेखों के माध्यम से दिखाई जा सके। आयोग द्वारा प्रकाशित वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली में से लगभग 1000 शब्द व उनके हिंदी पर्यायों का चयन कर इस विशेषांक के अंत में परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित किया गया है।

विविध लेखों के माध्यम से वनस्पतिविज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे- जैवप्रौद्योगिकी, पादप शरीर क्रिया विज्ञान, अणुजैविकी, सूक्ष्मजैविकी, कवक विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान लोकवनस्पति विज्ञान, आर्थिक वनस्पति विज्ञान आदि को समेटने का प्रयास किया गया है ताकि विशेषांक का फलक विस्तृत रह सके। इस दिशा में लेखकों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ है जिस कारण यह विशेषांक गरिमापूर्ण बन पाया। इसके लिए मैं सभी सम्मानित लेखकों का हृदय से आभारी हूँ।

विशेषांक संपादन समिति के विशेषज्ञों का धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिनके अमूल्य सहयोग के कारण इसे इस रूप में प्रस्तुत करना संभव हो पाया।

मैं आयोग के अध्यक्ष के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ कि उन्होंने इस विशेषांक के लिए मुझे प्रेरित किया तथा समय-समय पर उचित मार्गदर्शन किया।

आशा करता हूँ कि इस अंक में समाविष्ट उच्च स्तरीय, ज्ञानवर्धक और शोधपरक लेख वैज्ञानिकों, शिक्षकों छात्रों, शोध छात्रों तथा अन्य पाठक वर्ग के लिए न केवल रुचिकर होंगे बल्कि इनके उनसे ज्ञान वृद्धि भी होगी। विश्वास है कि सुधी पाठकों से इस विशेषांक के बारे में हमें सम्मतियाँ प्राप्त होंगी।

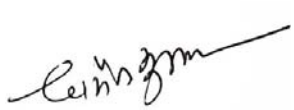

(डॉ. धर्मेन्द्र कुमार)
सहायक निदेशक (विषय)
dkcstt@gmail.com

संपादन एवं समन्वय

प्रधान संपादक

प्रो. एम. पी. पूनियां

अध्यक्ष,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादक

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार

सहायक निदेशक (विषय)

प्रकाशन

डॉ. पी. एन. शुक्ल

सहायक निदेशक

श्री राजेश्वर महतो

सहायक

संपादन विशेषज्ञ समिति

1 प्रोफेसर कमल कपूर

सेवानिवृत्त, वनस्पतिविज्ञान विभाग,

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय

उदयपुर (राज.)

2 डॉ. राजेश कुमार शर्मा

विभागाध्यक्ष, वनस्पतिविज्ञान विभाग,

एस. एस. वी. (पी.जी.) कॉलेज,

हापुड़ (उ.प्र.)

3 डॉ. पूनम पालीवाल

वनस्पतिविज्ञान विभाग,

आई. पी. महाविद्यालय

बुलंदशहर (उ.प्र.)

4 श्री. एस. सी. सक्सेना

पूर्व उपनिदेशक

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

नई दिल्ली

5 डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया

पूर्व उपनिदेशक (भाषा)

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

नई दिल्ली

अनुक्रम

क्र.सं	विषय संख्या	लेखक	पृष्ठ
1	अपवादस्वरुप पादप प्रजनन: असंगजनन, बहुभ्रूणता एवं अनिषेकजनन	डॉ. कमल कपूर एवं डॉ. प्रेमलता विकल	1
2	आण्विक वर्गिकी के सिद्धांत	डॉ. नवीन मालवीय एवं डॉ.आलोक तिवारी	10
3	सूक्ष्मजीव तथा किण्वित खाद्य उत्पाद	डॉ. तनुजा	19
4	ऑर्किड जगत	प्रो. गणेश शंकर पालीवाल	27
5	पादप वर्णक : जीवन का एकमात्र आधार	डॉ. धर्मेन्द्र कुमार	32
6	परंपरागत आनंददायक पेय चाय एवं इसकी शक्तिवर्धक प्राकृतिक अनूठी किस्में	डॉ. पूनम पालीवाल	39
7	नाइट्रिक ऑक्साइड: पादपों में संश्लेषण एवं महत्व	डॉ. अनिता रानी एवं डॉ. अरूण कुमार	43
8	पादप घाव	डॉ. राजेश कुमार शर्मा	53
9	जीर्णता एवं क्रमादेशित कोशिका मृत्यु	डॉ. अमिता शर्मा	56
10	पर्यावरण हितैषी जैव-उर्वरक	डॉ. मुकेश कुमार	60
11	पादप रोग निवारण	डॉ. आशीष तेजस्वी एवं निशांत वशिष्ठ	71
12	पर्यावरण सरंक्षण में सूक्ष्मजैविकीय योगदान	हर्षा शर्मा एवं डॉ. अवधेश कुमार कौशल	74
13	मानवजाति वनस्पतिविज्ञान एवं उसका महत्व	डॉ. सुरेश कुमार, अमृता सूर्यवंशी एवं डॉ. वंदना	79
14	आयुर्वेद में औषधीय पत्तियाँ : एक अनुशीलन	डॉ. अमर कुमार	83
15	चिकित्सा के क्षेत्र में हल्दी का महत्वपूर्ण योगदान	विशाखा बर्मन, ख्याति लहरी, आस्था, मुकेश कुमार एवं वैशाली	93
16	आधुनिक युग का एक महत्वपूर्ण पादप उत्पाद: रबर	डॉ. प्रेमलता विकल	102
17	गिलोय (टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया): प्राकृतिक अमृत	डॉ.शुक्ला सलूजा एवं डॉ.योगेन्द्र कुमार गौतम	108
18	मोक्षदायिनी क्षिप्रा जल का स्वास्थ्य : एक अध्ययन	प्रो. डी.एम.कुमावत एवं मनीष कुमार शर्मा	112
19	जलवायु परिवर्तन: कृषकों की समस्याएँ और उनका समाधान	डॉ. रेनू राजेश	127
20	लीची बीज अंकुरण पर जैव उर्वरक का प्रभाव	सुश्री नंदिनी कुमारी एवं डॉ. पुष्पांजलि खरे	140
21	विषयों का सामान्य वर्गीकरण एवं शब्दावली परिदृश्य	श्री सतीश चंद्र सक्सेना	147
22	पारिभाषिक शब्दावली: एक सिंहावलोकन	प्रो. सूरजभान सिंह	154
23	वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली (परिशिष्ट)	आयोग के प्रकाशन से	165

अपवादस्वरूप पादप प्रजनन : असंगजनन, बहुभ्रूणता एवं अनिषेकजनन

डॉ. कमल कपूर एवं डॉ. प्रेमलता विकल

प्रोफेसर (से.नि.), वनस्पतिविज्ञान विभाग

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001 (राजस्थान)

ई-मेल : kmlkapoor@rediffmail.com

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वनस्पतिविज्ञान विभाग

सेठ रंगलाल कोठारी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजसमंद-313324 (राजस्थान)

ई-मेलः vikal16prem@gmail.com

आवृतबीजी पौधों में पादप द्विगुणित बीजाणुद्भिद् पादप के रूप में अधिक जीवन व्यतीत करता है जबकि अगुणित युग्मकोद्भिद् के रूप में अल्पकालीन ही होता है। बीजाणुद्भिद् पादप पत्ती, तना व जड़ में विभेदित होकर अगुणित युग्मकोद्भिद् अवस्था में नर व मादा युग्मकों का निर्माण करता है। इस प्रकार पौधों के जीवन चक्र में इन द्विगुणित व अगुणित अवस्थाओं का नियमित रूप से पीढ़ी एकांतरण होता है। अर्धसूत्री विभाजन तथा युग्मक संलयन लैंगिक जनन के प्रमुख लक्षण हैं। इस जनन प्रक्रिया में द्विगुणित बीजाणुद्भिद् पादप अनेक अगुणित युग्मकों का निर्माण करता है जिसके संलयन से द्विगुणित युग्मनज बनता है। अधिकांश पादपों में इस तरह का वास्तविक लैंगिक चक्र पाया जाता है, परंतु अनेक पादपों में उपरोक्त विधि अलैंगिक विधियों द्वारा प्रतिस्थापित कर दी जाती है जिससे अर्धसूत्री विभाजन व निषेचन के बिना ही भ्रूण का निर्माण हो जाता है।

विंकलर (1908) के अनुसार लैंगिक जनन का ऐसा किसी विधि द्वारा प्रतिस्थापन, जिसमें अर्धसूत्री विभाजन तथा युग्मक संलयन नहीं हो, असंगजनन (apomixis) कहलाता है। इस प्रकार का जनन करने वाली पादप प्रजातियाँ, लैंगिक जनन करने वाली पादप प्रजातियों से भिन्न नहीं होती हैं अपितु लैंगिक जनन करने वाली पादप प्रजातियाँ ही कई बार कुछ विशेष परिस्थितियों में असंगजनन की क्रिया प्रदर्शित करती हैं। अंसगजनन करने वाली पादप प्रजातियाँ असंगजनिक तथा इस प्रकार की जनन क्रिया को असंगजनन कहते हैं।

असंगजनन के अंतर्गत सभी अलैंगिक विधियों को सम्मिलित किया गया है तथा इसी आधार पर असंगजनन को दो प्रमुख श्रेणियों में विभेदित किया है-

(1) कायिक जनन- इसमें पौधे का प्रवर्धन बीज के अतिरिक्त पौधे के किसी अन्य भाग से होता है तो उसे कायिक जनन कहते हैं। इसमें पत्ती, तना, जड़ द्वारा या उसके किसी भाग द्वारा नये पादप का

निर्माण होता है। खेती में प्रयुक्त होने वाले पौधे जैसे, प्याज, आलू, गन्ना, अदरक, अरबी, हल्दी, पुदीना व केले आदि में कायिक जनन ही जनन की मुख्य विधि है।

(2) अनिषेकबीजता- इस प्रकार की जनन प्रक्रिया में पादप प्रवर्धन या वंशवृद्धि बीज निर्माण के द्वारा ही होती है, लेकिन इन पौधों में भ्रूण परिवर्धन के समय अर्धसूत्री विभाजन व युग्मक संलयन नहीं होता है जो कि लैंगिक जनन क्रिया के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। अतः वास्तव में असंगजनन या एपोमिक्सिस का तात्पर्य अनिषेकबीजता से ही है। अनिषेकबीजता के अंतर्गत बीजांड की कोई भी द्विगुणित कोशिका या असंगजनिक द्विगुणित भ्रूणपोष से सीधे ही बीज का निर्माण हो जाता है तथा ये बीज भी अन्य सामान्य बीजों की तरह ही द्विगुणित होते हैं।

असंगजननता के प्रकार- माहेश्वरी (1950) के अनुसार असंगजननता को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) अनावर्ती असंगजननता

(ii) आवर्ती असंगजननता

(iii) अपस्थानिक भ्रूणता

(i) अनावर्ती असंगजननता- इस तरह की असंगजनन में गुरुबीजाणु मातृ कोशिका में सामान्य अर्धसूत्री विभाजन होता है जिसके फलस्वरूप एक गुरुबीजाणु अगुणित स्त्री युग्मकोद्भिद अर्थात भ्रूणकोष बनाता है। यहाँ भ्रूणकोष की अगुणित अंडकोशिका (अगुणित अनिषेकजनन) या भ्रूणकोष की कोई भी अन्य कोशिका (अगुणित अपयुग्मन) भ्रूण का निर्माण करती है। इस तरह से निर्मित भ्रूण अगुणित होते हैं। इनमें बीज बंध्य उत्पन्न होते हैं जिससे ये अगली संतति उत्पन्न नहीं कर पाते। उदाहरण, आर्जीमोन मैक्सिकाना तथा फैसिओलस वल्गेरिस।

(क) अगुणित अनिषेकजनन- अनिषेचित अगुणित अंडकोशिका से भ्रूण बनने की प्रक्रिया को अगुणित अनिषेकजनन कहते हैं। जोरगेन्सन (1928) ने सोलेनम की अनेक प्रजातियों में अगुणित अनिषेकजनन का विस्तृत रूप से अध्ययन किया था। इसमें अंडकोशिका में निषेचन नहीं होता है यद्यपि भ्रूणकोष में पराग नलिका का नर युग्मक सहित अंडकोशिका में प्रवेश भी होता है लेकिन संलयन नहीं हो पाता है। केवल पराग नलिका के भ्रूणकोष में प्रवेश करते ही अगुणित अंड में विभाजन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है जिसके फलस्वरूप एक अगुणित भ्रूण का निर्माण हो जाता है।

हैगरप (1945) ने अपने अध्ययन में पाया कि ऑर्किस मैक्यूलेटा, इपिपेक्टस लेटिफोलिया, सिफेलेन्थीरा डेमेसोनियम, प्लेटेन्थीरा क्लोरेन्था आदि पौधों में बीजांडों में अनेक पराग नलिकाएँ प्रविष्ट होती हैं और निषेचन की क्रिया के पश्चात् सामान्यरूप में द्विगुणित भ्रूण का निर्माण होता है। परंतु उपर्युक्त प्रजातियों के कुछ पौधों में यह पाया गया कि भ्रूणकोष में एक भी पराग नलिका प्रवेश नहीं करती है या ऐसे समय पर प्रवेश करती है जब निषेचन संभव न हो या देर से प्रवेश करने की स्थिति में भी अंडकोशिका विभाजित होकर अगुणित भ्रूण का निर्माण कर लेती है।

(ख) अगुणित अपयुग्मन- भ्रूणकोष में अंडकोशिका के अतिरिक्त किसी भी अन्य कोशिका से भ्रूण का विकास होता है तो वह जनन प्रक्रिया अगुणित अपयुग्मन कहलाती है। इसमें भ्रूणकोष में स्थित संरचनाएँ जैसे- प्रतिमुखी कोशिकाओं या सहायक कोशिकाओं से भी अगुणित भ्रूण का निर्माण हो जाता है। बर्जीनिया, लिलियम व ऐरेथ्रिया की कुछ प्रजातियों में कभी-कभी एक निषेचित अंड से निर्मित द्विगुणित भ्रूण व दूसरा सहायक कोशिकाओं से निर्मित अगुणित भ्रूण उपस्थित रहता है।

(ii) आवर्ती असंगजननता - इस प्रकार की असंगजननता में भ्रूणकोष द्विगुणित होते हैं तथा ये प्रप्रसूतक (जनन अपबीजाणुता) अथवा बीजांडकाय (कायिक अपबीजाणुता) की द्विगुणित कोशिकाओं से विकसित होते हैं। इसमें बीजांडकाय से विकसित प्रप्रसूतक या गुरुबीजाणु मातृ कोशिका अर्धसूत्री विभाजन के बिना ही सीधे द्विगुणित भ्रूणकोष में परिवर्धित हो जाती है। इस प्रकार के भ्रूणकोष की सभी कोशिकाएँ द्विगुणित होती हैं तथा कोई भी कोशिका बिना निषेचन व संलयन के भ्रूण का निर्माण कर लेती है। आवर्ती असंगजननता को दो वर्गों में बाँटा गया है-

(क) जनन अपबीजाणुता- प्रप्रसूतक की द्विगुणित कोशिकाओं से द्विगुणित भ्रूण की उत्पति जनन अपबीजाणुता कहलाती है। पार्थेनियम अर्जेन्टेटम में जनन अपबीजाणुता पाई जाती है। इस पौधे की दो प्रजातियाँ हैं। एक प्रजाति में (द्विगुणित=36) नियमित विभाजन होकर अगुणित मादा युग्मकोद्भिद का विकास होता है व सामान्यरूप से निषेचन क्रिया होकर भ्रूण व भ्रूणपोष का निर्माण होता है। इसके विपरीत दूसरी प्रजाति (द्विगुणित=72) में गुरुबीजाणु मातृकोशिका में अर्धसूत्री विभाजन द्वारा द्विक् अथवा बीजाणु चतुष्क नहीं बन पाते, अपितु यही मातृकोशिका आकार में वृद्धि करके भ्रूणकोष के रूप में कार्य करने लगती है। यहाँ पर अंडकोशिका बिना निषेचन के ही भ्रूण का निर्माण कर लेती है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि परागण की अनुपस्थिति में भ्रूणपोष का विकास नहीं होता यद्यपि भ्रूण का विकास परागण की अनुपस्थिति में हो जाता है। इसमें भ्रूणपोष का विकास नहीं होने से परिवर्धनशील भ्रूण को उचित व पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता है।

(ख) कायिक अपबीजाणुता- बीजांडकाय की कोशिकाओं से द्विगुणित भ्रूण का परिवर्धन कायिक अपबीजाणुता कहलाता है। हाइरेसियम में इस तरह की अपबीजाणुता पाई जाती है। इस पौधे में गुरुबीजाणु मातृ कोशिका में सामान्य रूप से अर्धसूत्री विभाजन होता है जिसके फलस्वरूप अगुणित गुरुबीजाणु चतुष्क बनता है। इसके पश्चात् तुरंत बीजांड के निभागीय सिरे पर उपस्थित एक बीजांडकायी सामान्य कायिक कोशिका के आकार में वृद्धि होती है जिससे गुरुबीजाणु चतुष्क संदलित हो जाता है और यह कायिक कोशिका एक उपबीजाणु भ्रूणकोष का निर्माण करती है। चूँकि इसके विकास में अर्धसूत्री विभाजन नहीं होता है अतः यह भ्रूणकोष द्विगुणित होता है व पौधे की अंडकोशिका बिना निषेचन के ही भ्रूण का निर्माण कर लेती है।

यह स्थिति कुछ अन्य पौधों जैसे मेलस, क्रीपिस एवं रेननकुलस आदि में भी पाई जाती है। इनमें अपबीजाणुक भ्रूणकोष, बीजांडकाय या अध्यावरण की कोशिकाओं से विकसित होते हैं।

(iii) अपस्थानिक भ्रूणता- जब भ्रूण का परिवर्धन भ्रूणकोष के अतिरिक्त बीजांड की किसी अन्य कोशिका से होता है तो इस प्रकार की प्रक्रिया को अपस्थानिक भ्रूणता या बीजाणुद्भिद मुकुलन कहते हैं। इस प्रकार की भ्रूणता में न तो युग्मकोद्भिद का निर्माण होता है और न ही पीढ़ी एकांतरण होता है। इस प्रक्रिया में अपस्थानिक भ्रूण का निर्माण करने वाली बीजांडकाय या अध्यावरण कोशिका का कोशिकाद्रव्य सघन व गाढ़ा हो जाता है और इसकी कोशिका सक्रिय रूप से विभाजित होकर कोशिकाओं का एक छोटा-सा समूह बनाती है, यही समूह भ्रूण का निर्माण करता है। बीजांड में सामान्य युग्मनजी भ्रूण वह अपस्थानिक भ्रूण दोनों का निर्माण साथ-साथ एक ही भ्रूणकोष में होता है, परंतु इनकी भ्रूणकोष में स्थिति निलंबक के आधार पर पहचानी जा सकती है। अपस्थानिक भ्रूण भ्रूणकोष में कहीं भी स्थित हो सकता है तथा इसमें निलंबक अनुपस्थित होते हैं। इसी ओर वास्तविक युग्मजी भ्रूण में निलंबक उपस्थित होते हैं तथा यह भ्रूणकोष के बीजांडद्वारी छोर पर स्थित होता है। सिट्रस में अपस्थानिक भ्रूणता सामान्य रूप में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त बक्सेसी, यूफोर्बिऐसी, कैक्टेसी तथा ऑर्किडेसी कुल के अनेक पौधों में अपस्थानिक भ्रूणता देखी जा सकती है।

द्विगुणित बीजाणुता या द्विगुणित अनिषेकजनन- द्विगुणित भ्रूण का निर्माण परागकण या पराग नलिका से उद्दीपन के बिना ही हो जाता है तथा इन पौधों में द्विगुणित भ्रूण का विकास द्विगुणित भ्रूणकोष की अंडकोशिका से बिना निषेचन के सीधे ही हो जाता है। इस तरह की प्रक्रिया एल्नस, बरमेनिया तथा एन्टीनेरिया में पाई जाती है। इन पौधों में द्विगुणित भ्रूणकोष की अंडकोशिका के अतिरिक्त अन्य कोशिकाओं जैसे सहायक कोशिका या प्रतिमुखी कोशिका से भी द्विगुणित भ्रूण विकसित हो जाता है, इस प्रक्रिया को द्विगुणित अपयुग्मन कहते हैं।

असंगजनन का महत्व- असंगजनन की प्रक्रिया में भ्रूण निर्माण में अद्र्धसूत्री विभाजन नहीं होता है जिसके कारण इन पौधों में गुणसूत्रों का पृथक्करण व पुनः संयोजन नहीं होता है, अतः असंगजनन प्रक्रिया से पौधों के कई लाभदायक गुणों को अनिश्चित काल के लिए सुरक्षित रखने में आसानी होती है। यहाँ पर एक नकारात्मक पक्ष यह है कि असंगजनन से पौधों में नई प्रजातियों का विकास अवरुद्ध व विविधता का अभाव हो जाता है। क्योंकि पौधों में अर्धसूत्री विभाजन के अभाव के कारण गुणसूत्रों का आदान-प्रदान नहीं हो पाता है जो कि विकास व विविधता के लिए जरूरी है। इन अविकल्पी असंगजनित पादप प्रजातियों में लाभदायक गुण तो अनिश्चितकाल के लिए सुरक्षित रहते हैं, लेकिन ये पादप विकास की प्रक्रिया से वंचित रह जाते हैं। इसके विपरीत विकल्पी असंगजनित पादप प्रजातियों में लैंगिक व अलैंगिक जनन प्रक्रियाएँ साथ-साथ होती हैं, इसलिए इन पादपों में असंगजननता का विशेष महत्व है।

बहुभ्रूणता (polyembryony) - आवृतबीजी पौधों में निषेचन की क्रिया के पश्चात् अंडाशय में उपस्थित प्रत्येक बीजांड एक बीज में विकसित होता है। सामान्यतया एक बीज में केवल एक ही भ्रूण पाया जाता है, लेकिन कभी-कभी कुछ बीजों में एक से अधिक भ्रूण उपस्थित रहते हैं। एक ही बीज में एक से अधिक भ्रूण पाए जाने की इस प्रवृत्ति को बहुभ्रूणता कहते हैं। प्रकृति में उन पौधों की संख्या अनेक है जिनमें बहुभ्रूणता पाई जाती है, अधिकांशतः पौधों में केवल एक ही परिपक्व भ्रूण उपस्थित रहता है बाकी सभी विकास की विविध अवस्थाओं में नष्ट हो जाते हैं। कुछ पौधों में एक से अधिक प्राक्भ्रूणों का निर्माण होता है, लेकिन बाद में एक भ्रूण को छोड़कर सभी अपह्रासित हो जाते हैं। उदाहरणस्वरूप नींबू, एलियम तथा क्रोटेलेरिया आदि में बहुभ्रूणता पाई जाती है।

एन्टोनी वान ल्यूवेनहॉक (1719) ने सर्वप्रथम बहुभ्रूणता का संतरे में अध्ययन किया था। कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने इसके पश्चात् बहुभ्रूणता का अध्ययन विस्तृत रूप में किया उनमें ब्रॉन (1859), श्नार्फ (1929), वैबर (1940), जोहान्सन (1950) तथा माहेश्वरी (1950) इत्यादि सम्मिलित हैं।

जब एक ही भ्रूणकोष में एक से अधिक भ्रूणों का निर्माण होता है तो वह वास्तविक बहुभ्रूणता कहलाती है तथा यदि एक ही बीजांड में अधिक भ्रूणकोष निर्मित होते हों तथा प्रत्येक भ्रूणकोष में एक भ्रूण का निर्माण होता हो तो वह आभासी बहुभ्रूणता कहलाती है।

बहुभ्रूणता की उत्पत्ति- आवृतबीजी पौधों में एक से अधिक भ्रूण का निर्माण चार विधियों से हो सकता है-

(i) विकासशील भ्रूण के एक से अधिक अंश या विदलन होने के कारण बहुभ्रूणता उत्पन्न हो जाती है। इसे विदलन भ्रूणता कहते हैं।

(ii) भ्रूणकोष में उपस्थित अंडकोशिका के अतिरिक्त किसी अन्य कोशिका से भ्रूण का निर्माण।

(iii) भ्रूणकोष में किसी भी द्विगुणित बीजाणुद्भिद कोशिका से भ्रूण का निर्माण।

(iv) बीजांड में उपस्थित एक से अधिक भ्रूणकोषों से भ्रूण का विकास होना।

1. विदलन भ्रूणता- बीजों में एक से अधिक भ्रूण निर्माण की यह सामान्य व सरलतम विधि है। इस प्रक्रिया में युग्मनज या प्राक्भ्रूण का विखंडन या विदलन दो या दो से अधिक भागों या अंशों में हो जाता है। बाद में प्रत्येक भाग या अंश एक स्वतंत्र भ्रूण का निर्माण करता है। विदलन भ्रूणता अनावृतबीजियों में सामान्य रूप से पाई जाती है जबकि आवृतबीजियों में यह तुलनात्मक रूप से कम पाई जाती है। जेफ्रे (1895) ने इस भ्रूणता को सर्वप्रथम लिलिएसी कुल के पादप इरिथ्रोनियम अमेरिकेनम में खोजा। इस पौधे में युग्मनज विभाजित होकर एक आधारीय कोशिका व दूसरी शीर्षस्थ कोशिका बनाती है। आधारीय कोशिका विभाजित होकर अनेक कोशिकाएँ बनाती है जो अलग-अलग भ्रूण का निर्माण करती है। इरिथ्रोनियम की ही तरह विदलन भ्रूणता ट्यूलिपा जस्नेरिआना, लिम्नोकेरिस इमार्जिनेटा तथा हेबिनेरिया प्लेटिफिल्ला आदि में भी पाई जाती है। आइसोटोमा लोंगीफ्लोरा में प्राक्भ्रूण की निलम्बक कोशिकाओं से अतिरिक्त भ्रूण का निर्माण होता है। सैन्टेलेसी कुल के पादप एक्सोकार्पस में भी निलंबक कोशिकाओं से अतिरिक्त भ्रूण विकसित होते हैं। भ्रूणवैज्ञानिको के अनुसार विदलन भ्रूणता सर्वाधिक ऑर्किडेसी कुल के सदस्यों में पाई जाती है। एक ऑर्किड यूलोफिया एपिडेन्ड्रा में विदलन भ्रूणता का अध्ययन स्वामी (1943) द्वारा किया गया। उनके अनुसार इसमें विदलन भ्रूणता तीन विधियों से संपन्न होती है-

(1) युग्मनज में अनेक अनियमित विभाजन होते हैं जिसके परिणामस्वरूप कोशिकाओं का एक समूह बन जाता है तथा इस समूह के निभागी छोर पर उपस्थित कोशिकाओं से अनेक भ्रूण बनते हैं।

(2) प्राक्भ्रूण की कोशिकाओं से अनेक कलिकाओं जैसी सूक्ष्म अतिवृद्धियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे अतिरिक्त भ्रूण का निर्माण होता हैं।

(3) तंतुवत् भ्रूण शाखित होकर प्रत्येक शाखा के शीर्ष पर एक भ्रूण का निर्माण करता है।

2. भ्रूणकोष में अंडकोशिका के अतिरिक्त किसी अन्य कोशिका से भ्रूण का निर्माण- कुछ पौधों में अंडकोशिका के अतिरिक्त भ्रूणकोष में उपस्थित अन्य कोशिकाएँ जैसे सहायक कोशिकाएँ तथा प्रतिमुखी कोशिकाओं से भी अतिरिक्त भ्रूण का विकास होता है। सहायक कोशिकाओं से अपेक्षाकृत अतिरिक्त भ्रूणों का निर्माण अधिक होता है। फैसिओलस वल्गेरिस, आर्जिमोन मेक्सिकाना में सहायक कोशिकाओं से अगुणित भ्रूण का निर्माण होता है। कुछ अन्य पौधों जैसे पोआ एल्पाइना,

सैजिटेरिया ग्रेमिनिआ, एरिस्टोलोकिया ब्रक्टिएटा तथा क्रेपिस केपिलेरिस में सहायक कोशिकाएँ अंडकोशिका के जैसी बड़ी होकर नर युग्मकों से निषेचित हो जाती हैं, परिणामस्वरूप द्विगुणित भ्रूण का निर्माण होता है। इन पादपों में अधिक पराग नलिकाएँ भ्रूणकोषों में प्रवेश करती हैं तथा अधिक संख्या में नर युग्मक स्वतंत्र होते हैं। प्रतिमुखी कोशिकाओं से सहायक कोशिका की तुलना में भ्रूण का निर्माण अपेक्षाकृत कम होता है। कुछ पौधों जैसे अल्मस अमेरिकाना, एलियम ओडोरम आदि में प्रतिमुखी कोशिकाओं से उत्पन्न भ्रूण पाए गए हैं परंतु इन भ्रूण की जीवन क्षमता संदिग्ध रहती है।

3. भ्रूणकोष में किसी भी द्विगुणित बीजाणुद्भिद कोशिका से भ्रूण का निर्माण- अनेक पौधों जैसे आम, जामुन और सिट्रस में अपस्थानिक भ्रूणता के अन्तर्गत बीजांड की अध्यावरण से या बीजांडकाय कोशिकाओं से अतिरिक्त भ्रूण का निर्माण होता है। ये विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में भ्रूणकोष के बाहर उपस्थित होते हैं परंतु बाद में भ्रूणकोष के अंदर आ जाते है तथा पोषण प्राप्त करते हैं।

4. बीजांड में उपस्थित एक से अधिक भ्रूणकोषों से भ्रूण का विकास होना- कुछ आवृतबीजी पौधों में बीजांड में एक से अधिक भ्रूणकोषों का निर्माण होता है तथा उनमें उपस्थित अंडकोशिका के निषेचित होने से अतिरिक्त (अधिक संख्या में) भ्रूणों का विकास होता है। बीजांड में अतिरिक्त भ्रूण का विकास निम्न कारणों से हो सकता है-

(i) बीजांड में एक से अधिक गुरुबीजाणु मातृ कोशिकाओं के निर्माण होने से जैसे हाइड्रिला वर्टिसिलेटा, सोलेनम मेलोन्जिना, कैजुराइना मोन्टेना आदि में।

(ii) केवल एक गुरुबीजाणु मातृ कोशिका के अद्र्धसूत्री विभाजन से उत्पन्न चार गुरुबीजाणुओं में से दो अथवा अधिक गुरुबीजाणु सक्रिय हो जाते हैं और अतिरिक्त भ्रूण का निर्माण करते हैं जैसे रोजा, कल्सीटियम रिफ्लैक्सम आदि में।

बहुभ्रूणता में एक से अधिक भ्रूण का निर्माण सामान्य भ्रूणकोष में अंड द्वारा निर्मित भ्रूण के अतिरिक्त प्रतिमुखी कोशिका या सहायक कोशिका या अध्यावरण से होता है, लेकिन अंततः सामान्य युग्मनजी भ्रूण ही परिपक्वता को प्राप्त करता है तथा अन्य अतिरिक्त भ्रूण ह्रासित हो जाते हैं।

बहुभ्रूणता का वर्गीकरण

भ्रूणविज्ञानियों ने बहुभ्रूणता को उत्पत्ति व आनुवंशिकता के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है-

1. उत्पत्ति के आधार पर

स्वतः बहुभ्रूणता- यह स्वतः या प्राकृतिक रूप से होती है तथा इसमें अतिरिक्त भ्रूण बीजांड ऊतक (भ्रूणकोष, बीजांडकाय अथवा अध्यावरण) से ही विकसित होते हैं।

अर्नस्ट (1910) के अनुसार स्वतः भ्रूणता भी दो प्रकार की होती है-

(i) वास्तविक बहुभ्रूणता- जब एक ही भ्रूणकोष से एक से अधिक भ्रूणकोषों का निर्माण होता है तो उसे सत्य बहुभ्रूणता कहते है। इसमें प्राक्भ्रूण के विदलन से जैसे यूफोर्बिया तथा वांडा में, सहायक कोशिकाओं से जैसे सेजिटेरिया में प्रतिमुखी कोशिकाओं से, जैसे अल्मस में अथवा बीजांडकाय या अध्यावरण से जैसे सिट्रस में होता है।

(ii) आभासी भ्रूणता- जब पौधों में एक ही बीजांड में एक से अधिक भ्रूणकोष विकसित होते हैं तथा उन भ्रूणकोषों से भी अतिरिक्त भ्रूण का निर्माण होता है तो उसे आभासी भ्रूणता कहते हैं। उदाहरण- फ्रेगेरिया।

2. आनुवंशिकी के आधार पर- कोवलेव (1967) ने स्वतः भ्रूणता को दो श्रेणियों में विभक्त किया है, जो निम्न प्रकार हैं-

(i) युग्मकोद्भिदी बहुभ्रूणता- जब बहुभ्रूणता भ्रूणकोष की किसी भी अगुणित अनिषेचित कोशिका से उत्पन्न होती है तो वह युग्मकोद्भिद बहुभ्रूणता कहलाती है।

(ii) बीजाणुद्भिदी बहुभ्रूणता- इसमें बहुभ्रूणता युग्मनज प्राक्भ्रूण से या बीजांड की किसी भी द्विगुणित कोशिका से होती है।

3. प्रेरित बहुभ्रूणता- यह भ्रूणता कृत्रिम रसायनों द्वारा उत्प्रेरित करने से उत्पन्न होती है। पौधों में सामान्यतया प्राकृतिक रूप से पाई जानेवाली बहुभ्रूणता बिना किसी उत्प्रेरक के स्वतः ही उत्पन्न होती है। इसमें अतिरिक्त भ्रूण का निर्माण केवल भ्रूणकोष, बीजांडकाय तथा अध्यावरण से ही विकसित होता है। भ्रूणविज्ञानियों को पहले यह आशंका थी कि भ्रूण के विकास हेतु एक विशेष भौतिक एवं रासायनिक वातावरण की आवश्यकता होती है, जो केवल भ्रूणकोष में ही उपलब्ध होती है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में किए गए प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह प्रमाणित हो गया है कि-

(i) पौधों में न केवल बीजांड ऊतक (अर्थात भ्रूणकोष, बीजांडकाय तथा अध्यावरण) अपितु सभी कोशिकाएँ भ्रूण का निर्माण कर सकती हैं।

(ii) भ्रूण का विकास भ्रूणकोष के अतिरिक्त कृत्रिम संवर्धन माध्यमों द्वारा प्रयोगशालाओं में भी किया जा सकता है। संवर्धन माध्यम में निर्मित भ्रूण अपस्थानिक भ्रूण, कायिक भ्रूण तथा भ्रूणाभ कहलाते हैं।

ये भ्रूणाभ युग्मनज तथा बीजांड ऊतक के अतिरिक्त पौधों की पत्तियों, जड़, फल या परागकण आदि की कोशिकाओं से कृत्रिम माध्यम में विकसित किए जा सकते हैं। 1986 में किए गए एक अध्ययन के अनुसार वैज्ञानिक अब तक 200 से भी अधिक पादप प्रजातियों में कायिक भ्रूण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर चुके हैं। इनमें गेहूँ, सोयाबीन, सेब, अंगूर, चावल, कॉफी, आदि प्रमुख हैं।

भ्रूणाभ की वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक - कायिक भ्रूणों के विकास में कृत्रिम माध्यम में वृद्धिकारी हार्मोन्स व नाइट्रोजन का स्रोत प्रमुख कारकों का कार्य करते हैं। वृद्धिकारी हारमोन्स की आवश्यकता विभिन्न तरह के पौधों में भ्रूणाभ को प्राप्त करने में भिन्न-भिन्न होती है। गाजर में कैलस को विकसित करने के लिए कृत्रिम माध्यम में ऑक्सिन की प्रचुर मात्रा की आवश्यकता होती है। कैलस में भ्रूण तभी विभेदित होता है जब कैलस को ऑक्सिनरहित या बहुत कम ऑक्सिनयुक्त माध्यम में स्थानांतरित न कर दिया जाए। कॉफी में भी कैलस पर भ्रूण तभी विभेदित होता है जब माध्यम ऑक्सिनरहित हो।

इसी तरह कृत्रिम माध्यम में नाइट्रोजन का स्रोत भी कायिक भ्रूणों के विकास को प्रभावित करता है। ज्यादातर पादपों में नाइट्रेट पोटेशियम नाइट्रेट के रूप में प्रयुक्त नाइट्रोजन कैलस के विकास को उद्दीप्त करती है लेकिन भ्रूण के विभेदन के लिए माध्यम में अमोनिया नाइट्रोजन की अमोनियम क्लोराइड के रूप में आवश्यकता होती है।

बहुभ्रूणता का अनुप्रायोगिक महत्व - उद्यानविज्ञान व पादप प्रजनन विज्ञान में बहुभ्रूणता का विशेष महत्व है। बहुभ्रूणता में बहुसंख्यक भ्रूणों में से केवल एक सामान्य भ्रूण होता है जो अंडकोशिका से बनता है। बाकी सभी अपस्थानिक भ्रूण होते हैं। इन अपस्थानिक भ्रूणों से समान लक्षणों वाले पौधे उत्पन्न किए जा सकते हैं। बीजांडकायी भ्रूण से उत्पन्न पौधों में सभी गुण मादा जनक के समान होते हैं। अतः इच्छित लक्षणों को प्राप्त किया जा सकता है। बहुभ्रूणता से उत्पन्न पौधे में ओज अधिक होता है। बीजांडकायी भ्रूण रोगरहित होते हैं। अतः अपस्थानिक भ्रूणता द्वारा रोगमुक्त क्लोन प्राप्त किए जा सकते हैं।

आण्विक वर्गिकी के सिद्धांत

डॉ. नवीन मालवीय एवं डॉ. आलोक तिवारी*

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर

वनस्पतिविज्ञान, जैवप्रौद्योगिकी एवं सूक्ष्मजैविकी विभाग,

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)

ई-मेल : malviyanaveen@gmail.com

परिचय

वर्गिकी जीवविज्ञान वर्गीकरण आधारित अध्ययन की महत्वपूर्ण नियमावली है। इसके आरंभिक अध्ययनों में बाह्य आकारिकी को वर्गीकरण का आधार बनाया जाता था। धीरे-धीरे कोशिकीय, पर्यावरण तथा जैवरासायनिक लक्षणों को भी वर्गीकरण के सिद्धांतों का अंश माना जाने लगा। आजकल जीवों का वर्गीकरण, आण्विक स्तर के लक्षणों पर किया जा रहा है। आण्विक वर्गिकी में किसी जीव के गुरु अणुओं (आर.एन.ए., डी.एन.ए. तथा प्रोटीन) के अध्ययन को केंद्रित किया जाता है। जीवों के डी.एन.ए. अणुओं तथा डी.एन.ए. एवं आर.एन.ए. अणुओं के बीच समजातीयता के अध्ययन से विभिन्न प्रजातियों के बीच परस्पर संबद्ध जानकारी के साथ जातिवृत्त वृक्ष तैयार किया जाना संभव हो सका है। प्रजातियों के परस्पर संबंधो के आधार पर निर्मित यह वृक्ष, विभिन्न जीवों के संभावित विकास को दर्शाता है। आण्विक जातिवृत्त के अंतर्गत जीवों के आण्विक आनुवंशिक भिन्नता का विश्लेषण किया जाता है ताकि उनके बीच विकासीय संबंध को समझा जा सके। विश्लेषण मुख्यतः डी.एन.ए. अनुक्रम पर केंद्रित होता है। आनुवंशिक निकटता दर्शाने वाले जीवों में उच्च स्तर की समानता होती है जबकि दूरस्थ संबंध वाले जीवों के गुरुअणुओं की संरचना में असमानता देखी गई है। विभिन्न प्रजातियों के अध्ययन हेतु प्रोटीन अनुक्रमण, प्रतिरक्षात्मक, डी.एन.ए.-डी.एन.ए. अथवा डी.एन.ए.-आर.एन.ए. संकरण विधियों से परीक्षण किया जाता है। डी.एन.ए.-डी.एन.ए. अथवा डी.एन.ए.-आर.एन.ए. संकरण विधियों से विभिन्न प्रजातियों के अध्ययन की जानकारी प्राप्त होती है। वह तापक्रम जिसमें डी.एन.ए. अणुओं के हाइड्रोजन आबंध टूट जाते हैं परंतु अणु एक दूसरे के साथ संबद्ध रहते हैं, उसे डी.एन.ए. गलन कहा जाता है।

सिद्धांत

डी.एन.ए.-डी.एन.ए. संकरण (DNA–DNA hybridization, DDH) का सामान्य तात्पर्य ऐसी तकनीक से है। जिसमें डी.एन.ए. अनुक्रम के निकाय के बीच आनुवंशिक समानता का सोपान रहता है। प्रजातियों अथवा समूहों के दो स्रोतों से प्राप्त डी.एन.ए. रज्जुकों का आपस में पात्रे (in vitro) संकर

तैयार करने की क्षमता होती है। सैद्धांतिक रूप में विभिन्न विधियों के माध्यम से डी.एन.ए.-डी.एन.ए. संकरण का वर्णन किया गया है तथा इन विधियों की विस्तार से समालोचना की गई है। 1960 के दशक से इस तकनीक पर प्रयोग किए जा रहे हैं। 1984 में सिब्ली तथा अह्लक्वीश को इस तकनीक का अविष्कारक माना गया है जिन्होंने इस तकनीक का अनुप्रयोग पक्षी तथा प्राइमेट्स के जातिवृत्ती संबंधों को समझने के लिए किया था। एक जीव के डी.एन.ए. को लेबल करके जिस जीव से तुलना की जानी है उसके गैरलेबल डी.एन.ए. के साथ मिलाया जाता है। मिश्रण को ऊष्मायित किया जाता है ताकि डी.एन.ए. रज्जुक वियोजित हो सकें, इसके बाद इसे ठंडा किया जाता है जिससे नवीन संकर द्विरज्जुक डी.एन.ए. निर्मित हो सके। एक जीव के डी.एन.ए. को लेबल करके दूसरे जीव से तुलना की जाती है। उच्च श्रेणी की समानता वाले डी.एन.ए. अणु अधिक दृढ़ता से बंध जाते हैं तथा इनको पृथक करने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। संकरित डी.एन.ए. का गलन-प्रोफाइल ज्ञात करने हेतु द्विरज्जुक डी.एन.ए. को एक स्तंभ में परिबद्ध किया जाता है तथा मिश्रण को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में गर्म किया जाता है। प्रत्येक प्रयोग के पश्चात् कॉलम को धोया जाता है। गलित अनुक्रम एकरज्जुक बन जाता है तथा स्तंभ से धुलकर अलग हो जाता है। वे तापक्रम जिनमें लेबल किया हुआ डी.एन.ए. स्तंभ से अलग हो जाता है, अनुक्रमों के मध्य समानता दर्शाता है। प्राप्त परिणामों को समन्वित करके जीवों के बीच आनुवंशिक समानता की श्रेणी को ज्ञात किया जाता है। स्वतः संकरित डी.एन.ए. प्रतिदर्श (सेम्पल) का नियंत्रक माना जाता है। विशेषज्ञों का मानना है कि निकटतम संबंध रखने वाली प्रजातियों में तुलना हेतु यह तकनीक यथार्थ नहीं है। इन विशेषज्ञों का तर्क है कि जीवों के बीच ऑर्थोलॉगस अनुक्रमों में विभिन्नता, जीव के जीनोम के अंतर्गत पेरालॉगस अनुक्रमों के संकरण से प्रभावित हो जाती हैं। आजकल आनुवंशिक दूरी को ज्ञात करने हेतु डी.एन.ए. अनुक्रमण तथा अभिकलनी तुलनाएँ प्रयुक्त सामान्य विधि है। इस तकनीक के लाभ होने के बाद भी अनेक त्रुटियाँ हैं। पीसीआर-आधारित तकनीकों की तुलना में इस तकनीक में अधिक मात्रा में डी.एन.ए. अणुओं की आवश्यकता होती है, इस कारण से यह प्रक्रिया लंबी तथा परिश्रम करवाती है। इसके अतिरिक्त अन्य विधियों से भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त होते हैं जिसमें समन्वय करना पड़ता हैं। तुलनात्मक तकनीकी अभाव के कारण निरंतर डाटाबेस तैयार न हो पाना सबसे बड़ी असुविधा है।

डी.एन.ए.-आर.एन.ए. संकरण

डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. के मिश्रण को गुणनाशन तापक्रम पर गर्म किया जाता है और इसके बाद इस मिश्रण को ठंडा किया जाता है ताकि डी.एन.ए. के द्विरज्जुक अणु में आर.एन.ए. रज्जुक, डी.एन.ए. रज्जुक के पूरक न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम के साथ संकरित हो जाता है। इस प्रकार के संकरण से डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. अणुओं के बीच संबंध को ज्ञात करना संभव हो पाता है।

आनुवंशिक विश्लेषण हेतु लक्ष्य डी.एन.ए./आर.एन.ए. अनुक्रम में प्रायः बाहुल्य कम होता है। अतः आनुवंशिक विश्लेषण के पूर्व पीसीआर-आधारित लक्ष्य प्रवर्धन आवश्यक हो जाता है। अनेक अवस्थाओं में पीसीआर तकनीक के माध्यम (अरैखिक अभिक्रिया गतिज तथा प्रादर्श संदूषण, कूट सकारात्मक होने के कारण) से अर्ध-मात्रात्मक जानकारी एकत्र की जा सकती है। डी.एन.ए./आर.एन.ए. अणुओं की कम सांद्रता (एक अणु) का परिमापन संभव होने के लिए एक उद्दीपक की आवश्यकता होती है। विगत दशकों में विकसित कॉनफोकल ऑप्टिक्स, लेजर-प्रेरित फ्लूरोसेंस तथा एकल-फोटोन-गणन तकनीकों से घोल में उपस्थित एकल अणु को ज्ञात करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। नॉन-डिनेचरिंग नेटिव पॉलीऐक्रेलेमाइड जैल विद्युतसंचलन के उपयोग से पुनः संयोजन को समझा जा सकता है।

एकल-रज्जुक-संरूपण-बहुरूपता (Single-strand conformational-polymorphism (SSCP) or single-strand chain polymorphism) :

कुछ विशिष्ट प्रायोगिक परिस्थितियों से प्रेरित एकल रज्जुक न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम की एकरूप लंबाई में उत्पन्न संरूपण भिन्नता को SSCP कहा जाता है। माइटोकॉड्रिंया के राइबोसोम के डी.एन.ए. जीन का SSCP विश्लेषण महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये जीन निकटस्थ प्रजातियों में भी अनेक स्थल पर भिन्नता दर्शाते हैं। SSCP से डी.एन.ए. अनुक्रमण के अतिरिक्त डी.एन.ए. संरूपण की खोज की जा सकती है। SSCP उत्परिवर्तन तथा जीनप्ररूष ज्ञात करने की सरल तथा संवेदी तकनीक है। इस तकनीक से डी.एन.ए. अणु में एकल-कोशिका-उत्परिवर्तनों को ज्ञात किया जा सकता है। जैल विद्युतसंचलन की सहायता से इस प्रकार के अनुक्रमों को पहचाना जाता है। द्विरज्जुक डी.एन.ए. में एक न्यूक्लिओटाईड के परिवर्तन को विद्युतसंचलन से ज्ञात करना कठिन होता है, क्योंकि द्विरज्जुक के रज्जुकों के भौतिक गुण लगभग एकसमान होते हैं। गुणनाशन के पश्चात् प्राप्त एक रज्जुक का डी.एन.ए. त्रिविमीय वलन हो जाता है। अतः रज्जुक, अनुक्रम के अनुसार विशिष्ट संरूपण प्रावस्था प्राप्त कर लेता है। विभिन्न अनुक्रमोंयुक्त डी.एन.ए. के दोनों रज्जुक के आकार में विभिन्नता आ जाने से दोनों अणु, विद्युतसंचलन जैल में विषम अभिगमन करते हैं। डी.एन.ए. के अणु में उत्पन्न एक क्षारक में हुए परिवर्तन के कारण यह अणु, गैर गुणनाशन विद्युतसंचालन मे विषम अभिगमन करता है। इस तरह वन्य रूप तथा उत्परिवर्तित डी.एन.ए. अणुओं की पृथक पृथक पट्टियाँ दिखती हैं। SSCP विष्लेषण के अधोलिखित चरण होते हैं। (1) पॉलीमरेस श्रृंखला अभिक्रिया पीसीआर के माध्यम से डी.एन.ए. के अणु में वांछित अनुक्रम का प्रवर्धन (2) पॉलीमरेस श्रृंखला अभिक्रिया से प्राप्त द्विरज्जुक उत्पाद का गुणनाशन, (3) एक गुणनाशी रज्जुक का शीतलन किया जाना ताकि स्वअनीलन अधिकता हो सके। (4) गतिहीन परिस्थिति में विद्युतसंचलन द्वारा एक रज्जुक डी.एन.ए. की

गतिशीलता में भिन्नता ज्ञात करना। SSCP गतिशील विस्थापन को दर्शाऐ जाने हेतु अनेक विधियाँ विकसित की जा चुकी हैं। इनमें रेडियो समस्थानिक लेबिलिंग का समावेशन, रजत अभिरंजन, प्रदीप्तशील अभिरंजक लेबल पीसीआर प्रारंभक तथा हाल ही में विकसित केशिका आधारित विद्युतसंचलन प्रमुख है। SSCP तकनीक की परिशुद्धता के कारण इसका अनुप्रयोग जीनप्ररूषण के माध्यम से विभिन्न युग्मविकल्पी प्रावस्था के समयुग्मजी व्यक्तिक को ज्ञात किया जा सकता है। विद्युतसंचलन का प्रयोग करके पृथक प्रतिमानों को दर्शाने वाले विषमयुग्मजी व्यक्तिक को भी पहचाना जा सकता है।

SSCP विषाणुविज्ञान में अत्यंत उपयोगी है। विशिष्ट विषाणु दो विभेदों में उपस्थित होने के कारण उत्परिवर्तन के फलस्वरुप परिवर्तित हो जाते हैं। ये परिवर्तन दो विषाणु कणों में संरूपण-विभिन्नता दर्शाता है जिसके कारण यह SSCP जैल द्वारा विभेदित किए जा सकते हैं। SSCP का प्रयोग विश्लेषण हेतु स्वेच्छप्रारंभको के उपयोग में किया जा सकता है। यह विधि बड़ी प्रतिदर्श मात्रा हेतु, आपेक्षाकृत सरल रूप में उपयोगी सिद्ध हुई है। दोषः SSCP के द्वारा 250 क्षारक तक लंबे विखंडों का ही विश्लेषण किया जा सकता है। अधिक लंबे विखंडों में उत्परिवर्तन को ज्ञात करने में इसकी विश्वसनीयता क्षीण होने लगती है।

डी.एन.ए. अनुक्रमण (DNA sequencing) :

यह डी.एन.ए. अणु में न्यूक्लिओटाइड के क्रम को ज्ञात करने की विधि है। पूर्व में इस तकनीक का उपयोग आधारभूत जैववैज्ञानिक अनुसंधान में किया जाता था पंरतु अब इसका अनुप्रयोग जैव प्रौद्योगिकी (बायोटेक्नॉलॉजी) निदानसूचक, न्यायिक, जीवविज्ञान तथा जैविक वर्गिकी में भी किया जाने लगा है। 1970 के दशक में डी.एन.ए. अनुक्रमण की पहली विधि का आविष्कार हुआ, वर्तमान में इस तकनीक को विकसित किया गया तथा प्रदीप्तशील आधारित अनुक्रम विधि और स्वचालित विश्लेषण किया जाने लगा है। सर्वप्रथम रे वाउट (1970) ने डी.एन.ए. अणु में क्षारक अनुक्रम को ज्ञात करने की विधि को विकसित किया था। उन्होंने स्थापन-विशिष्ट प्रारंभक विस्तार तकनीक का तथा लेम्डा भोजी डी.एन.ए. के संसंजक सिरे के अनुक्रमों को ज्ञात करने के लिए डी.एन.ए. पॉलीमरेस उत्पेरक तथा न्यूक्लिओटाइड विशिष्ट लेबलिंग का उपयोग किया। वर्तमान में इन दोनों का प्रयोग किया जाता है। कुछ समय पश्चात पद्मनाभन तथा उनके सहयोगियों ने इस विधि में कृत्रिम स्थापन-विशिष्ट प्रारंभक का उपयोग किया। गिलबर्ट तथा मेक्सम (1973) ने 24 क्षारक युग्मों के अनुक्रम का विवरण दिया। उन्होंने रासायनिक अपघटन से डी.एन.ए. अनुक्रम को ज्ञात करने की विधि का आविष्कार किया था। सेंजर (1977) ने प्रारंभक विस्तार कौशल का उपयोग करके अन्य द्रुतगामी डी.एन.ए. अनुक्रम विधियों को विकसित किया।

मेक्सम-गिलबर्ट अनुक्रमण (Maxam–Gilbert sequencing)

डी.एन.ए. अणुओं के अनुक्रम ज्ञात करने हेतु मेक्सम तथा गिलबर्ट ने एक नई विधि विकसित की जिस पर उन्हें 1980 में रसायन के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। डी.एन.ए. अणु को पहले गर्म किया जाता है जिससे एकलरज्जुक शृंखला का अणु निर्मित होता है। इस एकलरज्जुक शृंखला के 5' सिरे का ^{32}P से लेबल न करके शुद्ध किया जाता है। पीपरेडीन तथा डाईमेथिल सल्फेट एवं डाईमेथिल हाईड्राजीन की सहायता से प्यूरीन तथा पिरेमीडीन का वरणात्मक पृथकन किया जा सकता है। इस तरह डी.एन.ए. अणु का विशिष्ट स्थानों पर विदलन किया जा सकता है। इन रसायनों के विभिन्न संयोजन से डी.एन.ए. अणु का विदलन, उन स्थानों पर किया जा सकता है जहाँ पर एक C अथवा जहाँ पर C अथवा एक T हो, जहाँ पर एक G अथवा जहाँ पर G एवं एक A हो। रासायनिक विवेचन से प्रत्येक चार अभिक्रिया से, प्रत्येक चार न्यूक्लिओटाइड क्षारकों में विखंडित होने से एक या दो न्यूक्लिओटाइड (G, A+G, C, C+T) के छोटे भाग उत्पन्न होते हैं। चारों अभिक्रियाओं से प्राप्त विखंडों के उच्च प्रतिशत के पॉलिऐक्रेलामायड जैल के स्तंभ में विद्युतसंचलन की सहायता से विखंडों के आमाप को विभेदित किया जाता है। विखंडों को देखने के लिए रेडियोसक्रिय टैग का उपयोग करके, ऑटोरेडियोग्राफी हेतु ऐक्स-रे फिल्म पर अनावरित किया जाता है। इस प्रक्रिया से प्राप्त गाढ़े रंग के बैंड की शृंखला एकसमान रेडियोलेबलित डी.एन.ए. अणु के स्थापन को दर्शाती हैं। सेंजर ने अनुक्रमण डी.एन.ए. की अनेक बार प्रतिलिपियाँ तैयारकर विभिन्न लंबाई के विखंड तैयार किए। इन विखंडों के सिरे पर प्रतिदीप्तशील शृंखला समापक न्यूक्लिओटाइड लगाकर अनुक्रम भी ज्ञात किए। इस विधि को डाई-डीऑक्सी विधि भी कहा जाता है, इसमें टेमप्लेट रज्जुक पर डी.एन.ए. शृंखला का संश्लेषण किया जाता है। संश्लेषण में चारों न्यूक्लिओटाइड का उपयोग होता है, परंतु जैसे ही किसी भी एक न्यूक्लिओटाइड का संभव डाई-डीऑक्सी न्यूक्लिओटाइड (जिसमें 3' हाईड्रोक्सिल समूह अनुपस्थित होता है) प्रवेश करता है डी.एन.ए. संश्लेषण को रोक दिया जाता है। ऐसा करके से शृंखला में अन्य न्यूक्लिओटाइड का जुड़ना बंद हो जाता है और विकृत डी.एन.ए. अणुओं का समुदाय निर्मित होता है। इन अणुओं को विद्युतसंचलन के द्वारा पृथक किया जाता है। कम्प्यूटर की सहायता से अनुमानित न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम की व्युत्पत्ति की जाती है। इस विधि को विकसित कर स्वचालित अनुक्रम मशीनों की सहायता से विकृत डी.एन.ए. अणुओं को प्रतिदीप्तशील टैगों के द्वारा लेबल किया जाता है तथा इन्हें आकार के अनुसार पतली काँच की केशिका के द्वारा पृथक किया जाता है और लेजर उत्तेजन के माध्यम से पहचाना जाता है।

प्रथम पीढी अनुक्रमण तकनीक में मेक्सम-गिलबर्ट विधि तथा सेंजर विधि को सम्मिलित किया गया है। अगली पीढ़ी अनुक्रमण तकनीक (अर्थात् प्रभावशाली समानांतर या दूसरी पीढ़ी) में, प्रथम पीढ़ी

का स्थान लेनेवाली बृहत् तकनीक होती है। इन नई तकनीकों से अनेक डी.एन.ए. विखंडों (जो कि दशलक्ष की संख्या में हो सकते हैं) का अनुक्रम ए क ही समय में ज्ञात किया जा सकता है। इनमें समय भी कम लगता है तथा आर्थिक रूप से कम खर्चीली होती है। जैवसूचनाविज्ञान (बायोइन्फार्मेटिक्स) की सहायता से डाटा संग्रहण किया जाना तथा बड़े डाटा सेट का विश्लेषण एवं दशलक्ष तक किया जाना सरल हो गया है। इस तरह गीगाबेस श्रृंखला (एक गीगाबेस = 108 डी.एन.ए. के क्षारक जोड़े) का अनुक्रम ज्ञात किया जा सकता है।

16S rRNA प्राक्केंद्रकी (प्रोकैरियोटिक) राइबोसोम के 30S छोटे अंश का घटक है। यह शाईन-डेलगारनो अनुक्रम के साथ आबंध बनाता है। इसे कूट करने वाले जीन को 16S rRNA जीन कहा जाता है। 16S rRNA के प्रमुख कार्य अधोलिखित हैं : (1) यह मंच के रूप में रचनात्मक भूमिका निभाता है, जिससे राइबोसोमल प्रोटीन स्थल को परिभाषित किया जा सकता है। (2) 3' सिरे पर प्रति-शाईन-डेलगारनों अनुक्रम पाए जाते हैं जो mRNA पर AUG आरंभिक आनुवंशिक कूट से आबंध बनाते हैं। (3) 23S के साथ अन्य क्रिया करके राइबोसोम की दोनों उपइकाइयों के बंधन करने में सहायक होता है। (4) राईबोसोम के A स्थल पर हाइड्रोजन आबंध के माध्यम से कूट-प्रतिकूट जोड़े को स्थायित्व प्रदान करता है। वूसे तथा फॉक्स (1977) ने सर्वप्रथम 16S rRNA का जातिवृत्तीय में उपयोग किया। जीवाण्विक जातिवृत्त तथा वर्गिकी में 16S rRNA जीन अनुक्रमों का उपयोग चिह्नक के रूप में किया जाता है, इसके अधोलिखित कारण हैं : (i) ये जीन लगभग सभी जीवाणुओं में पाई जाती है जो कि प्रायः बहुजीन कुल अथवा ओपेरॉन के रूप में उपस्थित होती है। (ii) इन जीनों का कार्य लंबे समय से परिवर्तित नहीं हुआ है जिससे यह निष्कर्श निकाला जा सकता है कि अनुक्रमों मे अव्यवस्थित परिवर्तन, समय अर्थात् विकास का परिशुद्ध मापन है। (iii) 16S rRNA की लंबाई 1,500 bp होती है जो कि सूचना विज्ञान के लिए पर्याप्त होती है। सूक्ष्मजीवियों के समुदायों के अध्ययन हेतु 16S rRNA जीन का उपयोग जातिवृत्त चिह्नक जीन के रूप में किया जाता है। इस जीन में परिवर्ती तथा संरक्षित भाग दोनों उपस्थित होते हैं। जीन पर्याप्त रूप में लंबा होता है तथा 16S rRNA जीन के उपयुक्त अंतरप्रजातीय बहुरूपता के आधार पर, विशिष्ट तथा सांख्यिकी के वैध मापन के माध्यम से जीवाणुओं तथा आर्किया के वर्गीकरण और अभिनिर्धारण हेतु 16S राइबोसोमल आर.एन.ए. अनुक्रमों का प्रचुरता से उपयोग किया गया है। प्राक्केंद्रकी प्रजातियों के टाईप प्रभेदों के 16S rRNA जीन अनुक्रमों तथा विलग के अनुक्रमों की तुलना करके प्राक्केंद्रकी जीवों का सटीक वर्गीकरण किया जा सकता है। 16S राईबोसोमल आर.एन.ए. जीन जीवाण्विक राईबोसोम के 30S उपइकाई को कूट करते है। विभिन्न जीवाणु प्रजातियों में 16S rRNA की एक या बहुखंडी जीन पाई जाती है। 2001 से 2007 के बीच 16S rRNA जीन अनुक्रम के आधार पर जीवाणुओं की 215 नई प्रजातियों की पहचान की गई, जिन्हे 29 नये

वर्गों में वर्गीकृत किया गया। 16S rRNA जीन में पाए जाने वाले अतिपरिवर्ती भागों प्रजाति विशिष्ट सिग्नेचर अनुक्रम के माध्यम जीवाणुओं की पहचान में उपयोगी होता है। जीवाणुओं की 16S जीन में नौ अतिपरिवर्ती भाग (V1-V9) होते हैं। इनकी लंबाई 30 से 100 क्षारक युग्मों तक होती है। ये राईबोसोम के छोटे अंश के द्वितीयक संरचना के भाग होते हैं। संरक्षण भी विविध श्रेणी में होता है। अधिक संरक्षित भाग उच्च स्तर की वर्गिकी से संबद्ध होता है जबकि छोटे स्तर के भाग वंश तथा प्रजातियों से संबंध दर्शाते हैं। इसके अतिरिक्त 16S जीन में अपरिवर्ती भाग के बीच उच्च संरक्षित अनुक्रम पाए जाते हैं जो सार्वभौमिक प्रारंभक के रूप हो सकते हैं। ये प्रारंभक विभिन्न वर्ग में मजबूती से 16S अनुक्रम के समान खंड उत्पन्न करता है। 16S अतिपरिवर्ती के माध्यम से जीवाणुओं में निकटस्थ संबंध रखने वाली प्रजातियों में भिन्नता ज्ञात करना कठिन होता है। 16S rRNA जीन अनुक्रमों का डाटाबेस राईबोसोमल डेटाबेस प्रोजेक्ट (Ribosomal Database Project, RDP II, http://rdp.cme.msu.edu/) तथा जिनबैंक (GenBank, http://www.ncbi.nlm.nih.gov/) में उपलब्ध है। इन डाटाबेसों के माध्यम से संबंधित प्रजातियों के अनुक्रमों का तुलनात्मक जातिवृत्त विश्लेषण किया जा सकता है। 16S rRNA जीन अनुक्रमों के संरेखण हेतु कुछ सॉफ्टवेयर पैकेज जैसे BLAST तथा CLUSTAL X का उपयोग किया जाता है। जीवाणु प्रजातियों के बीच संबद्ध के अध्ययन हेतु जातिवृत्त वृक्ष अथवा (डेंडोग्राम) तैयार किए जाते हैं। इसके लिए PHYLIP तथा MEGA 7.0 का उपयोग किया जाता है। प्रश्नचिह्न अनुक्रम के वंश तथा सामीप्यवर्ती अनुक्रमों की पुष्टि जातिवृत्त वृक्ष के द्वारा की जा सकती है। प्रश्नचिह्न अनुक्रम की तुलना डाटाबेस में उपलब्ध अनुक्रमों से की जाती है। इसके पश्चात् जीनप्ररूपी, रसोवर्गिकी तथा समलक्षणीय विश्लेषण मंचों का परिरूप तैयार किया जाता है। MEGA सॉफ्टवेयर में उपलब्ध विधियों के अनुसार जातिवृत्त वृक्ष तैयार किया जा सकता है। श्रृं

निष्कर्ष

वर्गिकी जीवविज्ञान, वर्गीकरण पर आधारित अध्ययन की महत्वपूर्ण नियमावली है। आरंभिक अध्ययनों में बाह्य आकारिकी के आधार पर वर्गीकरण किया जाता था। शनैः शनैः कोशिकीय, पर्यावरण तथा जैवरासायनिक लक्षणों को भी वर्गीकरण के सिद्धांतों का अंश माना जाने लगा। वर्तमान समय में आण्विक स्तर के लक्षणों पर जीवों का वर्गीकरण किया जा रहा है। आण्विक वर्गिकी के अंर्तगत किसी जीव के गुरुअणुओं (आर.एन.ए., डी.एन.ए. तथा प्रोटीन) के अध्ययन को केंद्रित किया गया है। डी.एन.ए.-डी.एन.ए. संकरण का सामान्य तात्पर्य एक ऐसी तकनीक जिसमें डी.एन.ए. अनुक्रम के निकाय के बीच आनुवंशिक समानता के सोपान का मापन है। डी.एन.ए.-आर.एन.ए. संकरण से डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. अणुओं के बीच संबंध को ज्ञात करना संभव हो पाता है। एकल-रज्जुक-संरूपण-बहुरूपता, कुछ विशिष्ट प्रायोगिक परिस्थितियों से प्रेरित एकलरज्जुक

न्यूक्लिओटाइड अनुक्रम की एकरूप लंबाई में उत्पन्न संरूपण भिन्नता को कहा जाता है। SSCP उत्परिवर्तन ज्ञात करने तथा जीनप्ररूषण हेतु सरल तथा संवेदी तकनीक है। इस तकनीक से डी.एन.ए. अणु में एकल-कोशिका-उत्परिवर्तनों को ज्ञात किया जा सकता है। डी.एन.ए. अनुक्रमण डी.एन.ए. अणु में न्यूक्लिओटाइड के क्रम को ज्ञात करने की विधि है। पहले इस तकनीक का उपयोग आधारभूत जैववैज्ञानिक अनुसंधान में किया जाता था परंतु अब इसका अनुप्रयोग जैवप्रौद्योगिकी, निदानसूचक, जीवविज्ञान तथा जैविक वर्गीकरण में भी किया जाने लगा है। 16S rRNA प्राक्केंद्रकी राइबोसोम के 30S छोटे अंश का घटक है। यह शाईन-डेलगारनो अनुक्रम के साथ आबंध बनाता है। इसे कूट करने वाले जीन को 16S rRNA जीन कहा जाता है। 16S rRNA के प्रमुख कार्य अधोलिखित हैं। जीवाण्विक जातिवृत्त तथा वर्गिकी में 16S rRNA जीन अनुक्रमों का उपयोग चिह्नक के रूप में किया जाता है। 16S rRNA जीन अनुक्रमों का डाटाबेस राईबोसोमल डेटाबेस प्रोजेक्ट (Ribosomal Database Project, RDP II, http://rdp.cme.msu.edu/) तथा जिनबैंक (GenBank, http://www.ncbi.nlm.nih.gov/) में उपलब्ध है। वर्तमान समय में सभी प्रकार के अध्ययनों में जीवों को आण्विक संरचना के आधार को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। एन्जाइम के नामकरण हेतु एक कोड दिया गया है जिसके आधार पर कायिकी में उनकी भूमिका को समझा जाना सरल हो गया है। इसी आधार पर जीवों के आण्विक संरचना एवं गुणों के आधार पर तैयार किए जा रहे डाटाबेस से जीवों का एक निश्चित वर्गीकरण ही नहीं किया जा सकता है वरन अन्य क्षेत्रों में संबंध के बारे में भी विश्लेषण किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

- Case et al., (2007). "Use of 16S rRNA and rpoB genes as molecular markers for microbial ecology studies". Applied and Environmental Microbiology. 73 (1): 278-88
- Clarridge J.E. (2004). "Impact of 16S rRNA gene sequence analysis for identification of bacteria on clinical microbiology and infectious diseases". Clinical Microbiology Reviews. 17 (4): 840-62
- Eden et al., (1991). "Phylogenetic analysis of Aquaspirillum magnetotacticum using polymerase chain reaction-amplified 16S rRNA-specific DNA". International Journal of Systematic Bacteriology. 41 (2): 324-5.
- Ehrlich, M. and Wang, R. (1981). "5-Methylcytosine in eukaryotic DNA". Science. 212 (4501): 7350-57.
- Gilbert W. and Maxam A (1973). "The Nucleotide Sequence of the lac Operator". Proc. Natl. Acad. Sci. U.S.A. 70 (12): 3581-84.

- James, G. (2018). "Universal Bacterial Identification by PCR and DNA Sequencing of 16S rRNA Gene". PCR for Clinical Microbiology. Springer, Dordrecht, pp. 209–214.
- Kolbert C.P. and Persing D.H. (1999). "Ribosomal DNA sequencing as a tool for identification of bacterial pathogens". Current Opinion in Microbiology. 2 (3): 299-305.
- Masato et al., (1989). "Detection of the polymorphisms of human DNA by gelelectrophoresis as single-strand conformation polymorphisms". Proc. Natl. Acad. Sci. USA. 86 (8): 2766-2770.
- Min Jou et al. (1972). "Nucleotide sequence of the gene coding for the bacteriophage MS2 coat protein". Nature, 237 (5350): 82-8.
- Olsvik et al. (1993). "Use of automated sequencing of polymerase chain reaction-generated amplicons to identify three types of cholera toxin subunit B in Vibrio cholerae 01 strains". J. Clin. Microbiol. 31 (1): 22-25.
- Padmanabhan et al., (1974). "Chemical Synthesis of a Primer and Its Use in the Sequence Analysis of the Lysozyme Gene of Bacteriophage T4". Proceedings of the National Academy of Sciences. 71 (6): 2510-14.

सूक्ष्मजीव तथा किण्वित खाद्य उत्पाद

डॉ. तनुजा
विभागाध्यक्ष, वनस्पतिविज्ञान विभाग, टी.पी.एस. कॉलेज, पटना
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)
ई-मेल : ccdc@ppup.ac.in

जीवन शैली में बदलाव, क्रय शक्ति में वृद्धि और उपभोक्ताओं के बीच स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता के कारण किण्वन विधि द्वारा प्राप्त खाद्य उत्पादों की मांग बढ़ रही है। किण्वन हर रोज खाद्य उत्पादों का उत्पादन करने के लिए मनुष्य द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सबसे पुरानी ऐतिहासिक जैवप्रौद्योगिकी प्रक्रियाओं में से एक है। लुई पाश्चर, फ्रांसीसी जीव विज्ञानी और रसायनज्ञ थे जिन्होंने 'बिना हवा के जीवन का नतीजा' के रूप में किण्वन का उल्लेख किया।

किण्वन एक ऊर्जा उत्पादक जैव-रासायनिक क्रिया है जिससे सूक्ष्मजीव जटिल कार्बनिक यौगिक को अपघटित करते हैं और फलस्वरूप कार्बनिक अम्ल, ऐल्कोहॉल, ऐस्टर एवं कार्बन डाइऑक्साइड गैस इत्यादि बनाते हैं। सूक्ष्मजीवों के इस उपापचय प्रक्रिया में एन्जाइम की कार्रवाई के माध्यम से कार्बनिक क्रियाधार सब्सट्रेट में रासायनिक परिवर्तन होते हैं। सूक्ष्मजीवों में यह प्रक्रिया ऑक्सीजन की उपस्थिति या अनुपस्थिति में ऊर्जा की निकासी के रूप में परिभाषित की गई है। औद्योगिक प्रक्रमों में सूक्ष्मजीवों द्वारा किण्वन क्रिया, वायुजीवी अवस्थाओं के अंतर्गत की जाती है, तो वह वायवीय किण्वन कहलाती है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य ने खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों के उत्पादन के लिए किण्वन का उपयोग किया है। सूक्ष्मजीवों की किण्वन प्रक्रिया का प्रयोग कर प्राचीन सभ्यताओं में अनेक उत्पादों जैसे शराब, दही, सोमरस आदि बनाने का प्रचलन था। यद्यपि उनको सूक्ष्मजीवों की उपयोगिता या विनाशकारी प्रवृत्ति का ज्ञान था परंतु किण्वन प्रक्रिया की वैज्ञानिक पद्धति से अनभिज्ञ थे। जैसे-जैसे सूक्ष्मविज्ञान की ओर वैज्ञानिकों का आकर्षण बढ़ा एवं सूक्ष्मीजीवों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया, वैसे-वैसे किण्वन की प्रक्रिया एवं किण्वन प्रौद्योगिकी का विकास हुआ।

किण्वन की प्रक्रिया से बने उत्पादों की सुगंध व गुणता में सुधार, पोषकता में वृद्धि, अवांछनीय गंध का निष्कासन आदि देखा जा सकता है। इसलिए सूक्ष्मजीवों का उपयोग औद्योगिक स्तर पर अनेक प्रकार से उत्पादों के लिए किया जा रहा है। औद्योगिक किण्वन प्रक्रियाओं के लिए उपयोग किए जाने वाले किण्वन टैंक जिसे बायो रिएक्टर्स भी कहा जाता है, में वातन, नियंत्रण, तापमान,

पीएच आदि अन्य मानक नियंत्रित किए जाते हैं जिससे उचित वातावरण में किण्वन उत्पादों का निर्माण होता है। यह प्रक्रिया जैवरिएक्टर में संपन्न की जाती है। जैवरिएक्टर काँच, इस्पात इत्यादि से बने होते हैं जिससे सूक्ष्मजीव या उसके एन्जाइम तथा आधारी पदार्थ के बीच प्रगाढ़ अंत:क्रियाओं के कारण वांछित उत्पादों का निर्माण होता है। सामान्यत: किण्वन प्रक्रिया के लिए क्रियाशील, सूक्ष्मजीव विभेद की उचित एवं उपयुक्त मात्रा, पोषक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पोषी माध्यम, प्रयोग में आ रहे उपकरणों का निर्जर्मीकरण (मुख्य रूप से संदूषण रोकने के लिए), सूक्ष्मजीवों की उचित वृद्धि और उपापचयी क्रियाओं के लिए अनुकूलतम अवस्थाएँ (तापमान, वातन, पी.एच. आदि) आवश्यक है।

सूक्ष्मजीवों के उपयोग से तैयार कुछ प्रमुख किण्वित खाद्य इस प्रकार हैं :-

किण्वित दूध- ये योगहर्ट्स और चीज़ जैसे उत्पादों का आधार है। प्रत्येक संस्कृति ने पूरे इतिहास में अलग-अलग तकनीकों का विकास किया है।

दही (Curd)

दही बनाने में संपूर्ण (खालिस) कम वसायुक्त तथा (माखनिया) दुग्ध उपयोग में लाया जा सकता है। प्राय: वसा रहित शुष्क ठोस दुग्ध मिलाए जाते हैं। दही के पोषक घटक, इसके बनाने में उपयोग में लिए गए दुग्ध के पोषक तत्वों, तथा किण्वन प्रक्रिया में कुंचन का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ठोस डाल दिए जाते हैं तो दही में कैल्सियम की अधिक (अतिरिक्त) मात्रा भी पाई जाती है। दही के उत्पादन में आमतौर पर लैक्टोबेसीलस बुल्गेरिकस तथा स्ट्रेप्टोकोकस थरमोफिलस का मिश्रित भी पूर्वमिश्रित दुग्ध में मिलाया जाता है। तत्पश्चात इसे 42 से 46 सेंटीग्रेट तापमान पर उष्मायन किया जाता है ताकि वांछित स्वाद, अम्लता तथा एकरूपता उपलब्ध की जा सके।

योगहर्ट (Yogurt)

दूध को उबालकर गाढ़ा बनाया जाता है तत्पश्चात् इसका लैक्टोबेसीलस बुल्गेरिकस से किण्वन करवाते हैं जिससे दूध अर्धतरल या जैलीनुमा हो जाता है, इसे योगहर्ट कहते हैं। इसमें ऐल्कोहॉल की मात्रा नहीं होती।

लेबेन (Leben)

यह गाय या बकरी के दूध से तैयार किया जाता है। इस दूध में लैक्टोबेसीलस जीवाणु व यीस्ट मिलाते हैं। जीवाणु किण्वन द्वारा लैक्टिक अम्ल बनाते हैं जिससे दूध जम जाता है व यीस्ट किण्वन द्वारा एल्कोहॉल बनाते हैं। यह मिस्त्रवासियों का मनपसंद भोजन है।

केफिर (Kefir)

दूध के इस उत्पाद को तैयार करने के लिए दूध में केफिर के दाने मिलाए जाते हैं। ये 8-10 दिन में फूलकर आकार में दुगने हो जाते हैं। केफिर में यीस्ट व लैक्टोबेसीलस जीवाणु होते हैं। यह भोजन एवं औषधि दोनों तरह से प्रयुक्त किया जाता है।

मेटजून (Matzoon)

दूध के इस उत्पाद को तैयार करने के लिए दूध को उबालकर ठंडा कर इसमें लैक्टोबेसीलस जीवाणुओं से किण्वन करवाते हैं जिससे दूध खट्टा हो जाता है। इसका स्वाद योगहर्ट के समान ही होता है। यह उत्पाद आर्मेनिया के लोगों द्वारा अत्यधिक पसंद किया जाता है।

कुमिस (Kumiss)

यह उत्पाद घोड़ी या ऊँटनी के दूध से तैयार किया जाता है। किण्वन की क्रिया लैक्टोबेसीलस व यीस्ट की मदद से करवाई जाती है। रूस में यह उत्पाद बड़े चाव से खाया जाता है।

मक्खन (Butter)

सर्वप्रथम दूध को गर्मकर ठंडा कर लिया जाता है। अब इसमें सूक्ष्मजीव युक्त दही मिलाते हैं। इसे आरंभक कहते हैं जो मलाई में किण्वन प्रारंभ करता है। इस आरंभक में ल्यूकोनोस्टॉक डेक्सट्रोनिकम, ल्यूकोनोस्टॉक साइट्रोबोरियम तथा स्ट्रेप्टोकोकस लेक्टिस उपस्थित होते हैं। ल्यूकोनोस्टॉक सिट्रिक अम्ल बनाकर विशेष गंध उत्पन्न करते हैं व स्ट्रेप्टोकोकस उच्च अम्लीयता उत्पन्न करते हैं। कुछ समय तक रखे रहने के बाद इसमें हल्की गंध आने लगती है, अब इसे मथकर मक्खन प्राप्त करते हैं।

डबलरोटी (Bread)

इस उत्पाद की प्राप्ति के लिए आटे में जल मिलाकर गूँथने से पूर्व यीस्ट मिलाकर घंटों तक छोड़ दिया जाता है। साथ ही इसमें शर्करा की कुछ मात्रा डाल देते हैं। यीस्ट शर्करा को ऐल्कोहॉल व कार्बनडाइऑक्साइड में बदल देता है। कार्बन डाइऑक्साइड आटे को फुलाने व आकार बढ़ाने का कार्य करती है।

इडली (Idali)

इसे चावल के आटे व चने की दाल से बनाया जाता है। इन दोनों को पीसकर भिगोने के उपरांत नमक डालकर 10-12 घंटे के लिए रख दिया जाता है जिससे ल्यूकोनोस्टोक मेसेन्टेराइटस,

स्ट्रेप्टोकोकस फाइकेलिस व पोडोकोकस सिरेबिस किण्वन क्रिया द्वारा लैक्टिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल व कार्बन डाई ऑक्साइड बनाते हैं जिसके फलस्वरूप मिश्रण फूलकर खट्टा हो जाता है।

सिलेज (Silage)

यह किण्वन द्वारा तैयार विशेष पशु आहार है। इसे तैयार करने के लिए ऐसे चारे या घास का प्रयोग करते हैं जिसमें शर्करा की मात्रा अधिक हो। अनाज के तने, गन्ना, सूरजमुखी के तनों, मटर के पादप आदि को छोटे-छोटे भागों में काटकर पूलियां लोई बना लेते हैं व अब उन्हें वायुरोधी कमरे में रख देते हैं जहाँ इसमें उपस्थित जीवाणु क्लॉस्ट्रीडियम ब्यूटाइरिकम, लैक्टोबेसीलस व स्ट्रेप्टोकोकस लेक्टिस किण्वन क्रियाकर सिलेज बनाते हैं।

सॉरक्राट (Sauerkraut)

यह जर्मन लोगों का प्रिय भोजन है जिसे पत्तागोभी से तैयार किया जाता है। इसके लिए पत्तागोभी की पत्तियों को छोटा-छोटा काटकर इसमें नमक मिलाकर कुछ समय के लिए रख दिया जाता है। लैक्टोबेसीलस इसमें उपस्थित शर्करा को ऐसीटिक अम्ल में बदल देते हैं।

कोको एवं चॉकलेट (Cocoa and Chocalate)

कोको के बीज जब पककर तैयार होते हैं तो स्वाद में कड़वे होते हैं। इन्हें विशेष गंध एवं स्वाद देने के लिए जीवाणु किण्वन क्रिया द्वारा रुचिकर बनाते हैं। चॉकलेट में भी विशेष रंग व स्वाद जीवाणु क्रिया द्वारा उत्पन्न किया जाता है।

टेम्पेह (Tempeh)

कुछ भोज्य पदार्थों (सोयाबीन) में प्रोटीन अधिक मात्रा में होते हैं परंतु इन्हें पाचित नहीं किया जा सकता। इनका राइजोपस स्टेटोनाइफर व रा. ओरीजी कवकों द्वारा किण्वन करवाने पर ये पाचित हो जाते हैं। इन्हें टेम्पेह कहते हैं।

सूक्ष्मजीव जैवभार (Microbial Biomass)

मनुष्य हजारों वर्षों से सूक्ष्मजीव जैवभार का उपयोग करता रहा है। ये सूक्ष्मजीव किण्वित खाद्यों में, मशरूम की एकल कोशिका प्रोटीन के रूप में भोजन के रूप में प्रयोग में लाई जाती हैं।

मशरूम (Mushuroom)

बेसीडियोमाइसिटीज की लगभग 4000 जातियाँ छत्रक उत्पन्न करती हैं जिनमें से लगभग 2000 खाने लायक होती हैं। कवकों द्वारा वायवीय परिस्थितियों में उत्पन्न फलनकाय (कार्पोस्पोर) को

मशरूम कहते हैं। राजस्थान व पंजाब में इसे गुच्छी कहते हैं। भारतीय वातावरण में तीन प्रकार के मशरूम उगाए जाते हैं।

1. बटन छत्रक - एगैरिक बाइस्पोरस
2. ढींगरी छत्रक - प्लूरोटस सेजोरकेजस
3. धान छत्रक - वोल्वरिएला वाल्वेसिया

एकल कोशिका प्रोटीन (SCP)

सूक्ष्मजीवों की सूखी कोशिकाएँ जो भोजन व चारे के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं, सूक्ष्मजीविका कहलाती हैं। अधिकांशतः ये एकल कोशिका होती है अतः इन्हें एकल कोशिका कहते हैं। अफ्रीका की चड झील के किनारे बसे लोग एवं मेक्सिको की टेक्सकोको झील के किनारे ऐज्टेक लोग इन झीलों में उगने वाली तंतुमय नीलहरित शैवाल, स्पाइरूलीना को प्राचीन काल से सुखाकर भोजन के रूप में उपयोग कर रहे हैं। परंतु एकल कोशिका प्रोटीन का व्यापारिक उत्पाद विश्व युद्ध के दौरान किया गया, जब जर्मनी में टोरूला यीस्ट का उपयोग सूपों एवं सॉसेजों के रूप में किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एकल कोशिका में पुनः रुचि विकसित हुई है फलस्वरुप एकल कोशिका के लिए विभिन्न पोषक संवर्धन तकनीकों की विधियाँ विकसित हुईं। भारत में एकल कोशिका के उत्पादन पर बहुत कम ध्यान आकर्षित हुआ। हाल में नेशनल बोटेनिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट व सेन्ट्रल फूड टेक्नोलॉजी इन्स्टीट्यूट, मैसूर द्वारा सायनोबैक्टीरिया से एकल कोशिका का व्यापारिक उत्पादन करवाया गया है। एकल कोशिका के रूप में प्रयोग लेने की रुचि इसलिए बढ़ी क्योंकि मानव आहार में प्रोटीन की कमी होती है। 1985 में इसका उत्पादन लगभग 1.2 करोड़ टन था, जबकि वर्ष 2000 तक इसके 2.2 करोड़ टन होने का अनुमान है। एकल कोशिका प्रोटीन इस कमी को पूरा करने का एक सुलभ तरीका है, क्योंकि एससीपी को सीधे मानव आहार के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है और एससीपी के पशु आहार में उपयोग करने से वर्तमान में प्रचलित पशु आहार जैसे सोयाबीन, मत्स्य, मीट मानव उपयोग के लिए उपलब्ध हो सकेंगे।

शैवाल (Algae)

एससीपी उत्पादन के लिए क्लोरेला, सेनडेस्मस व स्पाइरुलिना काम में लाए जाते हैं। शैवाल स्वपोषी होती है व इनकी वृद्धि के लिए आवश्यक ऊर्जा, सूर्य के प्रकाश या कृत्रिम प्रकाश से, कार्बन डाईऑक्साइड से व पोषी पदार्थ, पोषी माध्यम में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट से प्राप्त होती है। स्पाइरुलिना से एससीपी का उत्पादन सरल होता है क्योंकि (1) इनकी कोशिकाओं में उपस्थित रिक्तिकाओं के

कारण ये जल सतह पर प्लावित हो सकती हैं। (2) वातावरणीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर सकते हैं। (3) इन्हें गर्म हवा द्वारा सुखाकर बारीक चूर्ण प्राप्त कर सकते हैं।

स्पाइरुलिना एससीपी का उपयोग (Spirulina SCP)

1. प्रोटीन संपूरक भोजन के रूप में : स्पाइरुलिना में प्रोटीन, विटामिन्स, एमीनो अम्ल एंव खनिज लवण अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। यह पाया गया है कि 1 ग्राम स्पाइरुलिना में 1 किलोग्राम सब्जी के बराबर पोषण प्राप्त होता है। इसमें स्टार्च एवं वसा की अधिकता के बिना सभी पोषक तत्व पाए जाते हैं।

2. चिकित्सकीय उपयोग : शरीर के कोलेस्ट्रोल को कम करने के लिए चिकित्सक इसके उपयोग की सलाह देते हैं। लिनोलिनिक अम्ल की उपस्थिति के कारण यह रक्त में शर्करा के स्तर को कम करता है तथा मानव शरीर में कोलेस्ट्रोल के संग्रहण को कम करता है। इसमें कैरोटीन की प्रचुरता होती है जो आँखों व त्वचा के लिए लाभदायक हैं।

3. प्रसाधन सामग्री : स्पाइरुलिना प्रोटीन, विटामिन ए तथा विटामिन बी की उच्च मात्रा होती है अतः ये बालों के उपचार में उपयोगी है। फाइकोसॉएनिन की उपस्थिति के कारण जापान में इसे जैवलिपिस्टिक व सौंदर्य क्रीम बनाने के प्रयोग में लाया जाता है।

तंतुमय कवक (Filamentous Fungi)

बहुत-सी आविषी कवकों जैसे एस्पर्जिलस ओराइजे व राइजोपस ओराइजे को जैवभार उत्पादन के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इनको निमग्न संवर्धन के रूप में उद्योग बहुशर्करा जलअपघटनी युक्त बहिस्रावों (जैसे स्टार्च जल अपघटनी, काष्ठ लुगदी उद्योग के सल्फाइट द्रव आदि) में उगाते हैं। इन पोषी माध्यमों में सी:एन अनुपात 5:1 से 15:1 तक रखा जाता है। पोषी माध्यम में एन स्रोत की अमोनियम लवण व पी स्रोत के रूप में फॉस्फोरिक अम्ल मिलाते हैं। इनकी वृद्धि के लिए बहुत से खनिज की भी आवश्यकता होती है। पोषी माध्यम का पीएच. 3-7 रखा जाता है। कवक की वृद्धि के लिए 25^0-30^0C व ऑक्सीजन संभरण उपयोगी रहता है। ये कवक वृद्धि पर तंतुमय जाल या गुटके बनाते हैं। इनमें 50-55 प्रतिशत अशोधित प्रोटीन होता है जिसमें सल्फरयुक्त एमीनो अम्ल भी होते हैं। इनके द्वारा उत्पादित जैवभार बिना प्रक्रमण के सीधे ही प्रयोग में लाया जा सकता है।

यीस्ट (Yeast)

सेक्रोमाइसीज व कैन्डिडा यीस्ट का उपयोग सूक्ष्मजीव जैवभार उत्पादन के लिए किया जाता है। इन्हें अपशिष्ट जैसे शीरा, छेने के पानी, काष्ठ लुग्दी, फल लुग्दी आदि पर उगाया जा सकता है। ब्रिटिश पेट्रोलियम द्वारा C_{10}-C_{23}n- ऐल्केनों, अमोनिया एवं खनिजों के मिश्रण में कैन्डिडा

लिपोलिटिका का उत्पादन किया जाता था और इसे प्रतिशत अशोधित प्रोटीन वाले एससीपी को टोप्रिना नाम से बेचा जाता था। यह एससीपी गुणवत्ता में सोयाबीन मत्स्य मील के समान था परंतु इसे भी कानूनी अड़चनों व जन विरोध के कारण बंद करना पड़ा।

इनके लिए प्रयुक्त पोषी माध्यम में जल का अनुपात 7:1 से 10:1 तक होना चाहिए। यीस्ट की उपयुक्त वृद्धि के लिए पोषी माध्यम का pH 3.5-4.5, ताप 30-34 सें एवं ऑक्सीजन (o_2) का संभरण लाभदायक रहता है। इनके एससीपी में 55-60 प्रतिशत अशोधित प्रोटीन होता है जिसमें सल्फर युक्त एमीनो अम्लों की कमी होती है। यीस्ट के एससीपी में बी-समूह के विटामिन अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। अतः यह मानव व पशु आहार के साथ उपयोग में आता है। इनके संवर्धन में बैक्टीरिया द्वारा संदूषण की संभावना काफी कम होती है और इनको सतत अपकेंद्रण द्वारा पृथक् किया जा सकता है।

जीवाणु (Bacteria)

स्यूडोमोनॉस मिथैनिका, मिथैनोमोनास मिथैनिका तथा मेथिलोकॉकास कैप्सुलेटस, स्यूडोमोनॉस मिथैनाइट्रिफिकेंस व मेथिलोफिलस मेलोट्रॉफस को सूक्ष्मजीव जैवभार उत्पादन के लिए प्रयोग में लाया जाता है। स्यू, मिथैनिका, स्यू. मिथै नाइट्रिफिकेंस, मिथै. मिथैनिका मेथिलोकॉकस को मेथेन पोषी माध्यम पर उगाया जा सकता है व मेथिलोफिलस मेथिलोट्रॉफस को मेथनॉल पोषी माध्यम पर उगाया जाता है। कोशिकाओं को पोषी माध्यम से ऊर्णन एवं प्लवन विधि से अलग करने पर 10 प्रतिशत ठोस पदार्थ वाला उत्पाद मिलता है। इसमें से जल निकालने के लिए पहले अपकेंद्रण तत्पश्चात् वायु शुष्कन करते हैं। इस एससीपी में 71 प्रतिशत प्रोटीन होता है और इसे प्रुटीन नाम से बेचा जाता है। बछड़ो को दूध के स्थान पर यह आहार दिया जाता है।

एससीपी के लाभ

- इनमें गुणवत्ता वाले प्रोटीन की मात्रा अधिक व वसा व कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम होती है।
- इन्हें पूरे वर्ष भर उत्पादित किया जा सकता है। इनका उत्पादन (शैवालों के अलावा) जलवायु पर निर्भर नहीं होता।
- सूक्ष्मजीवों की वृद्धि दर अधिक होने से कम क्षेत्रफल से अधिक मात्रा में इसे प्राप्त किया जा सकता है।
- ये कम लागत वाले व प्रदूषणकारी अपशिष्ट क्रियाधारों (सब्स्ट्रेटों) का उपयोग करते हैं। अतः ये प्रदूषण नियंत्रण में सहायक होते हैं।
- उच्च जीवभार उपज एवं अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोटीनयुक्त सूक्ष्मजीवों का चयन या आनुवंशिक इंजीनियरी द्वारा विकास अपेक्षाकृत सरल है।

- कुछ विटामिनों के उपयुक्त स्रोत हैं।

सूक्ष्मजीवों द्वारा किण्वन के फलों एवं सब्जियों की व्यर्थ सामग्री से कुदरती सुस्वाद एवं गोंद प्राप्त किया जा सकता है। प्रसंस्कृत उत्पादों जैसे जैली, जूस, जैम आदि में विशेष आकर्षक स्वाद हेतु प्रयोग किया जा सकता है। अब सूक्ष्मजीवों का प्रयोग वैनीलिन (वेनिला सुस्वाद) करने हेतु किया जा रहा है। उपर्युक्त उत्पादों के अलावा विश्व के अनेक भागों में नाना प्रकार के किण्वित खाद्य उत्पाद बनते हैं। सूक्ष्मजीव कम मूल्य के माध्यम (सब्स्ट्रेटों) को प्रयुक्त कर अनेक उपयोगी व मूल्यवान उपापचयकों का उत्पादन करते हैं। विश्व अर्थव्यवस्था में किण्वन उद्योग के उत्पादों का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्नत जैव इंजीनियरी तकनीक द्वारा सूक्ष्मजीवों के वर्तमान उपयोग कर अधिक नए उत्पाद बनाए जा रहे हैं। सूक्ष्मजीवों के द्वारा आर्थिक उपयोग में भी लगातार वृद्धि हो रही है।

ऑर्किड जगत

प्रो. गणेश शंकर पालीवाल

ई-मेल : gspaliwal.dsc@gmail.com

धरती के आवरण की छटा और मनोहारी पुष्पों की आभा बिखेरने वाले पादपों में ऑर्किडों की गणना निश्चय ही प्रथम श्रेणी में की जाती है। अतः यह कोई आश्चर्य नहीं है कि जैसे-जैसे मानव शीतोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उनकी विविधता, अतुलनीय रंग-परास, सुंदर और कभी-कभी कौतुहलपूर्ण रूप, आकार एवं संरचना से अवगत होता गया, उसकी इनके प्रति रुचि एवं आकर्षण बढ़ता ही गया और ये सभी पुष्प-चयनकर्ता अथवा माली के हस्त-कौशल का केंद्र बनते गए।

'ऑर्किड' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ग्रीस के दार्शनिक थियोफ्रेस्टस (Theophrastus) ने किया था जिसका अर्थ था वृषण (testicle)। यह पादप की युग्मित जड़ों (प्रकंद की आकृति) का द्योतक था। बाद में लिनियस ने भी इस तकनीकी शब्द को अपना लिया।

आकार विविधता

यह जानना अत्यंत रुचिकर है कि 17वीं शताब्दी के अंत और 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में मध्य एवं दक्षिणी अमरीका, प्रशांत द्वीप समूहों, एशिया, अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया को, उनकी प्राकृतिक संपदा की खोज करने के लिए अनेक साहसिक अभियान भेजे गए थे। एक ऐसे अभियान की समाप्ति पर 17वीं शताब्दी के अंत में जोसेफ ब्रेयने (Joseph Breyne) नामक जर्मन वनस्पतिज्ञ ने प्रकृति में ऑर्किडों की अभूतपूर्व दर्शनीयता का वर्णन निम्न शब्दों में किया था कि यदि प्रकृति ने पादपों की संरचना में अपने अठखेलेपन की कहीं अभिव्यक्ति है तो वह उच्चतम स्तर पर ऑर्किडों में ही देखने को मिलेगी। वे कभी छोटी-छोटी चिड़ियों, छिपकलियों, कीटों, पुरुष, स्त्री, तपस्वी, योद्धा अथवा भांड (विदूषक) का रूप धारण कर हमें हँसने के लिए विवश करते हैं। दूसरी ओर वे सुस्त कछुए, दुखी भेड़, घोंघे (snail) अथवा चौकन्ने एवं कूदते-फांदते वानर जैसी आकृति भी धारण कर लेते हैं।

ऑर्किड पुष्पों में इतनी अधिक आकारिकीय विविधता है कि वे कुछ मिमी से 1/3 मी तक और काले रंग को छोड़कर सभी ज्ञात रंगों में हो सकते हैं। पुष्पों की बनावट में इतनी विविधता और कौशल है कि वे चमगादड़ों, चिड़ियों, कीटों, मेंढ़कों तक से परागित होने के लिए अनुकूलता दर्शाते हैं। *ऑफ्रिस स्पेकुलम* (*Ophrys speculum*) नामक प्रजाति के पुष्प *स्कोलिया सिलिएटा* (*Scolia ciliata*) नामक मादा कीट से इतनी अधिक समानता दर्शाते हैं कि नर कीट, मादा कीट की खोज के चक्कर

काटते हुए, जब इस पुष्प के निकट पहुँचकर संपर्क स्थापित करता है तो इसे मादा कीट समझकर धोखा खा जाता है, और इस प्रकार परागण प्रक्रिया संपन्न हो जाती है।

पादपों के अन्य भागों की आकृति में भी इतने असामान्य रूपांतरण देखे जाते हैं कि सामान्य मानव में यह धारणा बलवती होती है कि ऑर्किडों में कई जादुई अथवा औषधीय गुण विद्यमान होते हैं। श्रीलंका में *डेन्ड्रोबियम मैक्रैथिया* (Dendrobium maccraithea) नामक प्रजाति के पुष्प भाग्यवान माने जाते हैं और इन्हें भगवान बुद्ध के मंदिरों में एक विशिष्ट त्यौहार के अवसर पर चढ़ाया जाता है। इसलिए इन पुष्पों को 'वेकस माला' (मेफ्लॉवर- Mayflower) की संज्ञा दी जाती है।

स्थानीय लोग वैनिला (Vanilla) वंश की कुछ प्रजातियों के फलों से सुस्वादु एवं सुगंधित 'वैनिला फलियाँ (Vanilla beans) प्राप्त करते हैं। दूसरी ओर मॉरिशस में स्वादिष्ट 'लहम चाय' (Laham tea) *एन्ग्रेकम फ्रेगरेन्स* (*Angraccum fragrans*) ऑर्किड प्रजाति की सूखी पत्तियों को पानी में उबालकर बनाई जाती है।

भारत एवं श्रीलंका दोनों ही देशों में प्राचीन काल में कई ऑर्किड जातियाँ औषधीय गुणों के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती थीं। इनमें से कुछ तो अभी भी विविध उपचारों जैसे गठिया, मांसपेशियों की पीड़ा अथवा त्वचा के रोगों में बाह्य रूप में आलेपित की जाती हैं जबकि अन्य का अर्क/काढ़ा श्वास रोग (जुकाम) (bronchial catarrh) एवं अपच (dyspesia) निवारण हेतु पिलाया जाता है। कुछ प्राचीन यूरोपीय औषधिवेत्ता ऑर्किडों की जड़ों को कामोत्तेजक (aphrodisiac) के रूप में प्रस्तुत करते थे।

विविध

कई ऑर्किडों के पुष्प डाक टिकटों पर भी मुद्रित किए गए हैं। 1937 में कोस्टारिका ने *कैट्टलेया स्किन्नेराई* (Cattleya skinneri) और ब्राजील ने 1946 में *लोइलिया परप्यूरेटा* (Loelia purpurata) को ऐसे ही दर्शाया था। इसके उपरांत संयुक्त राज्य अमरीका के कोलम्बिया राज्य ने क्रमशः छह सुप्रसिद्ध ऑर्किडों को डाक टिकटों पर चित्रित किया था। श्रीलंका का 'बेसिक ऑर्किड' भी डाक टिकट पर स्थान पा चुका है। यह उल्लेख करना अत्यधिक प्रासंगिक होगा कि 1988 में सीआटिक सं. रा. अमरीका में जब अंतरराष्ट्रीय वानस्पतिक कांग्रेस संपन्न हुई थी तो साइप्रीपीडियम (Cypripedium) का सम्मानपूर्वक उल्लेख करने के लिए इसे डाक टिकट पर मुद्रित किया गया था।

भारत में ऑर्किडों की 1256 जातियाँ हैं, इनमें से 158 वंश तथा 388 जातियाँ देशज हैं। ऑर्किडों के तीन विभिन्न रूप होते हैं (क) पहली श्रेणी में वे हैं जो दूसरे पौधों पर अथवा चट्टानों पर शैलवासी (lithophytes) अधिपादप के रूप में उगते हैं। (ख) स्थलवासी ऐसे पादप जो भूमि पर अथवा आरोहियों (climbers) के रूप में उगते हैं, और (ग) कवकों के ऊपर जीवन व्यतीत करने वाले। ये अपना पोषण

कवकमूलों (mycorrhiza) से प्राप्त करते हैं जो स्वयं किसी न किसी संवहनी पादप की मूल पर स्थित होते हैं। देश में वितरित कुल ऑर्किडों में से 757 जातियाँ अधिपादप, 447 स्थलवासी और 43 कवकों से भोजन प्राप्त करने वाली हैं।

वितरण

अधिपादपी ऑर्किड समुद्र तल से 1,800 मी. तक की ऊँचाई पर पाए जाते हैं। इनकी संख्या ऊँचाई के साथ-साथ घटती जाती है। स्थलीय जातियाँ, जो सीधी भूमि पर उगती हैं, अधिकांशतः शीतोष्ण एवं एल्पायनी क्षेत्रों में मिलती हैं जबकि तीसरी श्रेणी की जातियाँ अधिकांशतः शीतोष्ण अथवा उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में परजीवियों के साथ उगती मिलती हैं।

प्रांतवार वितरण

ऑर्किडों के प्रांतवार वितरण के विश्लेषण से पता चलता है कि हिमालयी क्षेत्र, देश के उत्तरी पूर्वी भाग और दक्षिण में पश्चिमी घाट इन लावण्यमयी प्रजातियों के तप्त-स्थल (hot spots) हैं। अध्ययन के अनुसार अरुणाचल प्रदेश में इनकी सबसे अधिक संख्या (621 जातियाँ) हैं और सिक्किम में 560 जातियाँ जबकि पश्चिम बंगाल और दार्जिलिंग में इनकी 479 जातियाँ हैं।

एक ओर जहाँ उत्तरी पूर्वी भारत में इनकी संख्या अधिक है वहीं पश्चिमी घाट में देशज ऑर्किडों की संख्या अधिक है। इनमें से 111 केरल में हैं और 92 तमिलनाडु में पाई जाती है। देश के 10 जैव भौगोलिक क्षेत्रों में हिमालय सबसे धनी ऑर्किड वितरण स्थली है और इसके उपरांत क्रमशः उत्तर-पूर्व, पश्चिमी घाट, दक्कन पठार और अंडमान निकोबार आते हैं।

पुष्पविज्ञान (floriculture) में ऑर्किडों के महत्व को देखें तो इस पर-परागित और जटिल पुष्प संरचनाधारी समूह की ओर ध्यान इसलिए और भी आकर्षित हो जाता है कि संकटापन्न प्राणी और वनस्पति-समूह के व्यापार (CITIES) की मान्यता के अनुसार वन्य ऑर्किड जातियों का व्यापार पूरी तरह प्रतिबंधित है। दूसरी ओर कुछ ऑर्किड जैसे *डेन्ड्रोबियम* (*Dendrobium*), *फालीनोप्सिस* (*Phalaenopsis*), *ओन्सिडियम* (*Oncidium*) एवं *सिम्बिडियम* (*Cymbidium*) पुष्प उद्योग में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

वैनिला प्लेनिफोलिया (Vanilla planifolia)

वैन्डा इन्सिग्निस (Vanda Insignis)

लॉएलिआ परप्यूरेटा (Loelia purpurata)

ऑफ्रिस स्पेकुलम (Ophrys speculum)

1. कैटलिया जाति (Cattleya Sp.)

2. साइप्रीपीडियम जाति (Cypripedium Sp.)

3. पाफेयोपेडाइलम जाति (Paphiopedilum Sp.)

4. डेन्ड्रोबियम जाति (Dendrobium Sp.)

5. सिम्बीडियम जाति (Cymbidium Sp.)

पादप वर्णक : जीवन का एकमात्र आधार

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार
सहायक निदेशक (विषय)
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली
ई-मेलः dkcstt@gmail.com

इस भूमंडल पर ऊर्जा का स्रोत मात्र सूर्य है। यह ऊर्जा सूर्य से किरणों (फोटॉन) के रुप में पृथ्वी पर आती है। ये फोटॉन ऊर्जा के पैकेट हैं।

प्रकाश को जब हम एक प्रिज्म से गुजारते हैं तो यह सात रंगों में विभक्त हो जाता है। यह दृश्य प्रकाश का स्पेक्ट्रम कहलाता है इसे 'VIBGYOR' विब्ज्योर (अर्थात बैंगनी, गहरा नीला, नीला, हरा, पीला, नांरगी, लाल) भी कहते हैं। दृश्य प्रकाश के प्रत्येक रंग की तंरग-दैर्ध्य भिन्न होती है जैसे- 390-430nm (बैंगनी), 430-470nm (गहरा नीला), 470-500nm (नीला), 500-580nm (हरा), 580-600nm (पीला), 600-650nm (नारंगी) एवं 650-760nm (लाल)। तंरग-दैर्ध्य को नैनोमीटर (nm) में मापा जाता है। अत्यंत लघु तरंग-दैर्ध्य बैंगनीं और अधिकतम तरंग दैर्ध्य लाल रंग की होती है। तंरग-दैर्ध्य व ऊर्जा में भी संबंध होता है। बड़ी तरंग दैर्ध्य वाली किरणों की ऊर्जा कम व छोटी तरंग दैर्ध्य वाली किरणों की ऊर्जा अधिक होती है।

इस पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जीवों (पौधों व जंतुओं) के जीवन चक्र का संचालन इस ऊर्जा के द्वारा ही होता है। इस पृथ्वी पर ऊर्जा का संग्रह सिर्फ पादप वर्णक ही कर पाते हैं अतः पादप वर्णकों के अभाव में पृथ्वी पर जीवन की कल्पना असंभव है। प्रत्येक जीव को ऊर्जा हेतु भोजन की आवश्यकता होती है। हरे पौधे ही प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन डाईऑक्साइड एवं जल की सहायता से ग्लूकोस (भोजन) का निर्माण कर ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं। ये ही दो उत्पाद हमारे जीवित रह पाने के लिए आवश्यक हैं।

प्रकाश से पादप के विभिन्न अंगों जैसे-पर्ण, स्तंभ, पुष्प और फलों को न केवल रंग मिलता है बल्कि प्रकाश संश्लेषण द्वारा उसकी वृद्धि एवं विकास को भी नियंत्रित करने में मुख्य भूमिका होती हैं।

जब हम किसी राष्ट्रीय उद्यान अथवा पादप नर्सरी में जाते हैं तो हमें विभिन्न रंगों जैसे- लाल, पीले, नीले, बैंगनी, सफेद, नारंगी आदि में मोहक शोभा वाले पुष्प आच्छादित रूप में पादप पर दिखाई पड़ते हैं। यदि किसी सब्जी वाले बगीचे में चले जाएँ तो अधिकांश पादपों के न केवल तने एवं पत्तियां

हरे रंग की दिखाई देती हैं बल्कि विभिन्न रंगों वाले फल भी देखने को मिलते हैं। अतः जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि इन पुष्पों, फलों व अन्य भागों के रंगीन होने का आखिर क्या कारण हो सकता है?

कोई पुष्प लाल रंग का इसलिए दिखाई पड़ता है क्योंकि यह दृश्य-प्रकाश के सात रंगों में से छह रंगों को अवशोषित कर लेता है और लाल रंग को परावर्तित कर देता है। कोई पुष्प हमें सफेद तभी दिखाई देता है जब वह दृश्य प्रकाश के सभी सात रंगों को परावर्तित करता है। इसी प्रकार काला रंग हमें तब दिखाई देगा, जब वह वस्तु सभी सात रंगों को अवशोषित कर लेती है। पादपों के विभिन्न अंगों में विभिन्न रंगों के प्रदर्शन में उनमें उपस्थित वर्णकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ये वर्णक पादपों द्वारा ही निर्मित होते हैं। इन वर्णकों को निम्न श्रेणियों में रखा गया है:-

1. पर्णहरिम (क्लोरोफिल) - यह पादपों में हरे वर्णक के रूप में होता है तथा प्रकाश संश्लेषण क्रिया के लिए प्रकाश ऊर्जा का अवशोषण करता है। कोशिकांग हरित लवक (क्लोरोफ्लास्ट) में यह प्रमुख जैव-रासायनिक क्रिया होती है। इसमें पर्णहरिम प्रकाश ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करते हैं। क्लोरोफिल संरचना का अध्ययन सर्वप्रथम 1912 में स्टोल और फिशर द्वारा किया गया था। बाद में इसकी पुष्टि 1960 में वैज्ञानिक वुडवार्ड ने भी की।

यह पोरफाइरिन (टेट्रापाइरॉल) संरचना का बना होता है जिसमें चार पाइरॉल के एक साथ मीथेन समूह द्वारा जुड़ने से वलय (अंगूठी) जैसी संरचना बनती है। इसलिए क्लोरोफिल अणु को 'चार वलय वाली अंगूठी' भी कहा जाता है। इसके केंद्र में मैगनीशियम आयन (mg++) होता है। प्रत्येक वलय की संरचना 5 परमाणुओं – 4 कार्बन और एक नाइट्रोजन से बनी होती है। इस पोरफाइरिन संरचना में 20 कार्बन परमाणुओं सहित हाइड्रोकार्बन (फाइटोल शृंखला) होती है। प्रकाश की उपस्थिति से क्लोरोफिल का निर्माण व विखंडन होता है। विखंडन को सहयोगी वर्णक ही सुरक्षा प्रदान करते हैं। विखंडन के बाद ही फियोफाइटिन का निर्माण होता है।

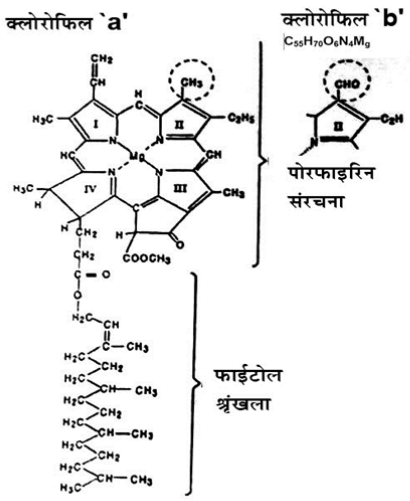

चित्र : क्लोरोफिल `a' तथा क्लोरोफिल `b'

यह प्रारंभिक इलेक्ट्रॉन ग्राही है। फाइटोल श्रृंखला की प्रकाश अवशोषण में कोई भूमिका नहीं होती। 'क्लोरोफिल' पादपों तथा प्रकाश संश्लेषी जीवाणुओं में विभिन्न रूपों में पाया जाता है-

क्लोरोफिल 'a' ($C_{55}H_{72}O_5N_4Mg$) घास के समान हरे रंग का वर्णक है। यह हरे पादप में होता है। सन् 1864 में वैज्ञानिक जी.जी. स्टॉक्स ने क्लोरोफिल 'a' तथा 'b' को पृथक किया तथा क्लोरोफिल 'b' के विषय में भी जानकारी दी। स्ट्रेन प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के लिए क्लोरोफिल a वर्णक ही आवश्यक है। इसके बिना यह प्रकिया संभव नहीं है अन्य सभी वर्णक इसके सहयोगी होते हैं।

क्लोरोफिल 'b' ($C_{55}H_{70}O_6N_4Mg$) नीले-हरे रंग का वर्णक है। यह उच्च पादपों में तथा क्लोरोफाइसी एवं यूग्लीनो फाइसी वर्ग के हरे शैवालों में होता है।

क्लोरोफिल 'c' ($C_{35}H_{30}O_5N_4Mg$) केवल कुछ प्रकार के शैवालों में पाया जाता है। यह अधिकतर समुद्री शैवाल जैसे डायटम (बेसीलेरियोफाइसी), भूरे शैवाल जैसे केल्प, सारगैसम (फीयोफाइसी), पीले भूरे शैवाल जैसे प्रिम्नेशियम (क्राइसोफाइसी) आदि में पाया जाता है। यह वर्णक पीले-हरे रंग के रूप में दिखाई देता है। यह क्लोरोफिल 'b' के समान सहायक वर्णक के रूप में क्लोरोफिल 'a' की सहायता करता है।

क्लोरोफिल 'd' ($C_{54}H_{70}O_6N_4Mg$) केवल लाल शैवालों (रोडोफाइसी) में पाया जाता है। यह माना जाता है कि यह उन शैवालों के अनुरूप विकसित हुआ है जो गहरे पानी में रहते हैं। जहाँ बहुत अधिक प्रकाश नहीं पहुँचता है। जहाँ यह प्रकाश संश्लेषण के लिए सुदूर-लाल (Fr) प्रकाश का उपयोग करता है।

क्लोरोफिल 'e' एक दुर्लभ वर्णक है। यह कुछ सुनहरे शैवालों (पीले हरे) जैसे ट्रिबोनिमा तथा वाउचीरिया में होता है। इसके बारे में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है।

क्लोरोफिल 'f' ($C_{54}H_{70}O_6N_4Mg$) वैज्ञानिक चेन एवं उनके सहयोगियों द्वारा पश्चिमी आस्ट्रेलिया के शार्क बे में खोजा गया जो प्रकाश को अवशोषित करता है।

प्रकाश-संश्लेषी जीवाणुओं में दो प्रकार के बेक्टीरियोक्लोरोफिल वर्णक होते हैं-

बैक्टीरियोक्लोरोफिल a-b तथा (ii) बैक्टीरियोवाइरिडिन। वर्ष 1985 में हुबेर, मिशेल तथा डीजेनहोफर ने रोडोस्यूडोमोनास वाइरिडिस जीवाणु में प्रकाश-संश्लेषी अभिक्रिया केंद्र को क्रिस्टलित कर एक्स-रे विवर्तन तकनीक की सहायता से संरचना को दर्शाया। इस खोज के लिए इन्हें 1988 का रसायन नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

2. कैरोटिनॉइड

ये पादपों के विभिन्न भागों जैसे जड़, पत्तियाँ, फलों और पुष्पों में पीले, भूरे-से, नारंगी अथवा लाल रंग के रूप में विद्यमान होते हैं तथा पादप कोशिका में हरित लवक (क्लोरोप्लास्ट) के क्लोरोफिल से जुड़े होते हैं व प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में सहायता करते हैं। इसलिए इन्हें 'सहायक वर्णक' भी कहा जाता है क्योंकि ये अपने द्वारा अवशोषित प्रकाश ऊर्जा को क्लोरोफिल 'a' को स्थानांतरित कर देते हैं।

रसायनविज्ञानियों ने लगभग 500 से अधिक प्रकार के कैरोटिनॉइड की खोज की है। कैरोटिनॉइड के दो सामान्य वर्ग हैं – कैरोटीन तथा जैन्थोफिल। कैरोटीन में केवल कार्बन और हाइड्रोजन परमाणु तथा जैन्थोफिल में कार्बन, हाइड्रोजन परमाणु के साथ-साथ ऑक्सीजन परमाणु होते हैं।

कैरोटिन 'एल्फा' व 'बीटा-कैरोटिन' के रुप में पादपों में प्रचुर मात्रा में होता है। यह गाजर, शकरकंद और अन्य सब्जियों को नारंगी रंग प्रदान करता है। यह पादपों के अलावा कुछ शैवालों में भी पाया जाता है। यह प्राणियों में विटामिन 'ए' का भी निर्माण करता है। एक अन्य कैरोटिन-लाइकोपीन टमाटर एवं लाल मिर्च को लाल रंग प्रदान करता है। माना जाता है कि लाइकोपीन कैंसर की रोकथाम में मदद करता है और हृद्यघात से बचाता है। WHO के अनुसार वर्ष 2018 में लगभग 96 लाख व्यक्तियों की मृत्यु कैंसर से हुई। जिसमें लगातार वृद्धि ही हो रही है। जैन्थोफिल कई प्रकार के होते हैं – ल्यूटिन (उच्च पादपों तथा हरे एवं लाल शैवाल में) वायोलाजेन्थिन (उच्च पादपों में), फ्यूकोजैन्थिन (भूरे शैवाल तथा डायटम में) तथा नियोजैन्थिन (पादपों में)। शरद ऋतु में पत्तियों का पीला रंग ल्यूटिन के कारण होता है।

कैरोटिनॉइड के विभिन्न रंगों में होने के कारण परागण तथा प्रकीर्णन के लिए जंतु फल और पुष्पों की ओर आकर्षित होते हैं।

3. फ्लैवोनॉइड – ये सामान्यतया लाल, नीले तथा बैंगनी रंग के होते हैं। जो जल में घुलनशील तथा कोशिकाओं की रिक्तिकाओं में पाए जाते हैं। कुछ मॉस पादपों को छोड़कर अन्य पादपों जैसे – शैवाल, कवक तथा जीवाणुओं में ये अनुपस्थित होते हैं। फर्न तथा अनावृतबीजी पादपों में सामान्य प्रकार के फ्लैवोनॉइड तथा आवृतबीजी पादपों में इनकी पूरी श्रृंखला पाई जाती है। ये अत्याधिक जटिल रूप में एस्टरेसी कुल में विद्यमान होते हैं। फ्लैवोनॉइड में 15 कार्बन परमाणु होते हैं तथा कार्बन रिंग द्वारा एक-दूसरे से जुड़े दो 6-कार्बन रिंग होते हैं जिनमें एक ऑक्सीजन परमाणु होता है।

रसायनज्ञों ने लगभग 2000 से अधिक फ्लैवोनॉइड की खोज की है। इन्हें 12 वर्गों में विभाजित किया गया है लेकिन इनमें एन्थोसायनिन, फ्लेवोनोल्स तथा फ्लेवोन्स प्रमुख हैं। एन्थोसायनिन विशेष रूप से अंगूर, काला जामुन, स्ट्रॉबेरी, सेब तथा चेरी जैसे फलों में पाए जाते हैं। ये अनेक सब्जियों को भी विभिन्न रंग प्रदान करते हैं। इन विभिन्न रंगों के कारण कीट, जंतु आकर्षित होते हैं तथा बीजों के प्रकीर्णन एवं परागण में सहायता करते हैं। एन्थोसायनिन शक्तिशाली प्रतिउपचायक (एन्टीऑक्सिडेन्ट) होने के साथ-साथ इसमें शोथरोधी, जीवाणुरोधी तथा कैंसर रोधी गुण भी होते हैं।

फ्लैवोनोल्स तथा फ्लैवोन्स रंगयुक्त नहीं होते परंतु पराबैंगनी (UV) क्षेत्र में विकिरणों को अवशोषित कर पुष्पों के ऊपर एक विशेष प्रकार का पराबैंगनी पैटर्न बनाते हैं जिसे केवल मधुमक्खियाँ ही देखने में सक्षम होती हैं, मानव नहीं। इस पैटर्न को 'मकरंद मार्गदर्शिका' कहते हैं और इसी की सहायता लेकर मधुमक्खी पुष्पों से मकरंद प्राप्त करती हैं तथा परागण में सहायता करती हैं।

फ्लैवोनोल्स तथा फ्लैवोन्स कुछ पादप जातियों की पत्तियों में भी पाए जाते हैं जहाँ ये सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी विकिरणों से पादपों की रक्षा करते हैं।

फली वाली कुछ पादप जातियों में फ्लैवोनॉइड से भिन्न आइसोफ्लैवोनॉइड पाए जाते हैं। इनके कार्य के बारे में ज्यादा कुछ ज्ञात नहीं है लेकिन माना जाता है कि ये ऐलीला रसायन की तरह कार्य करते हैं जैसे – रोटेनोन, जो डेरिस (Derris) नामक पादप की जड़ों में मिलता है। इसका उपयोग कीटनाशी के रूप में किया जाता है।

4. फाइटोक्रोम (पादप कार्यिकी नियामक वर्णक)

यह एक नीला-हरा वर्णक हैं जो पादपों की संरचना, विकास एवं कार्यिकी (बीज अंकुरण, स्तंभ दीर्घीकरण, पर्ण विस्तार, क्लोरोफिल संश्लेषण और पुष्पन समय का नियमन करता है। यह हरे शैवालों

में भी होता हैं। यह अत्यल्प मात्रा में होता है तथा रासायनिक रूप से शुद्ध होने पर ही दिखाई देता है। बोर्थविक तथा हैंडरिक ने अपने सहयोगियों के साथ वर्ष 1952 में पहली बार तंबाकू पादप के पुष्पन पर किए प्रयोग के द्वारा इसकी खोज की। बटलर तथा उसके साथियों ने इसे वर्ष 1959 में पृथक किया।

फाइटोक्रोम एक प्रोटीन है जो एक खुली श्रृंखला टेट्रापाइरोल से जुड़ा होता है। फाइटोक्रोम दो अंतर-परिवर्तनीय रूपों में होता है- फाइटोक्रोम लाल (Pr) तथा फाइटोक्रोम सुदूर लाल (Pfr)। सुदूर लाल प्रकाश की तरंग-दैर्ध्य लाल प्रकाश की तंरग-दैर्ध्य से ज्यादा होती है। यह 700 से 800 nm तक होती है।

लगभग 1930 के दशक में यह ज्ञात हो गया था कि लाल प्रकाश अंकुरण में सहायक होता है जबकि सुदूर लाल प्रकाश अंकुरण को संदमित करता है। जब बीजों को लाल और सुदूर लाल प्रकाश की फ्लैश श्रृंखला के रूप में दी जाती है तो अंतिम फ्लैश का रंग ही यह निर्धारित करता है कि यदि यह लाल प्रकाश हुआ तो बीज अंकुरित होंगे और यदि यह सुदूर लाल है तो सुसुप्त रहेंगे अर्थात बीज अंकुरित नहीं होंगे।

फाइटोक्रोम पादप वृद्धि तथा विकास को तीन प्रकार से नियंत्रित करता है

(क) बहुत कम धारा प्रवाह अनुक्रियाएँ - इसमें बहुत कम प्रकाश की आवश्यकता होती है, लगभग एक सेकंड का सूर्यप्रकाश।

(ख) कम धारा प्रवाह अनुक्रियाएँ - इसमें सूर्य के प्रकाश की एक ध्वनि के बराबर प्रकाश की एक मध्यवर्ती मात्रा की आवश्यकता होती है।

(ग) उच्च विकिरण अनुक्रिया - इसमें लंबे समय तक कुछ मिनटों से लेकर घंटों तक लगातार सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है।

कम धारा प्रवाह अनुक्रियाएँ लाल/सुदूर लाल उत्क्रमणीयता को प्रदर्शित करती हैं जो इस अनुक्रिया का सबसे अच्छा लक्षण है।

5. अन्य वर्णक

फाइकोबिलिन्स - ये जल में घुलनशील, प्रकाश संश्लेषी वर्णक जो उच्च पादपों में अनुपस्थित होते हैं तथा सायनोफाइसी, क्रिप्टोफाइसी रोडोफाइसी वर्ग के शैवालों में एवं प्रकाश-संश्लेषी जीवाणु के समूह सायनोबैक्टीरिया में पाए जाते हैं। रंग के आधार पर ये दो प्रकार के होते हैं - फाइकोसायनिन (नीला वर्णक) तथा फाइकोइरिथ्रिन (लाल वर्णक)। ये प्रोटीनों से संबद्ध वर्णक हैं जो उच्च तापमान पर नष्ट

हो जाते हैं। क्लोरोफिल की ही भांति ये भी संरचना में खुले टेट्रापाइरोल हैं लेकिन इनमें फाइटॉल शृंखला तथा मैगनीशियम आयन नहीं होते।

फाइकोबिलिन वर्णक लाल, नारंगी, पीले और हरे प्रकाश को अवशोषित (जिन्हें क्लोरोफिल 'a' ठीक तरह से अवशोषित नहीं कर पाता) कर प्रकाश-संश्लेषण में सहायता करते हैं। ये फाइकोसायनिन व फाइको-इरेथिरिन क्रमशः जो r व e रूप में पाए जाते हैं।

बीटालेन्स - ये जल में घुलनशील, लाल अथवा पीले रंग के वर्णक हैं जो कैरियोफिल्लेलीज गण पादपों में तथा बेसीडियोमाइकोटा संघ के कुछ कवकों में होते हैं। जिन पादपों में एन्थोसायनिन वर्णक होता है उसमें ये वर्णक नहीं होते। एन्थोसायनिन की तरह ही इनका संश्लेषण प्रकाश द्वारा किया जाता है। इन्हें दो वर्गों में रखा गया है बीटा सायनिन तथा बीटा जैन्थिन। चुकंदर में उपस्थित लाल वर्णक बीटा-सायनिन तथा पीला वर्णक बीटा-जैन्थिन होता है।

ये सिंथेटिक रंगों के विकल्प हैं। ये न तो आविषी हैं और न ही इनसे एलर्जी होती है।

परंपरागत आनंददायक पेय चाय एवं इसकी शक्तिवर्धक प्राकृतिक अनूठी किस्में

डॉ. पूनम पालीवाल
विभागाध्यक्ष, वनस्पतिविज्ञान विभाग,
आई.पी. महाविद्यालय, बुलंदशहर, (उ.प्र.)
ई-मेल : poonampaliwal123@gmail.com

भारत चाय के शौकीनों का देश है। विश्व के उत्पादन की 30 प्रतिशत चाय भारत में प्रयोग कर ली जाती है। जहाँ कॉफी पाश्चात्य जगत की पहली पसंद है वहीं चाय, पूर्वी जगत की संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। चाय खपत करने वाले देशों में प्रति व्यक्ति उपयोग में टर्की (3.16 किलो प्रतिवर्ष के औसत से) प्रथम स्थान रखता है। आयरलैंड, लीबिया, ब्रिटेन, जापान, चीन आदि देशों में भी चाय लोकप्रिय पेय पदार्थ है।

रामायण काल में चाय के प्रयोग का वर्णन मिलता है। तत्पश्चात बौद्ध काल में बोधिधर्मा तथा अन्य लामाओं द्वारा चाय के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं। पूर्वी तथा उत्तर भारत में चाय प्राकृतिक रूप से उगती है। चाय के वाणिज्यिक लाभ अर्जित करने के मुख्य उपाय ब्रिटिश काल में आरंभ हुए एवं बहुत बड़े स्तर पर चाय के बागान लगाए गए। अंग्रेजों के द्वारा लाई तथा लगाई गई चाय की चीनी प्रजाति ने बाद में दार्जिलिंग चाय का रूप लिया तथा हिंदुस्तानी प्रजाति 'आसाम चाय' के रूप में विख्यात हुई। अक्तूबर 2012 में आसाम प्रदेश ने चाय को अपना 'प्रदेश पेय' घोषित कर दिया।

कैमीलिया साइनेन्सिस (Camellia Sinensis (L.) O. Kuntze) नामक पौधे की पत्तियों को सुखाकर, विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजारकर चाय तैयार की जाती है। इस पौधे से प्राप्त सभी पदार्थ, चाय की श्रेणी में रखे जाते हैं। यह चाय इस्तेमाल किए गए प्रक्रम के आधार पर निम्न नामों से जानी जाती है-

ग्रीन चाय - (अनऑक्सीकृत चाय) इस चाय के प्रसंस्करण हेतु चाय की पत्तियों को तोड़ने के तुरंत बाद भाप या शुष्क उष्मा का प्रयोग कर भूना एवं पकाया जाता है ताकि ऑक्सीकरण प्रक्रिया को रोका जा सके।

ब्लैक चाय - (ऑक्सीकृत चाय) इस चाय के उत्पादन में पत्तियों को एन्जाइम की सहायता से पूर्ण रूप से ऑक्सीकृत होने दिया जाता है जिसमें कैटेचिन्स जटिल टैनिन में परिवर्तित हो जाते हैं।

ऊलोंग चाय - (आंशिक ऑक्सीकृत चाय) यह चाय आंशिक ऑक्सीकरण विधि को अपनाकर प्रसंस्कारित की जाति है।

प्योराह चाय - (सूक्ष्मजैविक किण्वन से बनी चाय) चीन के यून्नान प्रदेश में विकसित इस प्रक्रम में ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को रोककर कवक द्वारा मंद किण्वन प्रक्रिया कराई जाती है।

वाईट चाय - (न्यूनतम प्रक्रिया से गुजरी चाय) पौधे से प्राप्त तरुण पत्तियों एवं कलिकाओं को कम समय सुखाकर न्यूनतम ऑक्सीकरण होने दिया जाता है। इस प्रक्रम में पत्तियों के सफेद रेशे तक सुरक्षित रहते हैं।

उपरोक्त वर्णित प्रकारों के इतर विभिन्न देशों में क्षेत्रीय रुचियों के अनुसार कैमीलिया साइनेन्सिस से प्राप्त चाय में विशिष्ट सुगंध एवं स्वाद किण्वन प्रक्रिया द्वारा समाविष्ट कराकर नई किस्में तैयार की जाती हैं। उदाहरण के लिए वियतनाम चाय में ग्रीन चाय को कमल के फूल में भरकर रात्रि पर्यंत छोड दिया जाता है। सुबह तक इस चाय में कमल की सुगंध निगमित हो जाती है जो एक आनंददायक पेय का स्वाद देती है।

कैमिलिया साइनेन्सिस से प्राप्त चाय के अतिरिक्त हर्बल चाय/काढ़े का प्रयोग आयुर्वेद में प्रचलित है। परंपरागत रसोईघर में भी कई प्रकार के पौधों जैसे कि तुलसी, इलायची, काली मिर्च, मुलैठी, पुदीना आदि से बनी चाय का प्रयोग विभिन्न औषधियों के रूप में किया जाता है। कैमीलिया साइनेन्सिस से प्राप्त चाय का उपयोग भी इन पेयों के साथ मिलाकर किया जाता है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त हर्बल चाय/काढ़े के अलावा विश्व में कई प्रकार की हर्बल चाय का प्रयोग किया जाता है उनमें से कुछ निम्न प्रकार है :-

1. बारले (जौ) चाय - यह चाईना, जापान तथा कोरिया का मुख्य पेय पदार्थ है। इसे जौ के भुने दानों को उबालकर तैयार किया जाता है। जापान में इसे मुगिचा तथा कोरिया में वेरिचा कहा जाता है। जौ के दानों में फाइबर की मात्रा अधिक होती है अतः यह कब्ज को दूर करने में सहायक होता है। बारले चाय का उपयोग स्वस्थ आंत्र संचलन को बढ़ाने तथा आमाशयी अम्लता को समाप्त करने के लिए भी किया जाता है अतः यह पाचन तंत्र का टॉनिक है।

2. छागा चाय - रूस तथा साइबेरिया में बिर्च वृक्षों (Betula) पर उगने वाले मशरूम (Inonotus obliguus) को सुखाकर पानी में उबालने से यह पोषक अर्बुदरोधी, शोधरोधी चाय तैयार होती है। यह पेय कॉलेस्ट्राल, रक्त शर्करा तथा जीर्णता को कम करने में सहायक है। यह पेय कैफीन की सहायता के बिना शारीरिक ऊर्जा बढ़ाने का सशक्त माध्यम है।

3. कैमोमाइल चाय - कैमोमाइल (बबूना) के सूखे फूलों पर खौलते पानी को डालकर यह चाय बनाई जाती है। अनिद्रा तथा थकावट को दूर करने तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए इस चाय का सेवन किया जाता है।

4. क्राइसेन्थिमम चाय - इस पौधे के सूखे फूलों से तैयार यह चाय पूर्व एशिया में प्रसिद्ध है। पॉलिफीनॉल की अधिकता के कारण इसके औषधीय उपयोग हैं। हृद्-शूल (एन्जाइना), उच्च रक्तदाब, मधुमेह टाइप-2, सूजन, बुखार आदि व्याधियों में यह लाभकारी है।

5. डैन्डीलिएन चाय - एस्टेरेसी कुल के इस पौधे को खरपतवार के रूप में जाना जाता है। इसकी पत्तियाँ कच्ची या पकाकर खाई जाती हैं। ये विटामिन 'ए', 'सी' तथा 'के' का अच्छा स्रोत है। इस पौधे की जड़ों में इन्यूलिन की मात्रा अधिक होती है। इन्हें सुखाकर चाय के रूप में पिया जाता है। इसमें बीटा कैरोटिन तथा पॉलिफीनॉल प्रतिऑक्सीकारक प्रचुरता में पाए जाते हैं। चाय पाचन तंत्र को सहज रखने, यकृत टॉनिक तथा प्राकृतिक मूत्रल की तरह इस्तेमाल की जाती है। यह स्वाद में कॉफी जैसी होती है पर आमाशयी अम्लता कम उत्पन्न करती है।

6. एस्सिएक चाय (Essiac Tea) - यह मूलतः उत्तरी अमेरिका के आजिब्बा प्रांत की चिप्पिवा जन जाति का प्राकृतिक पेय हैं। यह कई औषधियों का मिश्रण है। तीखे घासीय स्वाद वाला यह पेय कैन्सर की रोकथाम में सहायक है। 1920 के दशक में कनाडा की नर्स रेनी कैसे ने इसे प्राकृतिक उपचार के रूप में प्रचारित किया था। प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों के बीच यह लोकप्रिय पेय पदार्थ है।

7. हिबिस्कस चाय - यह हर्बल चाय गुड़हल के फूलों की ताजी या सूखी लाल पंखुडियों से बनाई जाती है तथा गर्म और ठंडा दोनों तरह से इसका सेवन किया जाता है यह रक्तदाब को कम करने में एवं वसा स्तर को न्यून रखने में प्रभावी है। यकृत टॉनिक की तरह उपयोगी है। गर्मियों में यह शरीर को ठंडक प्रदान करती है।

8. माट्चा चाय - कैमीलिया साइनेन्सिस पौधे को विशेष प्रकार से उगाकर जापान की यह प्रसिद्ध हर्बल चाय बनाई जाती है। पौधे से पत्तियाँ तोड़ने के 20-30 दिन पहले पौधे को ढँक दिया जाता है ताकि पौधे छाया मे बने रहें तथा उनमें पर्णहरिम की मात्रा अधिक हो जाए। ऐसा करने से पत्तियों में एमीनो अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है तथा पौधा ज्यादा हरा प्रतीत होता है। पत्तियों से डंडियों को अलगकर उन्हें बारीक चूर्ण में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस चाय में कैफीन तथा कैटेचिन्स (EGCG) प्रतिऑक्सीकारकों की मात्रा अधिक होती है। कैटेचिन्स की अधिकता इसे कैन्सर रोधी गुण प्रदान करती है तथा शरीर की उपापचयी दर बढ़ाकर यह पेय बढ़ते शारीरिक भार को रोकने में अति प्रभावी है।

9. मोरिन्गा चाय - मोरिन्गा ऑलीफेरा (Moringa olifera) प्राकृतिक रूप से उत्तरी भारत में उगने वाली वृक्ष प्रजाति है जिसकी जड़, पत्ती, फूल, छाल तथा बीज सभी अत्यधिक पोषक तथा खाने योग्य हैं। कुपोषित व्यक्तियों के लिए इसकी पत्तियाँ विशेष रूप से लाभकारी होती हैं। इसकी सूखी पत्तियों को चूर्ण रूप में परिवर्तित कर चाय के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। विटामिन 'बी' तथा विटामिन 'सी' युक्त यह चाय कैफीन मुक्त, रक्त में शर्करा, कॉलेस्ट्रॉल तथा ट्राईग्लिसराइड को कम रखने में सहायक होती है। इसमें शोथरोधी तथा अर्बदरोधी गुण भी पाए जाते है।

10. नेटल चाय - अर्टिका डाइओइका (Urtica dioica) पादप की सूखी पत्तियों से पौष्टिक नेटल चाय तैयार की जाती है। इसमें विटामिन ए, बी, सी, एमीनो अम्ल, वसीय, अम्ल, फोलिक अम्ल, आयरन, मैगनीशियम, फोस्फोरस, पोटैशियम आदि पोषक तत्व भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं अतः गठिया, रक्त दाब असंतुलन, सूजन आदि में इसका लाभकारी प्रभाव होता है। स्तंभक तथा मूत्रल गुणों के कारण यह विभिन्न रोगों के निवारण में उपयोगी है। इस चाय के उपरोक्त वर्णित सभी गुण इसमें उपस्थित फीनोलिक पदार्थों के अधिक्य के कारण होते हैं।

सारांशतः यह अभिधारणा अब समाप्त की जा सकती है कि चायपान हानिकारक ही होता है। वास्तविकता यह है कि चाय को सही तरीके से बनाकर पीने से ही उसके औषधीय लाभ अर्जित किए जा सकते हैं। साथ ही वनस्पति जगत में कई अद्‌भुत, अलौकिक, शक्तिवर्धक प्रयोग, जो विभिन्न भौगोलिक स्थलों में बिखरे पड़े हैं, आज इंटरनेट की उपलब्धता के कारण उन तक पहुँच संभव है। जरूरत सिर्फ ग्राह्यता को अनावृत करने की है।

नाइट्रिक ऑक्साइड: पादपों में संश्लेषण एवं महत्व

डॉ अरुण कुमार एवं डॉ अनिता रानी*

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वनस्पतिविज्ञान विभाग

मुल्तानीमल मोदी पी.जी.कॉलेज, मोदीनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)-201204

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वनस्पतिविज्ञान विभाग

दयालसिंह महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), दिल्ली-110003

ई-मेल : annurani2007@gmail.com

नाइट्रिक ऑक्साइड (Nitric Oxide) एक द्विअणुक गैसीय अणु है जिसकी जैवजगत शरीरक्रिया विज्ञान में उपस्थिति प्रमाणित हो चुकी है। जंतुओं तथा मानवों में इसकी उपस्थिति संश्लेषण तथा कार्य प्रमाणित है। जंतुओं में इसका संश्लेषण नाइट्रिक ऑक्साइड सिन्थेज़ (ना.ऑ.सि.) नामक एन्जाइम के माध्यम से संपन्न होता है, परंतु पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड का संश्लेषण उपकोषीय स्थानों में विभिन्न प्रकार के एन्जाइमों के माध्यम से होता है।

यह माना जाता है कि ना.ऑ.सि., नाइट्रेट रिडक्टेज, पी.एम-एन.आई.एन.ओ.आर, जैन्थीन रिडक्टेज और पॉलीऐमीन रिडक्टेज आदि कुछ प्रमुख एन्जाइम पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड के उत्पादन से संबंधित हैं। एन्जाइम अभिक्रिया के अतिरिक्त पादपों में गैर-एन्जाइम रहित अभिक्रियाओं के द्वारा भी नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन होता रहता है। नाइट्रिक ऑक्साइड पादप शारीर में अनेक महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं के संचालन तथा नियमन में भाग लेता है, जैसे कि परागकण अंकुरण, बीज अंकुरण, मूल विकास, रंध्रों की गति, जीर्णन, पुष्पन, कोशिका मृत्यु तथा अनेक जैविक तथा अजैविक प्रतिबल दशाएँ, जैसे जल, तापमान, भारी तत्व, लवणता तथा रोगजनकों का आक्रमण आदि है। इन दशाओं में जीवों की कोशिकीय स्थिति में हानिकारक अभिक्रियाशील ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन मूलकों का जन्म होता है, जो न केवल अनेक अनुक्रियाशील अभिक्रियाओं का आरंभ है अपितु अनेक संदेशवाहक पक्षों को भी सक्रिय कर देता है जिसके परिणामस्वरूप सुरक्षा तंत्र सक्रिय हो उठता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि नाइट्रिक ऑक्साइड जीवों तथा पादपों में अपनी दोहरी भूमिका द्वारा उन्हें विपरीत परिस्थितियों के लिए अनुकूलित होने में सहायता करता है।

परिचय (Introduction)

नाइट्रिक ऑक्साइड एक जैव सक्रिय गैसीय अणु है जिसकी सूक्ष्मजीवों, पादपों तथा जंतुओं में संश्लेषण की पुष्टि हो चुकी है। पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड की उपस्थिति की प्रथम जानकारी 1977 में क्लेपर के द्वारा दी गई थी। तदोपरांत क्यूटो (1996) तथा निनमान एवं मेयर 1999 के द्वारा दी गई थी। डर्नर (1998) के अनुसार नाइट्रिक ऑक्साइड पादपों के प्रतिरक्षा तंत्र के परिचालन में भी सक्रिय

योगदान करता है। इसके पश्चात पादप कार्यिकी में नाइट्रिक ऑक्साइड के महत्व पर शोध ने गति पकड़ी तथा इसकी संलग्नता पादप पुष्पन, बीज अंकुरण, मूल विकास, पराग नलिका वृद्धि, बीज सुसुप्तता, द्वितीयक संदेशवाहकों में सक्रियण, जीनों के सक्रियण तथा नियमन के साथ-साथ जैविक तथा अजैविक प्रतिबलों में भी प्रमाणित हुई (चित्र 1)।

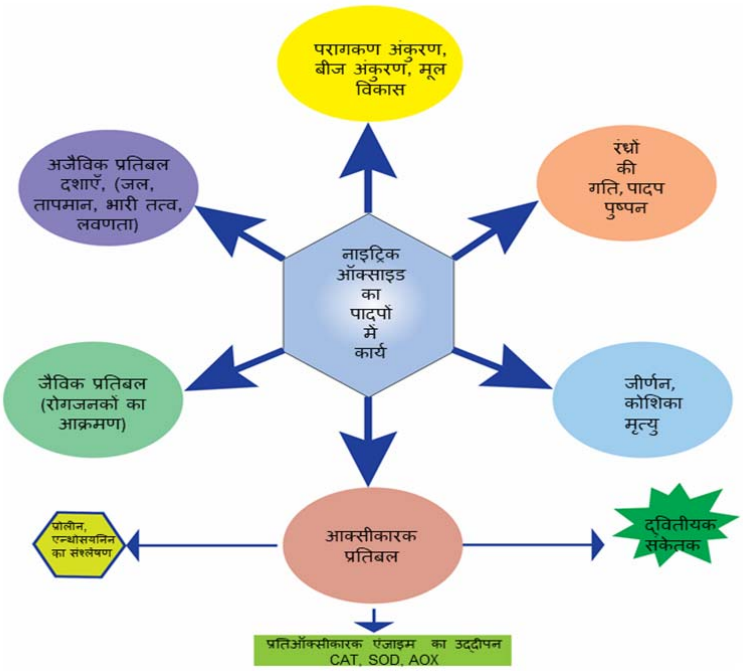

चित्र 1
नाइट्रिक ऑक्साइड का संश्लेषण

एककोशीय जीवाणुओं से लेकर उच्च विकसित जीव जंतुओं तथा पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड उपस्थित होती है। उच्च विकसित जीव जंतुओं में नाइट्रिक ऑक्साइड संश्लेषण के लिए एक सक्रिय एन्जाइम नाइट्रिक ऑक्साइड सिन्थेज़ (इ.सी.1.14.13.39) पाया जाता है। इस एन्जाइम को सर्वप्रथम 1989 में पहचाना गया था। यह जंतुओं में तीन प्रमुख समरूपों में पाया जाता है जिसे क्रमशः उपकला (epithelial), तंत्रिका तंत्र (neuronal) तथा अभिप्रेरक (inducible) प्रकार के ना.ऑ.सि. कहा जाता है। स्तनधारी जीवों में नाइट्रिक ऑक्साइड को एक संदेश अणु के रूप में खोजे जाने के लिए आर. फर्चगाट, एल इगानेरो तथा एफ. मुराद को संयुक्त रूप से नोबल पुरस्कार सन 1998 में दिया गया था। इन खोजों के बाद लगातार हुए अनुसंधाओं से यह पता चला है की एक सक्रिय ना.ऑ.सि. एक द्विअणुक एन्जाइम है जिसमे चार सहायक कारकों की आवश्यकता पड़ती है यथा टेट्राहाइड्रो बायोप्टेरिन, एफएडी, एफएमएन तथा आयरन प्रोटोपोफाइरीन IX (हीम)। ना.ऑ.सि को नाइट्रिक

ऑक्साइड का उत्पादन करने के लिए एल-आर्जिनिन नामक ऐमीनो अम्ल के साथ एनएडीपीएच तथा ऑक्सीजन जैसे सहयोगी की आवश्यकता पड़ती है। इन तीनों की उपस्थिति में ना.ऑ.सि, नाइट्रिक ऑक्साइड का संश्लेषण करता है। इस प्रक्रिया में एल-सिट्रूलीन तथा आयनीकृत एनएडीपीएच का उप-उत्पादभ् के रूप में निर्माण होता है। निर्मित नाइट्रिक ऑक्साइड एक गैसीय अणु होता है। जो एन्जाइम की रासायनिक अभिक्रिया में अभिक्रिया केंद्र पर एफ एम एन (FMN) तथा एफएडी से होते हुए एनएडीपीएच एन्जाइम के रिडक्टेज डोमेन में इलेक्ट्रान प्रदान करता है। यह इलेक्ट्रॉन यहां से ऑक्सीजीनेज डोमेन तक (जहाँ अभिक्रिया केंद्र होता है) कैल्सियम/कैलमोडुलिन की सहायता से पहुँचाया जाता है। इस तरह ना.ऑ.सि. एक द्विडोमेन (Bi-domain) एन्जाइम है जिसमें एन-छोर पर ऑक्सीजीनेज डोमेन तथा सी-छोर पर रिडक्टेज डोमेन होता है। मानवों में ना.ऑ सि. के तीन रूपों (Isoforms) के लिए एक-एक जीन पृथक क्रोमोसोम पर पाया जाता है। इन तीनों रूपों के जीनों का अध्ययन करने पर काफी समानता पाई गई हैं जिससे पता चलता है कि तीनों रूपों का विकास किसी एक स्रोत से हुआ है।

इन तीनों एन्जाइम के स्वरूप को दो श्रेणी में रखा गया है :-

(1) श्रेणी क- उपकला तथा तंत्रिका ना.ऑ.सि.

(2) श्रेणी ख- अभिप्रेरित ना.ऑ.सि.

श्रेणी-क के एन्जाइम कैल्सियम की अनुपस्थिति में निरंतर निर्मित होते रहते हैं। जबकि श्रेणी-ख के एन्जाइम कैल्सियम की उपस्थिति में आवश्यकता पडने पर निर्मित होते हैं। ये सारे एन्जाइम रूप

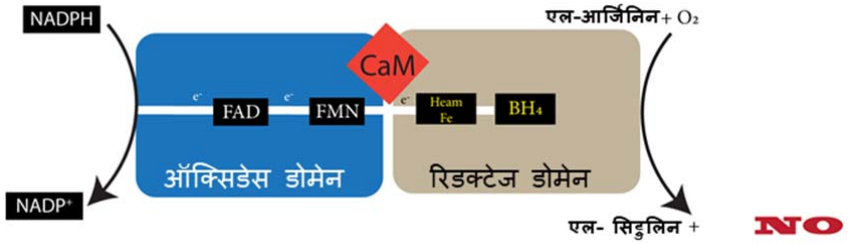

चित्र 2: जंतु नाइट्रिक ऑक्साइड सिंथेस एन्जाइम की संरचना

अपने विशिष्ट स्थानों जैसे उपकला (eNOS), तंत्रिका (nNOS) में तथा अभिप्रेरित प्रकार (iNOS) विविध प्रकार की कोशिकाओं में पाए जाते हैं। इस तरह एन्जाइम के विभिन्न रूप विभिन्न कोशिकाओं में विशिष्ट प्रकार की कार्यिकी को नियमित करने में सहायता करते हैं।

ना.ऑ.सि. जैसी सक्रियता को जंतुओं के अलावा सूक्ष्मजीवाणुओं, कवकों, शैवालों आदि में भी पाया गया है। जीवाणुओं में *बैसीलस सबटिलिस, स्टेफाइलोकोकस डिनोकोकस,* तथा कवकों में *फ्लाम्यूलिना वेलुटिप्स, फाइसेरम ब्लैक्सलियनस* तथा *न्यूरोस्पोरा* है। पादपों में अभी ऐसा कोई अन्वेषण नही हुआ है। लेकिन उसकी उपस्थिति के अनेक प्रमाण मिले हैं। अभी हाल ही में एक शैवाल (*आस्ट्रियोकॉकस टउराई*) में जीन के अति अभिव्यंजन द्वारा इसके उपस्थित होने की पुष्टि की गई है। वैश्विक स्तर पर अनेक वैज्ञानिक व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से इसके विलगन (isolation), पहचान तथा उपस्थिति पर अनुसंधानरत हैं। आशा है कि इसके बारे में आने वाले भविष्य में जानकारी प्राप्त हो जाएगी। पादपों में ना.ऑ.सि. अन्वेषण का आरंभ सवर्प्रथम प्रति-ना.ऑ.सि. प्रतिरक्षी के द्वारा हुई जिसको स्तनधारी ना.ऑ.सि. के द्वारा बनाया गया था। वेस्टर्न ब्लाट विश्लेषण से पता चला कि ना.ऑ.सि. जैसा प्रोटीन यीस्ट तथा गेहूँ के बीजांकुर में भी पाया जाता है। मटर के भ्रूणीय-अक्ष से भी प्राप्त हुआ। जो तकनीकी यह रेडियो लेबल विश्लेषण के साथ प्रदर्शित करती है कि मक्के के मूल शीर्षो तथा युवा पत्तियों के घुलनशील भाग में रेडियो लेबल आर्जिनीन ($U^{-14}C$) को L-[$U^{-14}C$] में परिवर्तन करने कि क्षमता कल्पित ना.ऑ.सि. की उपस्थिति को इंगित करती है। वैज्ञानिकों तथा अनुसंधानकर्ताओं ने स्तनधारी ना.ऑ.सि. निरोधकों का प्रयोग किया जिसमें *मुकुना हासजु* तथा *ल्यूपीनस एल्बस* जैसे पादपों ने अतिरिक्त प्रमाण एन्जाइम की उपस्थिति के सकारात्मक परिणाम दिए है। प्रदीप्ती रंजक (Fluorescent dyes) का उपयोग व ना.ऑ.सि. की उपस्थिति इंगित करती है कि मक्के में कोशिका वृद्धि अवस्थाओं में कोशिकाद्रव्य तथा केंद्रक के बीच एक गतिशील ना.ऑ.सि. उपस्थित होता है। ना.ऑ.सि. निरोधकों (NOS inhibitors) में एल-एन.एन.ए. (L-NNA), एल-एन.ए.एम.ए. (L-NAMA) एवं प्रतिदीप्ति रंजको में डी.ए.एफ. एवं उनके विभिन्न रूपों का उपयोग किया है। एक विधि में इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी स्वर्ण प्रतिरक्षी अंकितांक के द्वारा यह पाया गया है कि ना.ऑ.सि. उपकोशीकीय क्षेत्रों जैसे हरितलवक तथा परॉक्सीसोम आधात्री में उपस्थित होते हैं। इन परिणामों की पुष्टि प्रतिदीप्ति विश्लेषण तथा इलेक्ट्रॉन पैरामैगनेटिक प्रतिध्वनि (electron paramagnetic resonance) जैसी अति विशिष्ट तकनीकों के संयोजन से भी की गई है।

कैलेन्चोई डारिगरिमोतीयाना पादप के रध्रो की द्वार कोशिकाओं एवं सहायक कोशिकाओं और अनावृतबीजी *टैक्सस ब्रीवीफोलिया* की कैलस कोशिकाओ में ना.ऑ.सि. की सक्रियता का प्रमाण भी ना.ऑ.सि. निरोधकों के द्वारा पता चला था, जिसकी प्रतिपुष्टि प्रतिदीप्ति रंजक (डी.ए.एफ.2 डी.ए) के द्वारा भी की गई। *निकोशियना* प्रजाति में भी ना.ऑ.सि. जैसे प्रोटीन की उपस्थिति न्यूक्लियोलर क्षेत्र में डीएएफ-2डीए की सहायता से ज्ञात हुई। जबकि सोयाबीन के बीजपत्र में ना.ऑ.सि. की उपस्थिति सिट्रलीन आमापन (Citrulline Assay) से ज्ञात हुई। जिसकी स्तनधारी ना.ऑ.सि. के

निरोधकों के उपयोग से भी पुष्टि की गई। इस उपस्थिति की प्रतिपुष्टि उच्च विकसित तकनीकी जैसे इलेक्ट्रॉन अनुचुम्बकीय अनुनाद प्रचक्रणपाश पैरामैगनेटिक रिसोनेस स्पिन ट्रैप तकनीक के माध्यम से भी की गई तथा पाया कि ना.ऑ.सि. की उपस्थिति सोयाबीन बीजपत्र कोशिकाओं में उपस्थित हरितलवक में है। इस एन्जाइम की सक्रियता कैल्सियम रहित तथा इसकी प्रकृति ऊष्मा-अस्थिर है। इसके विपरीत एक फलीदार फसल *विसिया फाबा* में ना.ऑ.सि. की सक्रियता कैल्सियम निर्भर तथा अवस्थिति केंद्रक, कोशिकाद्रव्य, हरितलवक, कणिकासूत्र तथा कोशिकाओं की कोशिका भित्ति में थी। इस प्रकार के एन्जाइम की सक्रियता को घाव प्रतिबल (Wound Stress) तथा जैसमोनिक अम्ल के उपचार के बाद देखा गया था।

पादपों के ड्रोसेफिला के रूप में जाना जानेवाला आदर्श पादपतंत्र *एरेबिडॉप्सिस* में भी ना.ऑ.सि. की उपस्थिति ज्ञात करने के लिए निरोधकों का उपयोग किया गया तथा परिणाम सकारात्मक पाए गए। वर्ष 2003 में, गुओ आदि ने यह दर्शाया कि *एराबीडाप्सिस* पादप में एक एटीएनओएस (AtNOS) जीन पाया जाता है जो इसमें नाइट्रिक ऑक्साइड उत्पादन के लिए जिम्मेदार है। परंतु यह भी ज्ञात हुआ कि पूर्णयोगज एटीएनओएस (Recombinant AtNOS) नाइट्रिक ऑक्साइड उत्पन्न करने में अक्षम है तथा यह एक लवक जीटीपिएज (GTPase) है जो मेथिलइराइथ्रोटाल फास्फेट पथ के एन्जाइमों का पोस्ट ट्रांसक्रिशनल विनियमन करता है तथा राइबोसोम के समूहन में सहायता करता है। इस जीन का पुन:नामकरण *एरेबिडॉप्सिस थैलिआना* नाइट्रिक ऑक्साइड एसोसिएटेड प्रोटीन (एटीएनओएपी/AtNOA protein) के रूप में किया गया। प्रोटीन लवण प्रतिबल तथा चारल में रुबिस्को प्रोटीन निर्माण तथा क्लोरोफिल संश्लेषण में सहायता करती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि *एटीएनओए1* प्रोटीन नाइट्रिक ऑक्साइड संश्लेषित नहीं करके अन्य कार्यों को संपन्न करता है। शीतोष्ण कटिबंधी ब्लू मस्टर्ड *(कोरिसपोरा बनजियाना)* में निम्न तापमान तथा कैल्सियम उपचार के उपरांत ना.ऑ.सि. सक्रियता बढ़ने से नाइट्रिक ऑक्साइड उत्पादन ना.ऑ.सि. होता है जो निरोधकों के द्वारा संदमित हो जाता है। एककोशिकीय शैवाल *(आस्ट्रियोकोकस टउराई)* के ना.ऑ.सि. सक्रियता के लिए उत्तरदायी जीन को अलग कर *ई. कोलाई* जीवाणु में अति अभिव्यक्ति (Over-express) कराई गई। यह प्रोटीन (ओटीएनओएस/OtNOS) उपकला ना.ऑ.सि. के समान तथा स्तनधारी ना.ऑ.सि. से 45% अमीनो अम्ल समानता दर्शाता है। इसी के साथ यह भारतीय पीली सरसों में भी सक्रियता दर्शाता है जिसको प्रोटीन काइनेज-सी के द्वारा उद्दीपित किया जा सकता है।

पादपों में प्रत्यक्ष तकनीक की सहायता से जौ पादप में ना.ऑ.सि. की अवस्थिति को मूलशीर्ष अनुदारु (मेटाजाइलम), अनुपोषवाह (मेटाफ्लोएम), परिरंभ (पेरिसाइकिल) तथा मृदूतक (पैरेनकाइमा)

कोशिकाओं में पाई गई है। जिसकी बाद में पुष्टि उत्परिवर्ती पादप (Mutants) चिह्नक एन्जाइम (Marker Enzymes) के साथ पत्तियों के अधिचर्म में उपस्थित द्वार कोशिकाओं में भी हुई है । निरोधक नाइट्रिक ऑक्साइड उत्पादन को देता है। ये सभी प्रमाण भी एन्जाइम द्वारा नाइट्रिक ऑक्साइड के संश्लेषण की पुष्टि करते है। इसके टमाटर के नवोद्भिद (*लाइकोपर्सिकॉन एस्कुलेन्टम)*, व्हाइट क्लोवर, चावल, सोयाबीन, मक्का, *कैमेलिया साइनेंसिस, कोरीसपोरा बनजियाना, टलुरोटस इरेनजियाई* आदि में भी ना.ऑ.सि. निरोधकों के प्रयोग से उसकी सक्रियता को दर्शाया जा चुका है।

कुछ पादपों में ना.ऑ.सि. निरोधकों का उपयोग नाइट्रिक ऑक्साइड के उत्पादन संश्लेषण को रोकने में असमर्थ होता है जैसे कि एक हरित शैवाल *सिनेडेस्मस आब्लिकुअस, क्लेमाइडोमोनास रीइनहारडिटई* तथा उच्च वर्ग पादप जैसे ऐराबीडाप्सिस थैलिआना तथा सूर्यमुखी प्रजाति। पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड एक अन्य वैकल्पिक मार्ग भी क्रियाशील है। इन वैकल्पिक मार्गि नाइट्रिक ऑक्साइड संश्लेषी एन्जाइमों को समरूपी एन्जाइम (Analogous enzyme) कहा गया है। जैसे नाइट्रिक रिडक्टेज (ना.रि.), प्लैज्मा झिल्ली से बंधा नाइट्रिक ऑक्साइड रिडक्टेज, जैन्थीन ऑक्साइडोरिडक्टेज पॉलीएमीन ऑक्सीडेज इत्यादि (चित्र 3) ।

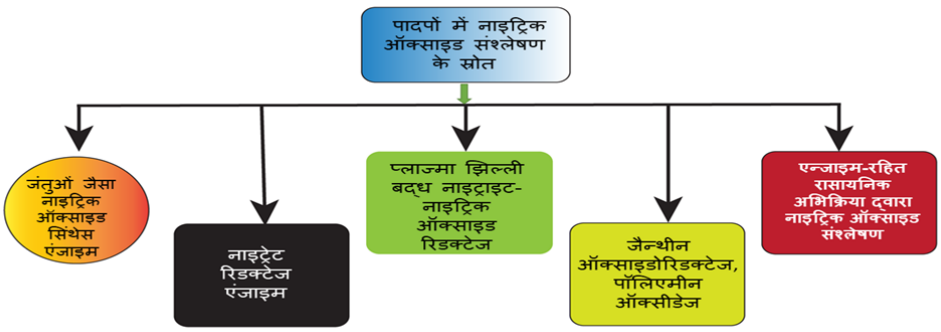

चित्र 3: पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड संश्लेषण के स्रोत

1. नाइट्रेट रिडक्टेज

यह एन्जाइम सामान्यत: नाइट्रोजन उपापचय से जुड़ा एक प्रमुख एन्जाइम है। यह नाइट्रेट को नाइट्राइट में परिवर्तित करता है तथा ना.ऑ.सि. के समान एक समद्विअणुक (Dimer) है। जिसमे प्रत्येक इकाई 100 किलो डाल्टन की तीन उपयोजन समूहों (prosthetic groups) सहित होती है, जो एफएडी, हीम मॉलिब्डेनम संकुल के नाम से जाने जाते हैं। मॉलिब्डेनम एक कार्बनिक अणु, प्टेरिन के माध्यम से एन्जाइम से संलग्न रहता है। यह एक धातु के कीलेटर (cheletor) की तरह कार्य करता है। सवर्प्रथम यामशाकी आदि (1999) के अनुसार ना.रि. नाइट्रिक ऑक्साइड का भी संश्लेषण करता है। जो पालक, *ऐरेबिडॉप्सिस* तथा *क्लेमाइडोमोनास रिइनहारडिटाई* में ऑक्सीजन की कमी होने पर ना.रि.

नाइट्राइट को नाइट्रिक ऑक्साइड में परिवर्तित करता है। इस संश्लेषण की प्रतिपुष्टि ना.ऑ.सि. निरोधकों जैसे एल-एनएएमइ के उपयोग से भी कि गई जिसमें नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन कम नहीं हुआ। परंतु ना.रि. निरोधकों (टंगस्टेट, एजाइड, साइनाइड) के प्रभाव से नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन संदमन होने से यह सिद्ध होता है कि ना.ऑ.सि. एक वैकल्पिक एन्जाइम है जो नाइट्रिक ऑक्साइड संश्लेषण में सहायक है।

2. प्लैज्मा झिल्ली बद्ध नाइट्राइट- नाइट्रिक ऑक्साइड रिडक्टेज

इस एन्जाइम की पहचान की पहचान तंबाकू *(निकोटिआना टैबेकम)* के मूलों की लैज्मा झिल्ली में दर्शाई गई है। यह आम्लीय स्थिति (पीएच 6.0) में नाइट्राइट को नाइट्रिक ऑक्साइड में उपचयन द्वारा परिवर्तित करता है। इसकी घुलनशील प्रोटीन भाग में या एन्जाइम अपचयन प्रक्रिया में इलेक्ट्रॉन दाता साइटोक्रोम-सी है इसके अतिरिक्त एन्जाइम सायनाइड तथा प्रति ना.रि. इम्यूनोग्लोबिन प्रतिरक्षी के प्रति असुग्राही (insensitive) पाया गया है। जोकि इसे नाइट्रेट रिडक्टेज से कार्यशीलता में पृथक करता है। संरचनात्मक रूप से यह एन्जाइम लगभग 310 किलोडाल्टन का है जबकि प्लैज्मा झिल्ली बद्ध नाइट्रेट रिडक्टेज केवल 200 किलो डाल्टन का होता है। यह एन्जाइम एपोप्लास्ट में उपस्थित नाइट्रेट को नाइट्रिक ऑक्साइड में परिवर्तित कर नाइट्रिक ऑक्साइड सिग्नलिंग में भी सहायता करता है। (स्टोहर आदि 2001)

3. जैन्थीन ऑक्साइडोरिडक्टेज

जैन्थीन ऑक्साइडोरिडक्टेज एन्जाइम परऑक्सिसोम नाइट्रेट को नाइट्रिक ऑक्साइड में अपचयित कर इसके संश्लेषण को संपन्न करता है। इस अपचयन के लिए पद इलेक्ट्रॉन को अपचयी अणु (एनएडीएच) से प्राप्त करता है। इसकी सक्रियता को मटर तथा सफेद ल्युपाइन में देखा गया है।

4. पॉलिएमीन ऑक्सीडेज:

पॉलिएमीन ऑक्सीडेज एन्जाइम पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड संश्लेषण में संलग्न पाया गया है। लेकिन इनकी सक्रियता केवल उन विशिष्ट भागों में देखी गई है, जहाँ उच्च नाइट्रिक ऑक्साइड स्तर की जरूरत होती है यथा मूलशीर्ष के वृद्धिकरण भाग, प्राथमिक पत्तियों विशेष रुप से ट्राइकोम (Trichomes) तथा पर्ण शिराओं में। बीजपत्र में इसकी उपस्थिति नगण्य या शून्य होती है। यह एन्जाइम स्परमिन या स्परमिडाइन जैसे पॉलिएमीन को ऑक्सीकृत कर नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन करता है जो एल-आर्जिनिन की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

5. एन्जाइम-रहित रासायनिक अभिक्रिया द्वारा नाइट्रिक ऑक्साइड संश्लेषण

पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन एन्जाइम के बिना भी कुछ विशिष्ट दशाओं में हो सकता है। विजवर्ग एवं लनबर्ग (1998) के अनुसार, अम्लीय या अपचयी दशा के होने पर नाइट्राइट का अपचयन नाइट्रिक ऑक्साइड में हो जाता है। इस अपचयन प्रक्रिया में नाइट्रस अम्ल नामक एक मध्यवर्ती उत्पाद निर्मित होता है जिससे एस्कॉर्बेट (विटामिन सी) अभिक्रिया कर डिहाइड्रोस्कॉर्बिक अम्ल तथा नाइट्रिक ऑक्साइड निर्मित करता है। ऐसी अभिक्रिया पादप ऊतकों यथा जौ के एलिरॉन कोशिकाओं में देखी गई है। इसी तरह कैरोटिबाइड उत्प्रेरित, प्रकाश मध्यवर्ती नाइट्रिक ऑक्साइड को नाइट्रोजन डाइऑक्साइड से होते हुए पाया गया है। यह परिवर्तन केवल कुछ विशिष्ट मार्गो तथा अम्लीय पी एच के अंदर संपन्न होता है। कुछ ऐसा ही, घासों तथा जिंकों की पत्तियों में भी पाया गया है जो नाइट्राइट को अवशोषित कर नाइट्रिक ऑक्साइड का निर्माण करती हैं। इसमें पॉलिसैकेराइड को एक संभावित अपचायक पाया गया है। इसी तरह फिनॉल भी एक अपचायक की भाँति नाइट्राइट को नाइट्रिक ऑक्साइड में परिवर्तित करता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि पादपों में एन्जाइम तथा गैर एन्जाइम दोनों प्रकार की जैव रासायनिक प्रक्रियाएँ होती रहती है जो आवश्यकता तथा अवस्थिति के अनुसार नाइट्रिक ऑक्साइड की उपलब्धता सुनिश्चित करती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त जानकारियों के समेकन से यह स्पष्ट होता है कि पादपों में नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन होता है। यह उत्पादन विविध प्रकार के एन्जाइम तथा गैर-एन्जाइम स्रोतों से होता है। यह विविधता पौधों को जटिल तथा कठिन पर्यावरणीय दशाओं में उत्तरजीविता में सहायता प्रदान करती है। लेकिन आज तक जंतुओं के समान एन्जाइम या उसके समान एन्जाइम का विलगन संभव नहीं हो सका है। यह स्थिति वैज्ञानिकों को एक चुनौती तथा अवसर दोनो ही उपलब्ध कराती है कि भविष्य में ऐसा सुखद अन्वेषण संभव होगा।

संदर्भ:

- Kolbert, Z., Barroso, J.B., Brouquisse, R., Corpas, F.J., Gupta, K.J., Lindermayr, Loake, C., Palma, G.J., Petřivalský, J.M. Wendehenne, M.D. and Hancock, J.T.(2019). A forty-year journey: The generation and roles of NO in plants, *Nitric Oxide*, doi: https://doi.org/10.1016/j.niox.2019.09.006

- Klepper, L. (1979). Nitric oxide (NO) and nitrogen dioxide (NO_2) emissions from herbicide-treated soybean plants, *Atmospheric Environ*. 13: 537-542.

- Corpas, F.J. and Barroso, J.B. (2013). Nitro-oxidative stress vs oxidative or nitrosative stress in higher plants. *The New Phytologist*.199(3): 633- 635

- Durner, J., Wendehenne, D. and Klessig, D.F.(1998). Defense gene induction in tobacco by nitric oxide, cyclic GMP, and cyclic ADP-ribose. *Proceedings of the National Academy of Sciences of the United States of America* 95(17): 10328-10333.
- Zhou, X., Joshi, S., Khare, T., Patil, S., Shang, J., & Kumar, V. (2021). Nitric oxide, crosstalk with stress regulators and plant abiotic stress tolerance. *Plant Cell Reports.* 10.1007/s00299-021-02705-5. Advance online publication. https://doi.org/10.1007/s00299-021-02705-5
- Mc Donald, L.J. and Murad F.(1995). Nitric oxide and cGMP signaling. *Advance Pharmacology* 34: 263-276.
- Wilson, I.D., Neill, S.J. and Hancock, J.(2008). Nitric oxide synthesis and signalling in plants, *Plant Cell and Environment*. 31: 622e631.
- Król, M. and Kepinska, M.(2020). Human nitric oxide synthase-its functions, polymorphisms, and inhibitors in the context of inflammation, diabetes and cardiovascular diseases.*International Journal of Molecular Sciences*, 22(1), 56. https://doi.org/10.3390/ijms22010056.
- Crane, B.R., Sudhamsu, J. and Patel B.A. (2010). Bacterial nitric oxide synthases, *Annual Review of Biochemistry.* 79: 445e470.
- Foresi, N., Correa-Aragunde, N., Parisi, G., Calo, G., Salerno, G. and Lamattina, L. (2010). Characterization of a nitric oxide synthase from the plant kingdom: NO generation from the green alga *Ostreococcustauri* is light irradiance and growth phase dependent,*Plant Cell* 22: 3816e3830.
- del Rıoa, L.A., Corpasa, F.J. and Barroso, J.B. (2004). Nitric oxide and nitric oxide synthase activity in plants, *Phytochemistry* 65: 783e792.
- Guo, F.Q., Okamoto, M. and Crawford, N.M. (2003). Identification of a plant nitric oxide synthase gene involved in hormonal signalling. *Science* 302:100e103.
- Talwar, P.S., Gupta, R., Maurya, A.K. and Deswal, R. (2012). *Brassica juncea* nitric oxide synthase like activity is stimulated by PKC activators and calcium suggesting modulation by PKC-like kinase. *Plant Physiology and Biochemistry* 60: 157-164
- Gupta, K.J., Fernie, A.R., Kaiser, W.M. and van Dongen, J.T. (2011). On the origins of nitric oxide. *Trends in Plant Science* 16(3): 160-168.
- Harper, J.E. (1981). Evolution of nitrogen oxide(s) during in vivo nitrate reductase assay of soybean leaves. *Plant Physiology* 68(6): 1488-1493.
- Maurya, A.K. and Sinha, D. (2020). Nitric Oxide as a savior molecule against stress induced by Chromium and Cadmium. *International Journal of Plant and Environment* 6(4): 253-263.
- Yamasaki, H., Sakihama, Y. and Takahashi, S. (1999). An alternative pathway for nitric oxide production in plants: new features of an old enzyme. *Trends in Plant Science* 4(4): 128-129.
- Stöhr, C., Strube, F., Marx, G., Ullrich, W.R. and Rockel, P. (2001). A plasma membrane-bound enzyme of tobacco roots catalyses the formation of nitric oxide from nitrite. *Planta* 212(5-6): 835-841.

- Gupta, K.J., Fernie, A.R., Kaiser, W.M. and van Dongen, J.T. (2011). On the origins of nitric oxide. *Trends in Plant Science* 16(3): 160-168

- Tun, N.N., Santa-Catarina, C., Begum, T., Silveira, V., Handro, W., Floh, E.I. and Scherer, G.F. (2006). Polyamines induce rapid biosynthesis of nitric oxide (NO) in *Arabidopsis thaliana* seedlings. *Plant and Cell Physiology* 47(3): 346-354

- Weitzberg, E. and Lundberg, J.O.N. (1998). Nonenzymatic Nitric Oxide Production in Humans. *Nitric Oxide: Biology and Chemistry*. 2(1):1–7.

- Cooney, R.V., Harwood, P.J., Custer, L.J., Franke, A.A. (1994). Light-mediated conversion of nitrogen dioxide to nitric oxide by carotenoids, *Environment and Health Perspective.* 102: 460-462.

पादप घाव

डॉ. राजेश कुमार शर्मा
विभागाध्यक्ष, वनस्पतिविज्ञान विभाग
एस.एस.वी. (पी.जी.) कॉलेज, हापुड़ (उ.प्र.)
ई-मेल : drrksharmasharma@gmail.com

'घाव' शब्द सुनकर या पढ़कर ही एक दर्द की अनुभूति होती है। पर कभी सोचा है उन पादपों के बारे में जिनके पत्ते, शाखा आदि तुम तोड़ लेते हो या कीटाणु उन्हें घाव दे देते हैं। अभिषेक आजाद, अछुआ पटना के शब्दों में -

जरा से दर्द में भी, आँसू बहाते हो,
वो हल्की चोट आने पर, गुस्से में आते हो,
मगर क्या दर्द होता है, कभी पेड़ों से भी पूछो,
निर्ममता से जब उसकी, डाली काट देते हो।
वो रोता है, वो चीखता है, उसे भी दर्द होता है,
मगर सब भूलकर, फिर भी, तुम्हें वो छाया देता है।

10 मई, 1901 में प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चंद्र बोस ने यह सिद्ध किया कि पादपों में भी जीवन होता है। जर्मनी में बोन विश्वविद्यालय के अनुप्रयुक्त भौतिक विज्ञान संस्थान के शोधकर्ताओं के अनुसार, घाव होने पर पौधे गैस मुक्त करते हैं जिसकी आवाज किसी दर्द में रोने जैसी होती है। लेजर पावर वाले माइक्रोफोन का उपयोग कर शोधकर्ताओं ने इन ध्वनि तरंगों का पता लगाया। हालांकि यह ध्वनि मानव के कानों द्वारा नहीं सुनी जा सकती।

पादपों में घाव होने के अनेक कारण हैं, यथा प्राकृतिक आपदा, चरने वाले जानवर, मनुष्य का हस्तक्षेप, रोगकारी कीटों का आक्रमण आदि। परिणामस्वरूप जीवित कोशिकाएँ निरावरण हो जाती हैं एवं उनके सूखने या सूक्ष्म जीवों द्वारा संक्रमित होने की संभावना प्रबल हो जाती है। इससे बचने के लिए उच्चवर्गीय पौधों में घावों के भरने की अपनी व्यवस्था होती है।

पादपों में होने वाले घाव मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं-सतही छोटा घाव, गहरा घाव एवं छँटाई से उत्पन्न घाव। इनके भरने की विधियाँ निम्न हैं :-

(क) सतही घाव : चोट लगी निरावृत कोशिकाएँ मृत होकर सूख जाती हैं। घाव के नीचे स्थित कोशिकाओं की मध्य भित्तियों में सुबेरिन नामक पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। सुबेरिनयुक्त कोशिकाओं की परत एक सुरक्षा परत होती है जो अपने नीचे स्थित कोशिकाओं की रक्षा करती है। जिन पौधों में रबरक्षीर कोशिकाएँ एवं रबरक्षीर वाहिनियाँ पाई जाती हैं उनमें से लैटेक्स स्रावित होता हैं। यह चोट लगी सतह के ऊपर जम जाता है एवं रक्षा का कार्य करता है।

(ख) गहरा घाव : ऐसे घावों को भरने के लिए कैलस या आघात ऊतक का निर्माण होता है। यह कैलस सरल मृदूतक कोशिकाओं का समूह होता है जिसका निर्माण फ्लोएम वल्कुट या मज्जा रश्मि की मृदूतक कोशिकाओं के विभाजन से होता है। यह कैलस घाव को पूर्णरूप से ढक देता है। इसके उपरांत इस कैलस की परिधि किनारे की कोशिकाएँ एधा में परिवर्तित होकर आघात एधा बनाती हैं। यह आघात एधा पर विभज्योतक है जो परिचर्म का निर्माण करता है जिसमें एक या अधिक कार्क के स्तर होते हैं। इसे आघात कार्क कहते हैं। यह कार्क भीतरी भागों की रक्षा करता है।

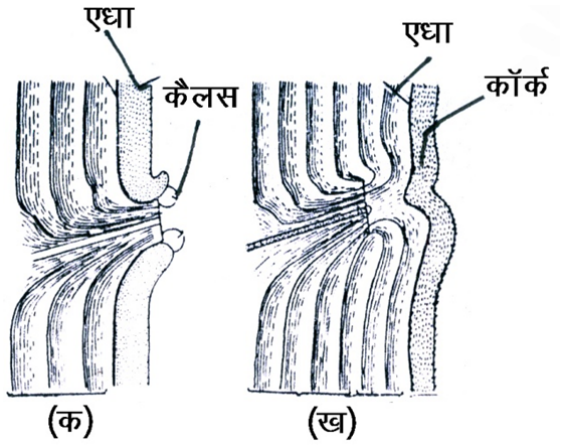

चित्र : घाव का भरना (क) लंबवत काट में घाव के ऊपर कैलस का निर्माण (ख) तदोपरांत आघात कार्क का निर्माण

कभी-कभी यह कॉर्क घाव के ऊपर एक फूली हुई संरचना बनाता है जिसे गाँठ कहते हैं।

(ग) छँटाई से उत्पन्न घाव : छँटाई में वृक्ष की निचली शाखाएँ काट दी जाती हैं परंतु शाखा के आधार का कुछ भाग तने पर ही लगा रह जाता है। इसी भाग पर कैलस बन जाता है एवं इसकी वृद्धि रुक जाती है। तने की द्वितीयक वृद्धि के साथ-साथ यह आधारीय भाग तने के द्वितीयक दारु के द्वारा पूर्णरूप से भीतर बंद हो जाता है। यह बंद भाग ही गाँठ कहलाता है। इमारती लकड़ी चीरे जाने पर यह गाँठ स्पष्ट दिखाई देती है।

घाव के संकेत : पादप घाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न घाव संकेतों से घाव-प्रेरक जीन सक्रिय हो जाती है। इस जीन की सक्रियता एवं अभिव्यक्ति में मुख्य भूमिका जासमोनिक अम्ल की पाई गई है। इस अम्ल पर निर्भर अनेक परोक्ष या अपरोक्ष घाव संकेत पारक्रमण पथों का प्रारंभ होता है यथा कैल्शियम/केलमोडुलिन नियंत्रित प्रक्रियाएँ, प्रतिवर्ती प्रोटीन फॉस्फेटीकरण एवं सक्रिय ऑक्सीजन अणुओं यथा H_2O_2 का निर्माण आदि। ये प्रक्रियाएँ कोशिका भित्ति की वृद्धि एवं विभेदन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। घाव संकेतक के रूप में एक एन्जाइम पॉलिऐमीन ऑक्सीडेज महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जीर्णता एवं क्रमादेशित कोशिका मृत्यु

डॉ. अमिता शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पतिविज्ञान विभाग,
रघुनाथ गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)
ई-मेल: drvikas.27nov@gmail.com

पादप जीर्णता विकास क्रम का ही एक रूप है। पत्तियों के गिरने से पहले पर्णपाती वृक्षों में पतझड़ के समय पत्तियों का रंग परिवर्तित होता है। पत्तियों के रंग में परिवर्तन का कारण प्रकाश अवधि का परिवर्तित होना तथा ठंडा तापमान है जो विकासात्मक प्रक्रियाओं को आरंभ करता है यही पत्तियों में पहले जीर्णता तथा बाद में मृत्यु का कारण हैं। पादप जीर्णता केवल मृत्यु या गल जाना नहीं है जैसा कि जहर या अन्य बाह्य कारकों से होता है। यह एक क्रियाशील विकासात्मक प्रक्रिया है जोकि वृक्ष के अपने आनुवंशिक कार्यक्रम से नियंत्रित होती हैं।

पर्ण मृत्यु आनुवंशिक रुप से क्रमादेशित होती है तथा उसकी जीर्णता वातावरणीय कारणों से आरंभ हो सकती है। जैसे ही नई पत्तियाँ तने के शीर्षस्थ विभज्योतक से निकलती है, पुरानी पत्तियों की क्रियाशीलता घटती रहती है, क्योंकि वृक्ष पत्तियों के निर्माण में अपने मूल्यवान संसाधन व्यय करता है। जीर्णता संसाधनों के एक छोटे भाग का पुनःभरण करती है। जल अपघटनीय एन्जाइम जोकि जीर्णता प्रक्रिया के अंतर्गत निर्मित होते हैं, बहुत सारे कोशिकीय प्रोटीनों, कार्बोहाइड्रेट, व न्यूक्लिक अम्लों में विखंडित हो जाते हैं। इनके घटक जैसे शर्करा, न्यूक्लिओसाइड तथा ऐमीनों अम्ल पुनः वृक्ष में फ्लोएम के माध्यम से आ जाते है जहाँ वे पुनः उपयोग में आते हैं। निर्माणात्मक प्रक्रियाओं में बहुत सारे खनिज लवण भी जीर्णित अंगों से पुनः पादप में प्रवेश कर लेते हैं। पादप ऊतकों की जीर्णता विलगन से संयोजित होती है। यह एक प्रक्रिया है जिसमें पर्णवृंत में उपस्थित कोशिकाएँ विभेदित होकर एक विलगन परत का निर्माण कर जीर्णित ऊतकों को पौधों से पृथक कर देती हैं।

जीर्णता के प्रकार :

ऊतकों में जीर्णता निम्न प्रकार की होती हैं-

1. एकशःफलनी जीर्णताः बहुत से वार्षिक पौधे जैसे गेहूँ, मक्का तथा सोयाबीन अपनी समयावधि के बाद पीले पड़ जाते हैं। एक वर्षीय जीवन चक्र के पश्चात् जीर्णित होने वाले पीधों की अवस्था एकशःफलनी जीर्णता कहलाती है। फल उत्पादन के पश्चात इनका जीवन समाप्त हो जाता है।
2. वायवीय तनों की जीर्णता : यह वार्षिक पौधों में होती है।

3. मौसमी पत्तियों की जीर्णता : पर्णपाती पौधों में होती है।
4. क्रमिक पत्तियों की जीर्णता : इसमें पत्तियाँ एक निश्चित काल तक जीवित रहती हैं इसके पश्चात् इनका जीवन काल समाप्त हो जाता है।
5. शुष्क फलों की जीर्णता।
6. मांसल फलों की जीर्णता।
7. भंजरित बीजपत्रों की जीर्णता।
8. पुष्पों के ऊतकों की जीर्णता ।
9. विशेष कोशिकाओं जैसे त्वचा रोम, वाहिनिका, वाहिका की जीर्णता।

विभिन्न प्रकार की जीर्णता आंरभ करने वाले कारक भिन्न-भिन्न होते हैं। एकश:फलनी जीर्णता में प्रेरक आंतरिक होता है। पतझड़ वाले पादपों की पत्तियों की जीर्णता को आंरभ करने वाले बाह्य कारक जैसे प्रदीप्तिकाल तथा तापमान प्रांरभिक उत्तेजना के अतिरिक्त विभिन्न जीर्णता स्वरुपों में जिनमें एक नियंत्रित जीर्णन जीन द्वितीयक जीन अभिव्यक्ति के कासकेड आंरभ करता है, जो जीर्णता तथा अंत में जीवन समाप्ति पर जाकर रुकता है। इसमें पत्तियाँ जो पादपों से अलग हो जाती हैं, तथा इनमें उपस्थित पर्णहरित, आरएनए, लिपिड, प्रोटीन धीरे-धीरे समाप्त होते हैं, चाहे ये नम भी रखी जाएँ तथा उन्हें खनिज लवण भी दिए जाएँ। यह प्रक्रिया पादप कोशिका मृत्यु के लिए उत्तरदायी है। यह पोषक तत्वों की गतिशीलता में वृद्धि कर देता है, पर्णहरित परिपक्वता में वृद्धि करता है तथा पत्तियों तथा बीजपत्रों में कोशिका-दीर्घन को बढ़ावा देता है। पादप हॉरमोन जैसे- ऑक्सिन तथा जिबरेलिन पत्तियों की जीर्णता की गति को धीमा कर देता हैं। ऐमीनों अम्ल जैसे-ग्लाइसीन, एलिनीन, सीरीन, इस प्रक्रिया को तेज करते हैं जबकि आरजिनिन इसे रोकता हैं। पीएच. का बदलाव भी जल अपघटनीय क्रिया को बढ़ाती है।

जीर्णता एक आनुवंशिक कार्यक्रम है:

इस क्रमिक गतिविधि में कोशिकीय तथा जैव रासायनिक प्रक्रियाँ होती हैं जिसके फलस्वरूप कुछ कोशिकांग नष्ट हो जाते है जबकि कुछ क्रियाशील बने रहते हैं। पत्तियों की जीर्णता में हरितलवक पहला कोशिकांग है जो नष्ट होता है।

इसके विपरीत केंद्रक क्रियात्मक तथा संरचनात्मक रुप से जीर्णता की अंतिम अवस्था तक सक्रिय रहता है। जीर्णित ऊतक, अपचयी जल अपघटनीय क्रिया के एन्जाइम जैसे प्रोटिएज, न्यूक्लिएज, लाइपेज पर्णहरित नष्ट करने में सहयोग करते हैं। विशेष जीन के सक्रियण से इन विशेष जीर्णन एन्जाइमों का निर्माण होता है।

पत्तियों में एम-आरएनए का स्तर भी कम हो जाता है जबकि अन्य प्रक्रियाओं की अधिकता हो जाती है।

कम प्रकटन वाले जीन जीर्णता के समय SDGs (Senescence Down regulated Genes) अत्यधिक क्रियाशील हो जाते हैं। ये जीन उन प्रोटीनों को बनाते हैं जो प्रकाश संश्लेषण में सम्मिलित होते है। अधिक प्रकटन वाले जीन SAGs (Senescence Associated Genes) कहलाते हैं।

इसमें वे जीन भी हैं जो एथिलीन के निर्माण में सम्मिलित हैं जैसे-ऐमिनो साइक्लो प्रोपेन 1-कार्बोसलिक अम्ल तथा ऐमिनो साइक्लो प्रोपेन-ऑक्सीडेज।

यह जीन उन एन्जाइमों को बनाता है जो रुपांतरण या अपघटनीय पदार्थो के पुनः प्रवेश में सम्मिलित होते हैं जैसे-ग्लूटामीन सिन्थेटेज जो अमोनियन के ग्लूटामिन में परिवर्तन को उप्रेरित करता है तथा जीर्णित ऊतकों के नाइट्रोजन पुनः चक्रण के लिए उत्तरदायी है।

क्रमादेशित कोशिका मृत्यु एक विशेष प्रकार की जीर्णता की अवस्था है-

जीर्णता पूर्ण वृक्ष के स्तर पर हो सकती है जैसे एक-फलनी जीर्णता, अंगीय स्तर पर पर्ण जीर्णता तथा कोशिकीय स्तर पर वाहिनिकीय तत्वों का विभेदीकरण।

यह विशेष संकेतों द्वारा होती है जैसे विभाजन के समय डीएनए प्रतिकृतीयन में दोष से होती है तथा जो विशेष जीनों के प्रकटीकरण में उत्तरदायी है। इन जीनों का प्रकटीकरण कोशिका मृत्यु के लिए उत्तरदायी है। पादपों में पूर्व नियोजित कोशिका मृत्यु मुख्यतया विभिन्न प्रकार के शारीरिक तथा जैव रासायनिक परिवर्तनों के कारण होती है। क्रमादेशित कोशिका मृत्यु के समय केंद्रक संगठित हो जाता है, केंद्रकीय डीएनए के विशेष खंड न्यूक्लिओसोम के मध्यस्थ डीएनए खंडित होने से निर्मित होते हैं इस कारण विशेष रुप से पादपों के जीर्णित ऊतकों में कोशिकीय परिवर्तन हो जाते हैं। क्रमादेशित कोशिका विभाजन जाइलम के तत्वों के विभेदीकरण के समय परिलक्षित होता है, उसी समय केंद्रक व क्रोमैटिन नष्ट हो जाते हैं और कोशिका द्रव्य तथा प्रोटिएज का संकतेन करते है। पौधों में मुख्य रुप से क्रमादेशित कोशिका मृत्यु रोगजनकों से रक्षा करती है।

जब पादप रोगजनकों से संक्रमित होते है तो संक्रमण स्थल पर अधिक मात्रा में विषैले फिनोलिक यौगिक एकत्रित हो जाते हैं और कोशिकाएँ एक गोलाकार द्वीप बना लेती हैं जो ऊतकक्षय में परिवर्तित हो जाता है। इसका उद्देश्य है कि रोगाणु स्वस्थ ऊतकों की पहुँच से दूर रहें। रोगाणु के प्रभाव से तीव्र कोशिका मृत्यु को अति संवेदनशील प्रतिक्रिया कहते हैं जो जैव रासायिनक क्रियाओं से कोशिका संकेतन की स्वतः मृत्यु को प्रेरित करती है जैसे टमाटर में अतिसंवेदनशील प्रतिक्रिया कवकों

के आविष से होती है। यह ऊतकक्षय (Apoptosis) प्रक्रिया को दर्शाता है। सामान्यतया ऊतकक्षय (Apoptosis) की आधारभूत क्रिया पौधों में संरक्षित रहती हैं। अतिसंवेदी प्रतिक्रिया एक आनुवंशिक क्रमादेशित कार्यक्रम है जो सामान्य ऊतकक्षय के विपरीत होता है उदाहरण के लिए एराबिडोप्सिस उत्परिवर्ती की उपस्थिति, रोगजनक की अनुपस्थिति में संक्रमण के प्रभाव की नकल कर पूरे कास्केड घटनाक्रम प्रारंभ करते हैं एवं उत्तकक्षयी घाव (necrotic lesions) बनाते हैं। उत्परिवर्ती में कोशिका मृत्यु का तात्कालिक कारण है सुपर ऑक्साइड का संचय तथा उन संकेतों के प्रति उत्तरदायिता। ऐसा प्रतीत होता है कि सुपर ऑक्साइड एक संकेत है जो जंगली पादपों के असंक्रामक रोगजनक में अतिसंवेदनशील प्रतिक्रिया को प्रारंभ करता है।

पर्यावरण हितैषी जैव-उर्वरक

डॉ. मुकेश कुमार
सह-आचार्य, वनस्पतिविज्ञान विभाग
साहू जैन महाविद्यालय, नजीबाबाद-246763 (उ.प्र.)
ई-मेल: mukesh.najibabad@gmail.com

जैव-उर्वरक क्या है

पादप विकास एवं वृद्धि के लिए प्रयुक्त जैविक उद्गम के सभी पोषक स्रोत, जैव-उर्वरक कहलाते हैं। जैविक उद्गम में सूक्ष्म जैविक प्रक्रियाओं द्वारा जटिल यौगिकों का संश्लेषण होता है जो बाहरी माध्यम अर्थात मृदा में पादपों की जड़ों के आसपास निष्कासित हो जाते हैं और वहाँ से पादपों द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। इसी कारण से जैव-उर्वरकों को सूक्ष्म जैविक स्रोत भी कहते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म जीवों द्वारा कार्बनिक पदार्थों के विघटन से प्राप्त पदार्थ जैव-उर्वरक कहलाते हैं। मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव एमोनीकरण, नाइट्रीकरण आदि प्रक्रियाओं द्वारा नाइट्रोजन का संरक्षण अथवा स्थिरीकरण करते हैं। इनका उपयोग मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए किया जाता है। जैव-उर्वरक मृदा में खनिजीकरण की प्रक्रिया में भी वृद्धि करते हैं।

जैव-उर्वरक (बायोफर्टिलाइजर) एक प्रकार से सजीव उर्वरक हैं। इनमें विद्यमान सूक्ष्मजीव वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित कर फसली पौधों को सरलता से उपलब्ध करा देते हैं। इनकी उपस्थिति में मृदा में पहले से उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस तथा अन्य पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में आ जाते हैं जिससे पौधे उन्हें आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। जीवाणुओं के प्रयोग से मृदा की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है किंतु इसका अन्य जीवों के स्वास्थ्य और पर्यावरण पर कोई विपरीत प्रभाव नही पड़ता। यदि कृषक रासायनिक उर्वरकों की अल्प मात्रा के साथ जैविक खाद का उपयोग करें तो उन्हें चमत्कारी परिणाम मिलेंगे। इससे अधिक उपज प्राप्त होने के साथ-साथ भूमि में कार्बनिक पदार्थ और नमी भी प्रचुर मात्रा में संपोषित रहेगी। जिससे भविष्य में भूमि की उर्वरा शक्ति में कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कम रासायनिक उर्वरक प्रयोग करने से कृषि लागत में कमी आएगी और किसानों की आय में बढ़ोतरी होगी। हमारे लिए यह जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि जैविक खाद रासायनिक उर्वरकों के पूरक हैं, विकल्प नहीं।

रासायनिक उर्वरकों के लगातार और असंतुलित प्रयोग से कृषि भूमि और निकटस्थ वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा घटने से उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। वर्षा ऋतु में खेतों में प्रयुक्त अतिरिक्त रासायनिक उर्वरक जल के साथ बहकर जलाशयों में पहुँच जाते हैं जिसके कारण जलाशयों के साथ-साथ भूमि का जल भी प्रदूषित हो जाता है। खेतों में जैव-

उर्वरकों का प्रयोग करके इस समस्याको काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। भूमी में पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने और रासायनिक उर्वरकों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए वैज्ञानिकों ने प्रकृति-प्रदत्त शैवालों, कवकों और जीवाणुओं की पहचान करके उनसे विभिन्न प्रकार के पर्यावरण हितैषी-जैव उर्वरक तैयार किए हैं। इनका प्रयोग करके हम अच्छी गुणवत्ता की उपज लेने के साथ-सकते हैं। भारत में सिक्किम जैसे कई राज्यों -साथ मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाए रख को सरकार ने जैविक प्रदेश घोषित कर दिया है। वहाँ कोई भी व्यक्ति खेती अथवा बागवानी में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं कर सकता। कीटनाशकों का प्रयोग भी वहाँ प्रतिबंधित है। उच्च गुणवत्ता के कार्बनिक उत्पाद बाज़ार में उच्च दामों पर बिकते हैं और हिमालयी क्षेत्र को प्रदूषण से मुक्ति भी मिल रही है। वहाँ के कृषक व्यवस्था से प्रसन्न और संपन्न हैं। प्रदूषण विहीन वातावरण के कारण वहाँ पर्यटन में भी वृद्धि हुई है। विकसित पर्यटन वहाँ के लोगों के लिए आय का एक अतिरिक्त स्रोत बन गया है।

जैव उर्वरकों के प्रकार

जैव-उर्वरकों के उत्पादन में प्रयोग किए गए सूक्ष्म जीवों के आधार पर इन्हें कई श्रेणियों में बाँटा गया है। ये मुख्यत: पाँच प्रकार के होते हैं (अ) जीवाण्विक जैव उर्वरक-(आ) नीलहरित शैवाल- जैव-उर्वरक (इ) वी.ए.एम. जैव-उर्वरक (ई) फॉस्फोरस विलायक जैव उर्वक और (उ) साइडेरोफोरस जैव उर्वक । प्रस्तुत लेख में इन सभी के विषय में समुचित जानकारी दी जा रही है। किसान भाइयों के हित में नील-हरित शैवाल (काई) जैव-उर्वरक के विषय में विशेष विषय-वस्तु प्रस्तुत की जा रही है-

जीवाण्विक जैव-उर्वरक

कुछ जीवाणु वायुमंडल की नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में सहायक हैं। जिसके फलस्वरूप वायुमंडल की नाइट्रोजन का विभिन्न रासायनिक परिवर्तनों द्वारा नाइट्रोजन यौगिकों में परिवर्तन होता है। इन यौगिकों का उपयोग पौधों द्वारा उर्वरक के रूप में कर लिया जाता है। जीवाण्विक-उर्वरक दो प्रकार के होते हैं-

1. सहजीवी जीवाणुसम

यह जीवाणु (दलहनी) पौधों जैसे मटर, चना, मूंग आदि पौधों की जड़ों में उत्पन्न गाँठों में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए *राइजोबियम* यह विशिष्ट पोषक पादपों के साथ सहजीवी संबंध में रहने वाले ग्रैम निगेटिव जीवाणु हैं। दो दाल वाले पौधों की जड़ों में राइजोबियम के संक्रमण से मूलग्रंथियों का -निर्माण होता है जिनमें वायुमंडल की नाइट्रोजन को परोक्ष रूप में ग्रहण करके विभिन्न नाइट्रोजन युक्त घटकों जैसे एमीनो अम्ल तथा पॉलिपेप्टाइड्स में परिवर्तित किया जाता है। यह परिवर्तन राइजोबियम तथा पौधों की कोशिकाओं के मध्य संयुक्त प्रक्रिया के द्वारा नाइट्रोजिनेज एन्जाइम की सहायता से

होता है। राइजोबियम जैव उर्वरक को मुख्य रूप से सभी तिलहनी और दलहनी-फसलों के बीजों के साथ भूमि में प्रसारित करने पर जीवाणु पौधों की जड़ों में प्रवेश करके छोटी छोटी-गाँठें बना लेते हैं। इन गाँठों में जीवाणु बहुत अधिक मात्रा में रहते हैं जो वायुमंडल में उपस्थित प्राकृतिक नाइट्रोजन को पोषक रूप में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध करा देते हैं। पौधों की जितनी अधिक गाँठें होती हैं, वह उतना ही स्वस्थ होता है। कृषि में राइजोबियम का उपयोग मूंगअरहर, सोयाबीन, मटर, ,उड़द, चना , मसूर, सेम और मूंगफली आदि में किया जाता है।

सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण की क्रिया- विधि

मूल ग्रंथिकाओं की कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में लेगहीमोग्लोबिन नामक लाल रंग का द्रव्य पाया जाता है जिसमें लौह अधिक मात्रा में होता है। लेगहीमोग्लोबिन नाइट्रोजन यौगिकीकरण में सहायक होता है। राइजोबियम जीवाणु ऑक्सीश्वसन करते हैं। श्वसन के समय इन जीवाणुओं द्वारा अधिक-से-अधिक ऑक्सीजन ग्रहण की जाती है और बहुत अधिक ऊर्जा निष्कासित होती है। यह ऊर्जा नाईट्रोजन यौगिकीकरण के समय काम आती है।

Allen एवं Allen के अनुसार इस लाल रंग के द्रव्य को राइजोबियम-लेग्यूम-कॉम्प्लेक्स कहा जा सकता है। जिन पादपों की मूल ग्रंथिकाओं में लेगहीमोग्लोबिन का अभाव होता है उनमें नाइट्रोजन यौगिकीकरण नहीं होता है। विर्टनेन एवं मीटिनेन के अनुसार, लेगहीमोग्लोबिन की सांद्रता तथा नाइट्रोजन यौगिकीकरण दर में घनिष्ठ संबंध होता है। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि लेगहीमोग्लोबिन तथा सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण एक-दूसरे पर आधारित होते हैं। लेगहीमोग्लोबिन ऑक्सीजन वाहक होता है तथा ऑक्सीजन राइजोबियम बैक्टीरॉइड के इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण श्रृंखला के लिए आवश्यक होती है। गुडविन एवं मरकर के अनुसार लेगहीमोग्लोबिन तथा ऑक्सीजन में बंधुता होती है। अतः बहुत कम ऑक्सीजन की सांद्रता होने पर भी मूल-ग्रंथिका के जीवाणुओं को ऑक्सीजन प्राप्त होती रहती है। बैक्टीरॉइड में आण्विक ऑक्सीजन का स्तर लेगहीमोग्लोबिन के कारण कम रहता है, यह क्रिया महत्वपूर्ण होती है क्योंकि ऑक्सीजन की उपस्थिति में नाइट्रोजिनेज एन्जाइम की क्रियाशीलता कम हो जाती है। अतः लेगहीमोग्लोबिन रहित मूल ग्रंथिकाएँ,नाइट्रोजन यौगिकीकरण नहीं कर सकती हैं।

अ

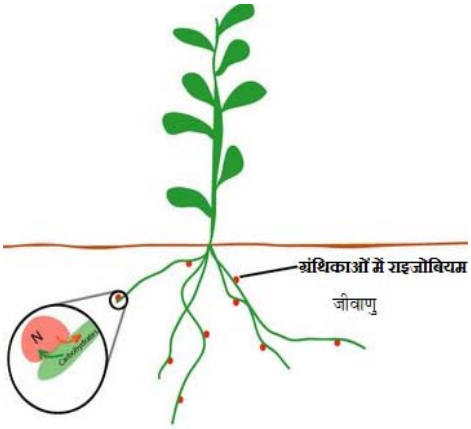

आ

इ

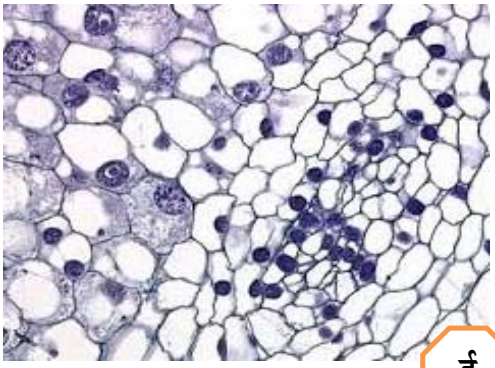

ई

चित्र 1 (इंटरनेट से साभार): (अ) एवं (आ)- लेग्युमिनोसी कुल के पादप की जड़ों (मूल) में सहजीवी *राइजोबियम* ग्रंथिकाएँ (राइजोबिया) (इ) *राइजोबियम लेगुमिनोसिरम*, (ई) मूल की अनुप्रस्थ काट में स्थित *राइजोबियम*

असहजीवी जीवाणु

इसके अंतर्गत *ऐजोटोबैक्टर* तथा *ऐजोस्पाइरिलम* जैसे जीवाणु आते हैं जिनका वर्णन निम्नवत है –

ऐजोटोबैक्टर

ऐजोटोबैक्टर नामक जीवाणु मृदा और पौधों की मूलीय सतह पर विद्यमान रहते हैं। ये वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पोषक तत्वों में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध करा देते हैं। दलहनी फसलों के अतिरिक्त सभी फसलों में इनका प्रयोग किया जाता है। *ऐजोटोबैक्टर* वायुजीवी, विषमभोजी

तथा नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले सूक्ष्म जीवाणु हैं। यह ग्रैम निगेटिव, बहुरूपी कशाभिक तथा पॉलिसैकेराइड्स एवं मिलेनिन उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीव हैं। ऐजोटोबैक्टर द्वारा पौधों की वृद्धि और उत्पादकता बढ़ जाती है। अनाज, छोटे अनाज, दालें, सब्जियाँ तथा फल वाले पौधों के लिए यह अत्यंत उपयोगी हैं। *ऐजोटोबैक्टर* के प्रयोग से धान के पौधों में 50% तथा गेहूँ के पौधों में 16 से 30% तक उत्पादकता बढ़ जाती है।

ऐजोस्पाइरिलम

ये ग्रैम-ऋणात्मक, गतिशील, सूक्ष्म आकार के वायुजीवी, जीवाणु हैं जो कि पोषक पादपों के साथ सहजीवी संबंध प्रदर्शित करते हैं। *ऐजोस्पाइरिलम* में नाइट्रोजन युक्त माध्यम में भी कार्बन के माध्यम से ग्लूकोस का उपयोग करने की क्षमता होती हैं। इनके उपयोग से अनाजों तथा घासों में उत्पादकता बढ़ जाती है। जीवाणु और नीलेह-रित शैवाल जैसे कुछ सूक्ष्म जीवों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का उपयोग करने और फसली पौधों को इस पोषक यौगिक को उपलब्ध कराने की क्षमता होती है। यह खाद मक्का, जौ, जई, ज्वार और बाजरा जैसी चारा वाली फसलों के लिए एक संरोपी है। इससे फसल उत्पादन की क्षमता 5 से 20 प्रतिशत बढ जाती है। एजोस्पाइरिम के प्रयोग से बाजरा की उत्पादन क्षमता 30 और चारा वाली फसलों की 50 प्रतिशत तक बढ सकती है।

चित्र 2 (इंटरनेट से साभार) : असहजीवी जीवाणु (अ) ऐजोटोबेक्टर जीवाणु (आ) ऐजोस्पाइरिलम

जीवाण्विक जैव-उर्वरक के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य जीवाणु भी जैव-उर्वरक के रूप में उपयोगी होते हैं -

(i) *क्लॉस्ट्रिडियम* नामक जीवाणु छड़ाकार होते हैं जो ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में जीवित रहते हैं।

(ii) क्लेब्सिएला, रोडोस्पाइरिलम एवं *डिजिटेरिया क्लेकुम्बेंस* तथा *ऐजीस्पाइरिलम लाइपोफेरम* के मध्य सहजीविता से नाइट्रोजन यौगिकीकरण प्रभावी रूप से होता है।

नील-हरित शैवाल जैव-उर्वरक

नील-हरित शैवाल ऑक्सीजेनिक प्रकाशसंश्लेषी जीवाणु हैं। ये हेटरोसिस्ट नामक विशिष्ट कोशिका संरचना द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण का कार्य करते हैं। नील-हरित शैवाल पौधों की वृद्धि सतह पर कार्बनिक पदार्थों को धीरे-धीरे एकत्रित करके मृदा को उर्वरक बनाते हैं। हेटरोसिस्ट तंतुमय नील-हरित शैवाल की जातियाँ जैसे *ऑलोसीरा, टोलिपोथ्रीक्स, एनाबिना, नास्टॉक, सिलिन्ड्रोस्पर्मम, वॉलिया, लिंगबया* तथा *ग्लियोट्राइकिया* आदि धान के खेतों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करते हैं। इनमें नाइट्रोजन यौगिकीकरण नाइट्रोजिनेज एन्जाइम की उपस्थिति में होता है। इन जीवों की मृत्यु होने पर इनके शरीर से प्राप्त अमोनिया (NH_3) को नाइट्रीकारी जीवाणुओं द्वारा नाइट्रेट्स (NO_3) में परिवर्तित कर दिया जाता है। जिनका अवशोषण पौधों द्वारा कर लिया जाता है। धान के लिए जैव-उर्वरक के रुप में नील-हरित शैवाल का उपयोग बहुत ही लाभदायक है। धान की फसल के लिए यह नाइट्रोजन और पोषक तत्वों का भंडार है। ये मृदा की क्षारीयता को भी कम करने में मदद करते हैं। नील-हरित शैवाल की निम्नलिखित जातियों के अध्ययन से जैव-उर्वरकों के रूप में इनकी उपयोगिता की जानकारी मिलती है।

एनाबिना : *एनाबिना* नामक नील-हरित शैवाल तथा जीवाणु के मध्य घनिष्ठ संबंध है। अतः जीव जगत मोनेरा की प्रथम शाखा नील-हरित शैवाल (सायनाबैक्टीरिया) तथा दूसरी शाखा शाइजोन्टा को प्रदर्शित करती है। *एनाबिना* को अंतः पादपी नीलहरित शैवाल- समूह में रखा गया है तथा यह *एजोला* की पत्तियों की कोशिकाओं में पाई जाती हैं। *एजोला* तेजी से वृद्धि करने वाला जलीय फर्न है। यह तालाबों गड्ढों तथा रुके हुए जल से भरी नहरों में वृद्धि करता है। इनकी पत्तियों की गुहा में *एनाबिना एजोली* नामक नील-हरित शैवाल पाए जाते हैं। ये वायुमंडलीय नाइट्रोजन यौगिकीकरण करके पत्तियों की गुहा में नाइट्रोजन यौगिकों को उत्सर्जित कर देते हैं जिनका उपयोग पौधे की पत्तियाँ करती हैं। यही कारण है कि धान के उत्पादन में जैव-उर्वरक के रूप में *एजोला पिन्नाटा* का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है।

नॉस्टॉक पंक्टिफॉर्मी : यह भी एक अंतः पादपी सहजीवी नील-हरित शैवाल है जो *एंथोसिरोस* के थैलस की कोशिकाओं में पाया जाता है तथा यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके पादप कोशिकाओं को नाइट्रोजनी यौगिक प्रदान करता है।

जैव-उर्वरक के रूप में नील-हरित शैवाल का महत्व

जैव-उर्वरक के रूप में नील-हरित शैवाल बहुत उपयोगी हैं। कृषि क्षेत्र में इनके कुछ महत्वपूर्ण उपयोग निम्नवत हैं :

1. भारत में *ऑलोसीरा फर्टीलिसीमा* नामक नील-हरित शैवाल जै-उर्वरक का उपयोग करने पर धान के खेतों में चावल की पैदावार 30% अधिक हो जाती है। राजस्थान में *एनाबिनोप्सिस* तथा *स्पाइरुलिना* का प्रयोग जैव-उर्वरक के रूप में किया जाता है।

2. इनके प्रयोग से चावल के उत्पादन में 10-30% तक वृद्धि होती है। ऐसा अनुमान है कि नील-हरित शैवाल उर्वरक का प्रयोग करने से प्रति हैक्टेयर 25 किग्रा. नाइट्रोजन की पूर्ति की जा सकती है।

3 आधुनिक युग में प्रयोगशालाओं में व्यापारिक स्तर पर नील-हरित शैवाल जैसे *एनाबिना, ऑलोसीरा, नास्टॉक* तथा *प्लेक्टोनीमा* आदि को संबंधित किया जाता है जिसे कृषकों द्वारा जै-उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाता है।

वेस्कुलर अर्बसकुलर माइकोराइजा (वी.ए.एम.) जैव-उर्वरक

वी.ए.एम. जैव-उर्वरक अथवा कवकमूल (माइकोराइजा) भी एक प्रकार के जैव-उर्वरक हैं जो कि कवक तथा उच्चवर्गीय पौधों की जड़ों के बीच सहजीवी संबंध प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ *मोनाट्रॉपा* तथा *निओटिया*। वी.ए.एम. एक अंतः मूल कवक है जो पौधों की जड़ों की वल्कुट कोशिकाओं तथा अंतः कोशिकी स्थानों में पाए जाते हैं। अत इन्हें वी.ए.एम. जैवउर्वरक- कहते हैं। यह कवक मृदा से फास्फोरस ग्रहण करके अपने कवकजाल द्वारा उसे पौधों की जड़ों में स्थानांतरित करता है, जिसे पौधों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है। अनाज वाले और दो दाल वाले पौधों के साथ फसल चक्रीकरण करने पर पौधों की जड़ों में उच्च समूहीकरण तथा वी.ए.एम. की अधिक संख्या पाई जाती है जिससे पौधों को भरपूर मात्रा में उर्वरक की प्राप्ति होती है।

कवकमूल मृदा से पौधों को विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व जैसे फास्फोरस ,नाइट्रोजन और सूक्ष्म पोषक तत्वों को ग्रहण करने में मदद करता है और फसलों की पैदावार बढ़ने में प्रमुख भूमिका निभाता है। कवकमूल पौधों के द्वारा अंतः प्रक्रिया को बढ़ा देता है। सूखे जैसी परिस्थितियों में यह पौधों को हरा-भरा रखने में सहायता करता है।

वी.ए.एम. जैव-उर्वरक के प्रकार

उच्चवर्गीय पौधों की जड़ों में वी.ए.एम. की उपस्थिति के आधार पर मुख्य रुप से यै जैव-उर्वरक दो प्रकार के होते हैं-

1 बाह्य-मूलीय वी.ए.एम.

इसमें कवक तंतु, पोषक पौधे की जड़ों की सतह पर एक स्तर बना लेते हैं। जिससे मूल जड़ों की आकारिकी बदल जाती है तथा मूल रोम भी विकसित नहीं हो पाते हैं। ऐसे कवकतंतु जो मूलों की सतह पर फैले रहते हैं उनमें से अधिकांश तंतु, कार्बनिक पदार्थ युक्त मिट्टी में प्रवेश करते हैं। जो कुछ एन्जाइमों का स्रवण करके कार्बनिक पदार्थों को घुलनशील बनाकर उनका अवशोषण करते हैं। इस प्रकार से अवशोषित कार्बनिक पदार्थ कवक तंतुओं द्वारा पौधों की मूलीय कोशिकाओं में पहुँच जाता है। जिसके द्वारा पोषक पौधों को पोषण प्राप्त होता है, उदाहरण- *निओटिया* कवक।

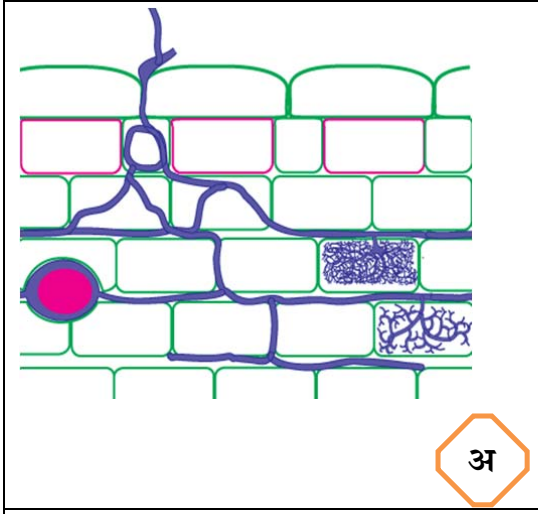

चित्र 3 : (अ) ग्लोमस प्रजाति द्वारा निर्मित कवकमूल (आ) ग्लोमस के जीवित बीजाणु

2 अंत:मूलीय वी.ए.एम.

इसमें कवक तंतु पोषक पौधे की मूलीय सतह पर फैले रहते हैं। किंतु स्तर नहीं बनाते हैं। इसमें मूलों की आकारिकी अपरिवर्तित रहती है तथा मूल रोम भी पाए जाते हैं। इन कवक तंतुओं में से कुछ मृदा में प्रवेश कर जाते हैं तथा कुछ पौधों की मूलीय वल्कुट कोशिकाओं के भीतर तक प्रवेश कर जाते हैं और कुछ अन्त:कोशिकी अवकाश में स्थापित रहते हैं। इस प्रकार के सहजीवी संबंध में कवकों को परपोषी पौधों से शर्कराएँ तथा विटामिन प्राप्त होते हैं तथा पोषी पौधों को कवकों के द्वारा मृदा से अवशोषित कार्बनिक पदार्थ, खनिज तथा नाइट्रोजनी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार का संबंध ऑर्किड्स तथा *मोनोट्रॉपा* में पाया जाता है। यदि परपोषी पादपों तथा इनमें मिलने वाले कवकों को अलग-अलग विकसित किया जाए तो दोनों की वृद्धि अत्यंत धीमी हो जाती है। इस प्रकार वी.ए.एम. (कवकमूल) कुछ पौधों में जैव-उर्वरक का कार्य करते हैं।

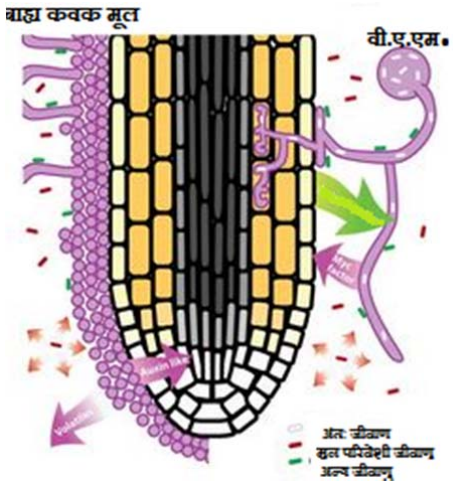

चित्र 4 : पादप और कवकमूल का संबंध I

फॉस्फोरस विलायक जैव-उर्वरक

विभिन्न सूक्ष्मजीव जैसे जीवाणु, कवक तथा यीस्ट आदि फास्फेट विलायक होते हैं। अत: इन सूक्ष्मजीवों को फास्फोरस विलायक सूक्ष्मजीवी अर्थात पी.एस.एम.(फास्फोरस सोल्युबिलाइजिंग माइक्रोआर्गेनिज़्म) भी कहते हैं। पी.एस.एम.अघुलनशील मृदा फॉस्फेट एवं फॉस्फेट उर्वरक जैसे खनिज फॉस्फेट, अस्थिचूर्ण आदि को घुलनशील बनाने के साथ ही मृदा में भी वृद्धि करते हैं। पी.एस.एम.के रूप में उपयोग किए जाने वाले विभिन्न सूक्ष्मजीव निम्न हैं-

जीवाणु : जैसे स्यूडोमोनास, बैसिलस पालीमिक्सा

कवक : जैसे एस्पर्जिलस अवामोरी, पेनिसीलियम डिजीटेटम

यीस्ट : जैसे सिम्फोरीकारपस ऑक्सीडेन्टेलिस

सिडेरोफोरस जैव-उर्वरक

बहुत से वायवीय/अवायवीय सूक्ष्मजीव मृदा में लौह तत्व की कमी होने पर बाह्य कोशिकीय, लौह अणुओं का पारगमन करने वाली कारक संरचना (सिडेरेफोरस) बनाते हैं। यह कारक पौधों की कोशिकाओं में लौह की पूर्ति करते हैं तथा यह मृदा में विभिन्न सूक्ष्मजीवों का संख्या-घनत्व (आबादी) बनाए रखते हैं।

जैव-उर्वरकों की प्रयोग विधि

1. बीज उपचार विधि

जैव-उर्वरक के प्रयोग की यह सबसे अच्छी विधि है। एक लिटर पानी मे लगभग 100 से 110 ग्राम गुड़ के साथ जैव-उर्वरक को अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते हैं, इस घोल को 20 किलोग्राम बीज पर

अच्छी तरह छिड़ककर, बीजों के ऊपर इसकी परत बनाई जाती है, इसके बाद इसको छायादार स्थान पर सुखाते हैं, बीजों के अच्छे से सूखने पर तुरंत बुवाई कर दी जाती है।

2. कंद उपचार विधि

गन्ना, आलू, अरबी और अदरक जैसी फसलों में जैव-उर्वरक के प्रयोग के लिए कंदों को उपचारित किया जाता है। एक किलोग्राम *ऐजोटोबेक्टर* और एक किलोग्राम फास्फोरस विलायक जीवाणु का 25 से 30 लिटर पानी में घोल तैयार करके, उसमें कंदों को 10 से 15 मिनट तक डुबा देते हैं और फिर निकालकर रोपाई कर देते हैं।

3. पादप उपचार विधि

धान और सब्जी वाली फसलें जैसे टमाटर, फूलगोभी, पत्ता गोभी और प्याज इत्यादि जिनमें पौध की रोपाई की जाती है, उनमें पौध की मूल को जैव-उर्वरकों द्वारा उपचारित किया जाता है। इसके लिए एक चौड़े और खुले मुँह के बर्तन में 6 से 8 लिटर पानी लेकर उसमें 1 किलोग्राम *ऐजोटोबैक्टर*, 1 किलोग्राम फास्फोरस विलायक जीवाणु और 250 से 300 ग्राम गुड़ मिलाकर घोल बना लेते हैं। इसके बाद पौध को उखाड़कर उसकी जड़ें साफ कर करके 70 से 100 पौधों के बंडल गट्ठर बना लेते हैं। अब उन बंडलों की मूल को जैव-उर्वरक के घोल में 10 से 15 मिनट के लिए डुबो देते हैं। फिर बर्तन से बाहर निकालकर तुरंत रोपाई कर देते हैं।

4. मृदा उपचार विधि

5 से 10 किलोग्राम जैव-उर्वरक को फसल की आवश्कता के अनुसार, 80 से 100 किलोग्राम मिट्टी या कम्पोस्ट खाद के साथ मिश्रित करके 10 से 12 घंटे के लिए छोड़ देते हैं, इसके बाद अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देते हैं।

जैव-उर्वरकों का महत्व

1. जैव उर्वरक-अन्य उर्वरकों की अपेक्षा सस्ते हैं।
2. इनका उपयोग आसान है।
3. ये पर्यावरण को हानि नहीं पहुँचाते।
4. इन्हें लंबे समय तक संग्रहित करके रखा जा सकता है।
5. कृषकों हेतु कृषि उपयोग के लिए जैव-उर्वरक अनुकूल होते हैं।
6. ये प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखते हैं।
7. वर्तमान फसल के बाद आगामी फसल को भी लाभ प्रदान करते हैं।

8. मृदा में उचित नमी बनाए रखते हैं।
9. वातावरण को मृदा तथा वायु प्रदूषण से बचाते हैं।
10. इनके प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी नहीं होती।
11. जैव-उर्वरक के प्रयोग से उच्च गुणवत्ता के कार्बनिक उत्पाद होते हैं, जिनके बाजार में उच्च दाम मिलने से कृषकों की आय में वृद्धि होती है।

जैव-उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियाँ

1. बाज़ार से जैव-उर्वरक खरीदते समय उर्वरक का नाम, फसल की आवश्यकता और जैव-उर्वरक के पैकेट पर प्रयोग हेतु अंकित अंतिम तिथि अवश्य जाँच लें।
2. जैव-उर्वरकों को सदैव छायादार स्थान पर ही रखें।
3. जैव-उर्वरक को दिनांक समाप्ति के बाद प्रयोग न करें।
4. फसल के लिए उचित जैव-उर्वरक का चुनाव करें अन्यथा उत्पादन प्रभावित हो सकता है।
5. फसल और कंपनी द्वारा निर्धारित मापदंडों के अनुसार उचित मात्रा में ही जैव-उर्वरक का प्रयोग करें। यह उल्लेख जैव-उर्वरक के प्रत्येक पैकेट पर उपलब्ध होता है।

संदर्भ:

- कुमार मुकेश (2014): साइनोबैक्टीरियल डाइवर्सिटी ऑफ दी सबहिमालयन बेल्ट ऑफ नॉर्दर्न हिमालयाज, डी.एस-सी. थीसिस, एच. एन.बी. गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखंड
- कुमार मुकेश (2017: जीवनदायिनी नीली-हरी कई परिलेखन प्रकाशन, नजीबाबाद
- पांडेय एम.सी. (1979): क्रिप्टोगैम्स, भाग-1, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ
- पांडेय बी. पी. (1983): कॉलेज बॉटनी, भाग1-, एस चांद एंड कंपनी लि (.प्रा), लि. रामनगर, नई दिल्ली
- फादर कामिल बुल्के (1988): अंग्रेजी-हिंदी कोश, एस. चांद एंड कंपनी (प्रा) लि. रामनगर, नई दिल्ली
- सिंह वी., पांडेय पी. के. एवं जैन डी. के. (2005): ए टेक्स्ट बुक ऑफ बॉटनी, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ
- वनस्पतिविज्ञान शब्दसंग्रह (1997:) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

पादप रोग निवारण

डॉ. आशीष तेजस्वी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
निशांत वशिष्ठ - शोधार्थी, वनस्पतिविज्ञान विभाग
आगरा महाविद्यालय, आगरा (उ.प्र.)
ई-मेल : tejasvi.botany@gmail.com

यह सत्य है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है। स्वास्थ्य संपूर्ण जीव जगत के सुचारु रूप से क्रियात्मक होने की अनिवार्य दशा है। अतः जंतु जगत हो या पादप जगत, स्वास्थ्य की महत्व सबके लिए एक-सी है। साधारणतः रूप, रंग, आकार, व्यवहार आदि में हुआ कोई अवांछनीय परिवर्तन रोग कहलाता है। रोगों का इतिहास लगभग उतना ही प्राचीन है जितना जीव जातियों का प्राचीन धार्मिक ग्रंथों, वेद, बाइबल आदि में विभिन्न पादप रोगों से फसलों के नुकसान का वर्णन मिलता है। अर्थात रोगों से पादप जगत भी प्राणी जगत जितना ही प्रभावित है। चूँकि जंतु जगत, अपने पोषण के लिए पादप जगत पर निर्भर है इसलिए पादप जगत के विभिन्न रोग और भी अधिक विचारणीय हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में विभिन्न पादप रोगों से प्रतिवर्ष कुल खाद्यान्न का लगभग 18% नष्ट हो जाता है।

'पादप रोग विज्ञान' या 'फ़ाइटोपैथोलोजी' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है पादप रोगों का अध्ययन। पादप रोग विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत पादप रोग कारकों, रोग हेतु विज्ञान, उनके परिणामस्वरूप हुई हानियों एवं प्रबंधन का अध्ययन किया जाता है। जर्मन पादप विज्ञानी हेनरिक एंटोन डी. बैरी को पादप 'रोग विज्ञान का जनक' कहा जाता है।

पादप रोग विज्ञान एक व्यावहारिक विज्ञान है जिसके अंतर्गत पादप रोग के कारक एवं उनके प्रायोगिक समाधान आते हैं। पादप जगत में ये रोग कवक, जीवाणु, विषाणु, माइकोलैज्मा, सूत्रकृमि आदि के अतिरिक्त कुछ निर्जीव कारकों जैसे जहरीली गैसों आदि से होते हैं। अतः पादप रोग विज्ञान का संबंध विज्ञान की अन्य शाखाओं से स्वाभाविक ही है। पादप रोग बीज को बोने से लेकर फसल के कटने तक किसी भी अवस्था पर उत्पन्न हो सकते हैं। पौधों के जीवन काल में बीज विगलन, अंगमारी, बालपौध अंगमारी, स्तंभ विगलन, पर्ण धब्बा, पुष्प अंगमारी तथा फल विगलन जैसी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। पादप विज्ञानियों द्वारा पौधों व फसलों के विभिन्न रोगों को उनके कारकों के आधार पर चिह्नित कर उनके अध्ययन व रोकथाम के लिए सुगमता से वर्गीकृत किया गया है। यह सर्वमान्य वर्गीकरण करने से साधारण जन व कृषक भी इस जानकारी का लाभ उठाकर एवं अपने घरेलू प्रयासों से भी पादप रोगों पर कुछ नियंत्रण पा सकते हैं। पादप रोगों की भयावहता व उनके द्वारा

अनुमानित हानि को देखते हुए ही देश में समय-समय पर कृषि मंत्रालय द्वारा पादप विज्ञानियों के सुझावों को कृषकों तक पहुँचाया जाता है और सभी प्रकार के रोगों का निवारण उपायों व दवाओं के वितरण द्वारा किया जाता है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य जिज्ञासावश आकर्षित होकर अध्ययन हेतु या व्यापार हेतु अपने साथ विभिन्न किस्म के पौधे, कई प्रकार के बीज व भिन्न-भिन्न पादप सामग्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर व एक देश से दूसरे देश में ले जाता रहा है। पारगमन के इसी क्रम में पादप जगत के विभिन्न रोगकारकों को भी इस तरह से स्थानांतरण का अवसर मिला और शीघ्र ही देखते-देखते विभिन्न पादप रोगकारक (कवक, जीवाणु, विषाणु आदि) विश्व में एक समान रूप से व्याप्त हो गए। विभिन्न रोग विज्ञानियों का मानना है कि जब कोई नवीन रोग किसी नए क्षेत्र में प्रवेश करता है तब वह उन रोगों की तुलना में अत्यधिक विनाशकारी प्रमाणित होता है जो उस क्षेत्र पर पहले से ही उत्पन्न होते रहे है। कभी-कभी तो कुछ रोग जो अपनी उत्पत्ति वाले क्षेत्र में अल्प विनाशी होते हैं परंतु नए क्षेत्र की जलवायु में अत्यधिक हानिकारक हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, फ्रांस में अंगूरों का मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्डयू) रोग का प्रवेश वर्ष 1878 में अमेरिका से मंगाई गई अंगूरों की कलमों के कारण हुआ था तथा इसी रोग के कारण फ्रांस के अंगूर उद्योग को अत्यधिक हानि हुई थी। भारत में भी प्रवेशित अनेक बाह्य रोग कारकों से उत्पन्न पादप रोगों ने समय-समय पर आक्रमण कर फसलों को अत्यधिक हानि पहुँचाई हैं। यद्यपि भारत में अब तक पादप रोगों द्वारा होने वाली हानि का सही-सही मूल्यांकन नही किया गया है परंतु अनुसंधान द्वारा कुछ भीषण पादप रोगों जैसे धान का झोंका एवं भूरा पर्णदाग, गेहूँ का करनाल बंट तथा आलू की विलंबित अंगमारी के उग्र विस्तार से संबंधित विभिन्न कारकों का अध्ययन कर पूर्वानुमान मॉडल प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि पादप रोगों की सूची अति विस्तृत है लेकिन रोग प्रकार के आधार पर उन्हें कुछ श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, इनमें सर्वप्रथम पर्ण गलन रोग जिसका कारक फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका नामक कवक है। इसमें पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। कवक जनित रोगों के अन्य उदाहरण स्तंभ विगलन, ग्रीवा विगलन या गंदली रोग, पर्णचित्ती रोग, चूर्णिल आसिता इत्यादि हैं जिनके कारक क्रमशः पाइपरीना, स्केलरोशिम रेल्फ्साई, कोलेटोट्राईकम कैटसीसी, आइडियम पाईपेरिस हैं। कवक जनित रोगों के पश्चात जीवाणु जनित रोग आते हैं जिनमे पर्णचित्ती या लीफ स्पॉट रोग, पर्ण अंगमारी मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त पान में बिटलवाइन बग, मिली बग, गन्ने में लाल सड़न, आम की चूर्णिल आसिता, अमरुद, अरहर तथा चने का उकठा, गेंहूँ, चाय, काफी का किट्ट रोग, सब्जियों की जड़ग्रंथि व मोजेक धान का झोंका, केले का गुच्छ शीर्ष, कपास का झुलसा इत्यादि भी हैं जो फसलों व पादपों मे अपरिमित क्षति पहुँचाते हैं।

कीटों व खरपतवारों से जनित फसल रोगों से अत्यधिक क्षति होने के कारण वर्तमान समय में किसान अनियंत्रित ढंग से रसायनों का प्रयोग कर रहे हैं। कृषि रसायनों के अनियंत्रित उपयोग से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दुष्परिणाम हैं जैसे कीटों में रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास, प्राकृतिक शत्रुओं का विनाश, मनुष्यों व पशु-पक्षियों में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, पर्यावरण प्रदूषण इत्यादि। पादप विज्ञानियों द्वारा इस गंभीर समस्या के समाधान स्वरूप जैविक नियंत्रण को भी पौधों में रोग नियंत्रण हेतु प्रयोग में लाया गया है। जैविक नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसमें किसी जीव द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं के कारण, दूसरे रोग कारक जीव का आंशिक व पूर्ण रूप से विनाश किया जा सकता है। इन्हीं कई उपायों से पादप रोगों को निश्चित सीमा में पूर्ण रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

पर्यावरण संरक्षण में सूक्ष्मजैविकीय योगदान

हर्षा शर्मा, डॉ. अवधेश कुमार कौशल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं संबद्ध विज्ञान संकाय
मदरहुड विश्वविद्यालय,रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखंड
ई-मेल : akkoshal@hotmail.com
ई-मेल : vashishthaharsha5@gmail.com

प्रस्तावना

साधारणतः एक ग्राम मिट्टी में 4 करोड़ जीवाणु तथा 1 मिलीलीटर जल में 10 लाख जीवाणु पाए जाते हैं। संपूर्ण पृथ्वी पर अनुमानतः 0.8 से 16 लाख जीवाणुओं की प्रजातियां पाई जाती हैं। जो संसार के जैव संहति (बायोमास) का एक बहुत बड़ा भाग हैं। ये कई तत्वों के चक्र में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, जैसे वायुमंडल के लिए नाइट्रोजन के यौगिकीकरण में। हालाँकि अभी तक बहुत सारे वंश के जीवाणुओं का श्रेणी-विभाजन भी नहीं हुआ है तथापि इनमें से लगभग 50% किसी न किसी जाति के रूप में प्रयोगशाला में संवर्धित किए जा चुके हैं।

सूक्ष्मजीव घरेलु, कृषि या औद्योगिक कूड़े तथा मृदा (मिट्टी), अवसाद एवं समुद्रीय पर्यावरणों में अधोसतही प्रदूषण के सूक्ष्मजैविक विघटन या जैवपुनर्निर्माण में प्रयुक्त होते हैं। प्रत्येक सूक्ष्मजीव द्वारा विषाक्त कूड़े के विघटन की क्षमता संदूषित के स्वभाव पर भी निर्भर करती है, क्योंकि अधिकांश स्थल विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों से युक्त होते हैं। सूक्ष्मजैविक विघटन की सर्वोत्तम प्रभावी पद्धति वह है जिसमें विभिन्न जीवाण्विक जातियों व प्रभेदों; जिनमें से प्रत्येक या अनेक प्रकार के संदूषकों के विघटन में सक्षम हो; के मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। पौधों, जंतुओं एवं सूक्ष्मजीवों सहित विभिन्न प्रकार के जीवधारी, जो इस ग्रह पर हमारे सहभागी हैं, संसार को रहने योग्य एक सुंदर स्थान का रूप प्रदान करते हैं। सजीव जीवधारी पर्वतीय चोटियों से लेकर समुद्र की गहराइयों, मरुस्थलों से लेकर वर्षावनों तक लगभग सभी जगहों पर पाए जाते हैं। इनकी प्रकृति, व्यवहार, आकृति, आकार, एवं रंग भिन्न-भिन्न होते हैं। जीवधारियों में पाई जाने वाली असाधारण विविधता हमारे ग्रह के अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण भागों की रचना करती है, हालाँकि निरंतर बढ़ रही जनसंख्या के कारण जैव विविधता को गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। आज विश्व स्तर पर पर्यावरण संरक्षण में जैवप्रौद्योगिकी की सहायता ली जा रही है। बढ़ती हुई आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु औद्योगिक उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है जिसके कारण आए दिन इन कल-कारखानों से हानिकारक एवं अपशिष्ट पदार्थ हमारे वातावरण में फैलते जा रहे हैं। इसी तरह शहरी जलमल, घरेलू कचरे, अस्पतालों एवं नर्सिंग होम के जैविक अपशिष्ट, सड़कों पर बढ़ती गाड़ियों, कृषि में अत्यधिक

रसायनों, डेयरी अपशिष्टों, तेल शोधक संयंत्रों के हानिकारक उपोत्पादों, रसायन उद्योगों के कचरों एवं हानिकारक अपशिष्टों, प्लास्टिक के बढ़ते उपयोग आदि के कारण प्रदूषण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। विश्व के विभिन्न देशों में जैवप्रौद्योगिकी के माध्यम से इन प्रदूषकों को उपचारित किया जा रहा है (अनाम, 1992)।

पर्यावरण शुद्धता में विभिन्न सूक्ष्मजीवों का प्रयोग

वाहित मल के प्रारंभिक उपचारण के बाद द्वितीय स्तर पर जैवप्रौद्योगिकी की सहायता ली जाती है। यहाँ कार्बनिक पदार्थों के पाचन हेतु स्यूडोमोनास, माइक्रोकोकस, नाइट्रोसोमोनास, सार्सिना, स्टेफाइलोकोकस एवं एक्रोमोबैक्टर प्रयुक्त होते हैं। वायवीय जैव रिएक्टर में जैव फिल्म एवं ऊर्जा के निर्माण हेतु जुग्ला प्रेमिजेरा नामक जीवाणु का प्रयोग होता है। नाइट्रोसोमोनास एवं नाइट्रोबैक्टर का प्रयोग अमोनिया के पाचन के लिए किया जाता है जो इन्हें नाइट्रेट में परिवर्तित कर देते हैं। फिर एक्रोमोबैक्टर एल्कलीजींस एवं स्यूडोमोनास का उपयोग कर नाइट्रेट को नाइट्रोजन में अपचयित कराया जाता है। साथ ही इस तरह जैव रिएक्टर में जैव फिल्म की सतह पर जैवप्रौद्योगिकी के सफल प्रयोग से कई प्रकार के प्रोटोजोआ, कवक एवं शैवाल को स्थापित किया जाता है जो फास्फोरस, नाइट्रोजन तथा अन्य पोषक तत्वों का पाचन कर लेते हैं। उसी प्रकार से अवायवीय जैव रिएक्टर में अवायवीय जीवाणु तथा बेसीलस डीनाइट्रीफिकेंस, डिसल्फोविब्रियो, मिथैनोप यूरॉन एवं मिथैनोप्टेरित आदि की मदद से वसा, कार्बोहाइड्रेट व प्रोटीन का पाचन कर मीथेन एवं कार्बन डाइऑक्साइड उत्पादित की जाती है। हमारी मृदा में अनावश्यक रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों एवं अपतृण नाशकों की बढ़ती मात्रा के दुष्प्रभाव को घटाने हेतु इनका विघटन आवश्यक है जिसमें जैवप्रौद्योगिकी की सहायता ली जाती है। आज पुनर्योजी डीएनए तकनीक से ऐसे जीवाणुओं का निर्माण किया गया है जो जीवेतर यौगिकों को अपघटित करने में सक्षम हैं। साथ ही जैवप्रौद्योगिकी के अंतर्गत समुद्री सूक्ष्मजीवों एवं पादप प्लवक का उपयोग डी.डी.टी. के अवशोषण हेतु किया जा रहा है। (अनाम, 2011).

हानिकारक कीटों को जैवप्रौद्योगिकी के अंतर्गत सूक्ष्मजीवों द्वारा नष्ट करने की नई तकनीक का सफल प्रयोग हो चुका है। इस तकनीक में हानिकारक कीटों के शरीर में परिवर्धित सूक्ष्मजीवों के द्वारा रोग उत्पन्न किए जाते हैं जिनसे अंततः कीट मर जाते हैं। पोपिला जैपोनिका नामक कीटों के नाश हेतु बैसीलस पोपिलीडक्टी जीवाणु की सहायता ली जाती है। यह सब इसलिए किया जाता है ताकि हानिकारक रासायनिक कीटनाशकों का कम-से-कम उपयोग कर अपने पर्यावरण को सुरक्षित व शुद्ध बनाया जा सके। आज सैकड़ों रोगजनक जीवाणुओं की पहचान की जा चुकी है जो रोग उत्पन्न कर कीट नाशक का कार्य कर रहे हैं। (अनाम, 2011)

जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनेक अनुसंधानों के पश्चात ऐसे कवकों की खोज की गई है जो कीटों की त्वचा को छेदकर उसमें घुस जाते हैं और वहाँ आविष उत्पन्न करते हैं जिसके कारण अंततः कीट मर जाते हैं। जैवप्रौद्योगिकी के सफल प्रयोग से अनेक प्रकार के जैव उर्वरकों की खोज की गई है जिससे कि मिट्टी में रासायनिक उर्वरकों की निम्नतम आवश्यकता रहे। उदाहरणार्थ, थायोबैसिलस जीवाणु की पहचान की गई है जो मृदा में अघुलनशील फास्फेट लवणों को घुलनशील लवणों में परिवर्तित कर देते हैं जिससे ये लवण आसानी से खेतों में उगी फसलों को उपलब्ध हो जाते हैं। वियतनाम जैसे कुछ देशों में जैव उर्वरक के अंतर्गत एजोला फर्न का धान की खेती में बड़े स्तर पर प्रयोग हो रहा है। कुछ अन्य सूक्ष्मजीवों की भी खोज की गई है जो पौधों में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में सहायक हैं, जैसे-राइजोबियम द्वारा प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर करीब 60 किग्रा से 150 किग्रा तक वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण किया जा सकता है। नाइट्रोजन यौगिकीकरण में अन्य सूक्ष्मजीव एजोटोबैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम भी सहायक हैं। सायनोजीवाणु, शैवाल तथा एनाबिना, प्लेक्टोनिमा, नॉस्टाक भी प्रकृति से नाइट्रोजन लेकर उनका यौगिकीकरण करते हैं। इस प्रकार जैवप्रौद्योगिकी से पर्यावरण संरक्षण में काफी सहायता मिल रही है। पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में जैवप्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम महत्त्वपूर्ण साबित होंगे। (अग्रवाल एवं रिखाड़ी, 1998)

जैव नियंत्रक सूक्ष्मजीव

जीवाणु, कवक एवं एक्टीनोजीवाणु की प्रमुख प्रजातियाँ पादप मूल रोग के रोकथाम के लिए जैव-नियंत्रक के रूप में कार्य कर सकती हैं। कृषि एवं बागबानी फसलों में रोग नियंत्रण हेतु कई जीवाणु तथा कवक के टीके के रूप में बाजार में उपलब्ध हैं। मृदाजन्य पादप रोगों के जैव-नियंत्रण हेतु सूक्ष्मजीवों के प्रयोग में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जैसे जीवन दर कम होना, परिवर्ती मूल उपनिवेशन एवं प्राकृतिक वातावरण के प्रति अनुकूलता में कमी होना इत्यादि। जैव-नियंत्रक की सफलता उनकी इस क्षमता पर निर्भर करती है जिसमें वे प्रभावी जैव-नियंत्रण प्रदान करने हेतु पर्याप्त संख्या बनाए रखे, मूलक्षेत्र में उस अवधि की लंबाई को बढ़ाएँ जिसके दौरान सीमा जनसंख्या घनत्व में निरंतरता बनी रहे एवं प्रयुक्त राइजोजीवाणु द्वारा रोग नियंत्रण के परिणाम में वृद्धि हो सके। जैव नियंत्रक जीवाणुओं का आमतौर पर प्रति जीवाणु विकिरण क्षमता का परीक्षण किया जाता है जो स्थानीय जीवाणुओं की विरोधात्मक परभक्षी प्रवृत्ति, परजीविता एवं प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न होती है। यद्यपि जो जीवाणुओं रोगों और कीटों में दैहिक प्रतिरोध को प्रेरित करते हैं उन्हीं में प्रतिकूल परिस्थितियों में सफल रहने की क्षमता सबसे ज्यादा होती है। सूक्ष्मजीवाणुओं की विविधता, रोगजनक जीवाणु और संक्रमण में कमी, पौध-वृद्धि उत्प्रेरक और दैहिक प्रतिरोध प्रेरण से कई क्षेत्रों की मिट्टी

में रोग जीवाणु, में पोषी पौधों और अनुकूल जलवायु की उपस्थिति में भी रोग की गंभीरता को कम कर देती है। (सैयद, 2002)

कुछ जीवाणु कार्बनिक मल पदार्थों जैसे गोबर, मल व पेड़-पौधों की सड़ी-गली पत्तियों को खाद तथा ह्यूमस में बदलकर उपयोगी बनाते हैं। ईशचिरिया कोलाई नामक जीवाणु मनुष्य व दुसरे जंतुओं की छोटी आँत में रहता है और विटामिन का निर्माण करता है. ऐसा कहना गलत नही होगा कि जीवाणु हमारी काफी आर्थिक सहायता करते हैं जैसे कि हमने ऊपर आलेख में देखा जीवाणुओं की कुछ ऐसी क्रियाएँ भी हैं जिनसे हानि भी पहुँचती है उदाहरण के लिए भोजन का सड़ना, रोग का होना, कपास का नाश आदि।

कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के प्रमुख उपयोगों में पीड़क प्रतिरोधी फसलों का निर्माण है जो पीड़कनाशकों की मात्रा के प्रयोग में कमी लाती है। बी.टी. एक प्रकार का आविष है जो बैसिलस थुरीजिएन्सिस (संक्षेप में बी.टी.) जीवाणु से निर्मित होता है। बी.टी. आविष जीन जीवाणु से क्लोनित होकर पौधों में प्रकट होकर कीटों (पीड़कों) के प्रति प्रतिरोधकता पैदा करता है जिससे कीटनाशकों के उपयोग की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। इस तरह से जैव-पीड़कनाशकों का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ-बीटी कपास, बीटी मक्का, धान, टमाटर, आलू व सोयाबीन आदि।

बीटी कपास- बैसिलस थूरीजिएन्सिस की कुछ किस्में ऐसी प्रोटीन का निर्माण करती हैं जो विशिष्ट कीटों जैसे- लीथीडोस्टेशन (तंबाकू की कलिका कीट, सैनिक कीट), कोलियोप्टेरान (भृंग) व डीप्टेरान (मक्खी, मच्छर) नाश करने में सहायक है। (पाउस्टियन टी एवं रॉबर्ट्स जी. 2007).

सारांश

सूक्ष्मजीवों, पौधों, जंतुओं व अनेक उपापचयी कार्यप्रणाली का उपयोग करते हुए जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा मनुष्य के लिए कई उपयोगी पदार्थों का निर्माण हो चुका है। पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी ने ऐसे सूक्ष्मजीवों, पौधों व जंतुओं का निर्माण संभव कर दिया है जिनमें अभूतपूर्व क्षमता निहित है। आनुवंशिकता रूपांतरित जीवों का निर्माण एक या एक से अधिक जिनका, एक जीव से दूसरे जीव में स्थानांतरण की प्राकृतिक विधि के अतिरिक्त पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए किया गया है।

जीवाणु में रचित मानव इंसुलिन संरचनात्मक प्राकृतिक अणु से पूर्णतया समान होता है। परजीवी जंतु मानव रोगों जैसे-कैंसर, पुटीय रेशामयता, रूमेट्वाएड संधिशोथ व अल्जाइमर के लिए नमूने के रूप में उपयोग किए जाते हैं, जिससे हमें रोग के विकास में जीन की भूमिका का पता लगाने में सुविधा

होती है। जीन चिकित्सा द्वारा विशेष रूप से आनुवंशिक रोगों को दूर करने के लिए व्यक्ति विशेष की कोशिकाओं व ऊतकों में जीन को प्रवेश कराते हैं। जिससे उत्परिवर्तित विकल्पों के स्थान पर सक्रिय विकल्पी या जीन लक्ष्यण के द्वारा उपचार होता है, इसमें जीन प्रवर्धन भी शामिल हैं। विषाणु जो अपने परपोषी पर आक्रमण कर अपने विभाजन चक्र के लिए अपना आनुवंशिक पदार्थ परपोषी की कोशिकाओं में प्रवेश करता है। इसे संवाहक के रूप में प्रयोगकर स्वस्थ जीन या नए जीन के भाग को स्थानांतरित किया जा सकता है (मैन्जेशा, 2009).

संदर्भ सूची

- अनाम (1992). एक्शन प्लान फॉर हिमालया. गो.ब. पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान, कोसी कटारमल, अल्मोड़ा।
- अनाम (2011). गवर्नेन्स फॉर सस्टेनिंग हिमालयन इकोसिस्टम. गो.ब. पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान, कोसी कटारमल, अल्मोड़ा।
- अग्रवाल, डी.के. एवं रिखाड़ी, एच.सी. (1998). माउन्टेन रिस्क इन्जीनियरिंग : लो कास्ट बायोलॉजिकल मेजर्स फार कन्ट्रोल आफ स्माल हिल स्लोप इन्सेटविलिटिज। इन : रिसर्च फार माउन्ट डेवलपमेंट : सम इनिसिएटिव एंड एकोम्पलिसमेन्ट्स, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल. पृ0 119-144।
- डायज, ई (2008). माइक्रोबियल बायोडिग्रेडेस जीनोमिक्स एण्ड मॉलीक्युलर माइक्रोबायोलॉजी सैस्टर ऐकेडैमिक प्रैस ISBN 978-1-904455-17-2।
- मैन्जेशा, एतो एलो (2009). क्लोस्ट्रिडिया इन एंटी-ट्यूमर थैरेपी. क्लॉस्ट्रिडिया: मॉलीकुलर बायोलॉजी इन द पोस्ट जीनोमिक ऐरा सैस्टर ऐकेडैमिक प्रेस ISBN 978-1-904455-38-7।
- पाउस्टियन, टी. एवं रॉबर्ट्स जी. (2007). बेइजरिक एन्ड विनोग्रैड्स्की इनिशियेट द फील्ड ऑफ एन्वायरन्मैंटल माइक्रोबायोलॉजी. द माइक्रोबियल वर्ल्ड।
- सैयद, इ.बी. (2002)- इस्लामिक मेडिसिन: 1000 ईयर्स अहेड ऑफ इट्स टाइम्स, जर्नल ऑफ द इस्लामिक मेडिकल एसोसिएशन 2:2-9।

मानवजाति वनस्पतिविज्ञान एवं उसका महत्व

डॉ. सुरेश कुमार एवं अमृता सूर्यवंशी
औषधीय पादप अनुसंधान प्रयोगशाला
वनस्पतिविज्ञान विभाग
रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेलः drskumar35@gmail.com
डॉ. वंदना
एसोसिएट प्रोफेसर
रसायन विभाग, दयाल सिंह कालेज, दिल्ली

प्रस्तावना

मनुष्य और पौधों के मध्य सदैव गहरे संबंध रहे हैं। प्राचीन समय से, पौधे न केवल प्राथमिक मानवीय आवश्यकताओं बल्कि स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं के लिए भी प्रयोग किए जाते रहे हैं। सभी संस्कृति के लोग हमेशा अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं (भोजन, आश्रय, औषधिके लिए पौधों(रहे हैं। पौधों और मानव संस्कृतियों के बीच का संबंध भोजन पर निर्भर, कपड़ों और आश्रय तक ही सीमित नहीं है, बल्कि धार्मिक समारोह, अलंकरण और स्वास्थ्य परिचर्या के लिए भी उनका उपयोग सम्मिलित है। पौधे न केवल हवा में गैसों की सांद्रता को नियंत्रित करते हैं, बल्कि एकमात्र ऐसे जीव हैं, जो सूर्य के प्रकाश को खाद्य ऊर्जा में बदलने में सक्षम हैं, जिस पर जीवन के अन्य सभी रूप अंततः निर्भर करते हैं। पौधे हमारे जीवन के हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं और उनके बिना जीवन असंभव है।

पौधों और उनके उपयोग पर अन्वेषण सबसे प्राथमिक मानवीय चिंताओं में से एक है और पीढ़ी दर पीढ़ी सभी संस्कृतियों द्वारा इसको क्रियान्वित किया गया है। यद्यपि 'एथनोबॉटनी' (मानवजाति वनस्पतिविज्ञान) शब्द को 1895 में अमेरिकी वनस्पति विज्ञानी फ्जॉन विलियम हर्षवर्गर' ने प्रतिपादित किया था।

मानवजाति वनस्पतिविज्ञान क्या है

मानवजाति वनस्पतिविज्ञान,वनस्पतिविज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत मनुष्य और पौधों के मध्य पारस्परिक संबंधों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इसमें संस्कृति और पेड़-पौधों के आपसी जटिल संबंधों को समझने एवं व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है।

मानवजाति वनस्पतिविज्ञान की जड़े पुराणों तक में उपस्थित हैं। कहा जाता है कि मानवजाति वनस्पति विज्ञान का आरंभ भारत से ही हुआ है। इस विज्ञान के स्रोत पुराने भारतीय शास्त्र में निहित हैं,

जैसे कि ऋग्वेद, अथर्ववेद और उपनिषद्। इन सभी प्राचीन स्रोतों में पौधों के असामान्य औषधीय ज्ञान को दर्शाया गया है।

वनस्पति विज्ञान की यह जानकारी, लेखन शुरू होने से पहले, मानव अस्तित्व के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक माध्यम से पारित होती थी। वास्तव में यह जानना असंभव है कि हमने पहली बार जड़ी-बूटियों और पौधों का उपयोग कब शुरु किया। यहाँ तक कि सबसे पुरानी सभ्यता मोहनजोदड़ो और हड़प्पा को भी औषधियों के बारे में ज्ञान था।

मानवजाति वनस्पतिविज्ञान और पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार आज भी दुनिया की लगभग 80 प्रतिशत आबादी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए दवाओं की पारंपरिक प्रणालियों पर निर्भर है तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन भी इसके प्रमुख घटक बने हुए हैं। भारत मूल (आदिवासी) निवासी विभिन्न बीमारियों के प्रभावी उपचार के लिए विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों का उपयोग करते रहें हैं। इस प्रकार विभिन्न समुदायों में विकसित किया गया पारंपरिक ज्ञान, कौशल और प्रथाओं का स्वतंत्र रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रयोग किया जाता रहा है। पुरातन काल में ही जब विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति नहीं आई थी, तब से ही पौधे मूल निवासियों के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं और आज भी निभा रहे हैं। अब यह लगभग सार्वभौमिक रूप से मनुष्य और पौधों के बीच कुल प्रत्यक्ष और प्राकृतिक संबंध के रूप में पहचाना जाता है।

कहा जाता है जो प्रकृति के जितने पास हैं, सुखी हैं। यही कारण है कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक पौधों की रोग विरोधी क्षमता पर शोध कर रहे हैं जिससे यह साफ है कि आज भी मनुष्य पौधों पर पूर्ण रूप से आश्रित है। पौधों से बनी औषधियाँ अति प्रभावी सिद्ध हो रही हैं और लगातार इस क्षेत्र में काम किया जा रहा है। पिछले कई वर्षों से नयी और प्रभावी दवाओं की पहचान करने के उद्देश्य से कई वैज्ञानिक पौधों पर शोध कर रहे हैं और सफलता पा रहे हैं। आज विश्व के कोने-कोने के लोग एलोपैथिक दवाओं को छोड़कर हर्बल दवाओं को महत्व दे रहें हैं और शोध में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि हर्बल दवाईयाँ एलोपैथिक दवाओं से कहीं ज्यादा प्रभावी हैं और इन दवाइयों के दुष्प्रभाव भी नहीं हैं (कुमार एवं अन्य 2019)।

खज्जियार : भारत का मिनी स्विट्जरलैंड

हिमाचल प्रदेश, भारत के 29 राज्यों में से एक है जो कि पश्चिमी हिमालय में स्थित है। यह 32.29" अक्षांश एवं 75 व 10" देशांतर में भारत के उत्तर क्षेत्र में स्थित है। यह 1970 m की तुंगता पर स्थित अपनी प्राकृतिक सुंदरता और लुभावने परिदृश्य के कारण अपनी एक अलग छाप छोड़ता है।

खज्जियार,चंबा जिले (हिमाचल प्रदेश) का एक पर्वतीय रमणीक स्थल है, जो डलहौजी से लगभग 24 किमी. दूर स्थित है। कहा जाता है कि अगर धरती पर कहीं स्वर्ग है तो स्विट्जरलैंड उनमें से एक माना जाता है। स्विस राजदूत 'विली ब्लेजर' ने यहाँ की खूबसूरती से आकर्षित होकर ही 7 जुलाई 1992 को खज्जियार को हिमाचल प्रदेश के मिनी स्विट्जरलैंड की उपाधि दी। यहाँ का मौसम, ऊँचे-लंबे चीड़ देवदार के हरे-भरे पेड़, नर्म मुलायम मखमली हरियाली और पहाड़ तथा शांति और मानसिक सुकून देने वाली वादियाँ आपको स्विट्जरलैंड का एहसास कराती हैं। यहाँ प्रकृति पूरे उत्कर्ष पर दिखाई देती है। हजारों साल पुराने इस छोटे से पर्वतीय स्थल को विशेषकर खज्जी नागा मंदिर के लिए जाना जाता है। यहाँ नागदेव की पूजा होती है।

सर्वेक्षण

खज्जियार में एक सर्वेक्षण किया गया। अनेक प्रकार के रोगों में प्रभावी औषधीय पादपों के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की गई। यहाँ पर रहने वाली जातियाँ आज भी इन्हीं पेड़-पौधों पर निर्भर हैं। इसके लिए अनेक बुजुर्गों एवं परंपरागत चिकित्सकों की मदद ली गई। सूचना एवं प्रयोग के बारे में जानने के लिए जैन,1977 एवं मार्टिन 1986 द्वारा सुझाई गई विधियों का उपयोग किया गया।

सर्वेक्षण एवं प्रश्नावली के आधार पर औषधीय पादपों का 'पादपालय' तैयार किया गया (जैन, 1971) तथा प्रामाणिकता एवं सही जानकारी के लिए, परंपरागत चिकित्सकों और बुजुर्गों से बार-बार साक्षात्कार किया गया। कुल 14 पौधों को एकत्रित किया गया, जिन्हें खज्जियार में रहने वाले लोग अनेक रोगों के लिए इस्तेमाल करते हैं।

क्र.सं.	पादपों के वानस्पतिक नाम	स्थानिक नाम	कुल	पादपों के औषधीय गुण का उपयोग
1	अजूगा ब्रैक्टिओसा	नीलकंठी	लैमिएसी	मधुमेह, डायरिया, आँत की गड़बड़ी के उपचार में
2	ऐनेसिलिया लैटिफोलिया	भुजलू	ऐस्टरेसी	पेट के दर्द में उपयोगी
3	ऐनापलालिस कोन्टोरटा	बू	ऐस्टरेसी	डायरिया और श्वास व्याधियों में
4	एसप्लेनियम सिटरऐच	छोटी ककाई	एस्पलेनियेसी	खाँसी एवं मूत्रल
5	बरबेरिस लाईसियम	कम्ब	बेरबेरीडेसी	पीलिया एवं अस्थिरोगों में
6	सिरसियम वालिचि	उमलकांडा	ऐस्टरेसी	एंटीआक्सीडेंट एवं जीवाणुरोधी
7	फरेगेरिया वेसका	जंगली स्ट्रॉबेरी	रोजेसी	उदर रोगों में उपयोगी
8	निओलिटसिया पैलेन्स	चिंडी	लॉरेसी	टूटी हड्डी को जोड़ने के लिए

9	सूडोग्नाफेलियम ल्यूटीओएल्बम	गनपत्तरु	ऐस्टरेसी	ब्रेस्ट कैंसर के उपचार में
10	प्लान्टेगो लेन्सिओलेटा	जोछा	प्लेन्टाजीनेसी	डायरिया, अतिसार में प्रतिभावी
11	रूमेएस नेपालऐनासेस	रूमेस	पोलीगोनेसी	पीलिया में उपयोगी
12	वैलेरियाना जटामॉसी	सामक	केपरीफोलिएसी	चक्षुउदर एवं रक्तव्याधियों में उपयोगी
13	वायोला कनेस्सेन्स	बनाफशा	बायोलेसी	मलेरिया एवं कैंसर के उपचार में
14	ऑक्जेलिस ओरगाना	छोटी अंबी	आक्लिडि एसी	मूत्रल, शोधरोधी एवं अल्सर में उपयोगी

इस जिले की इस विशाल विविधता के बावजूद भी इसका गहन अध्ययन नहीं हुआ है। वर्षों से चली आ रही परंपरागत चिकित्सीय प्रथाओं को प्रमाणित करने का मानवजाति वनस्पति सर्वेक्षण एक सबसे सुरक्षित एवं प्रभावी तरीका है (कुमार एवं अन्य, 2014)

निष्कर्ष

पुरातन समय से लेकर आधुनिक युग तक पौधे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वास्तव में यह अनुमान लगाना कठिन है कि पौधों और मनुष्यों के संबंध का इतिहास कितना प्राचीन और विस्तृत है। भारत के विविधतापूर्ण भौगोलिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार की वनस्पति एवं अनेक प्रकार के वन हैं। इतनी विविधता विश्व में अन्यत्र नहीं है और प्राचीन काल से ही भारत के वनस्पति संसाधन देशी और विदेशी व्यापारियों को आकर्षित करते आ रहे हैं।

समय आ चुका है कि जब वैज्ञानिक और शोधकर्ताओं को इस दिशा में प्रोत्साहन और सहयोग की आवश्यकता है, जिससे आने वाले भविष्य में यह शाखा उच्च स्तर को प्राप्त करे। मूल आवश्यक्ता है कि सभी क्षेत्रों के निवासियों से संबंध बनाए जाएँ जिससे आने वाले समय में जो ज्ञान इन लोगों के पास पीढ़ियों से है, वह कहीं विलुप्त ना हो जाए। यही कारण है कि आदिवासियों के साथ विज्ञान को जोड़ा जाए, नहीं तो संकट बड़ा हो सकता है और यह महत्वपूर्ण ज्ञान आदिवासियों के साथ ही विलुप्त ना हो जाए।

अंत में लेखकों का कहना है कि पेड़-पौधे हमारे जीवन के लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितनी हमारी साँसें।

आयुर्वेद में औषधीय पत्तियाँ : एक अनुशीलन

डॉ. अमर कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वनस्पतिविज्ञान विभाग
जे.एम.डी.पी.एल. महिला महाविद्यालय, मधुबनी, बिहार
ई-मेल: drkumaramar@gmail.com

सारांश - आयुर्वेद भारत की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है। अथर्ववेद के भीतर आयुर्वेद की विस्तृत जानकारी समाहित है। यहाँ पर अथर्ववेद के अनुशीलन से आयुर्वेद की प्राचीनता, प्रामाणिकता तथा व्यापकता का ज्ञान होता है। रोग, शारीरिक प्रतिकार तथा औषधि के विषय में अनेक उपयोगी और वैज्ञानिक तथ्यों की उपलब्धि अथर्ववेद की आयुर्वेदिक विशिष्टता दर्शाने के लिए पर्याप्त है।

शब्द कुंजी : अथर्ववेद, आयुर्वेद, औषधियाँ, चिकित्सा।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सृष्टि के प्रारंभ से ही मानव अपनी आयु तथा अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहे हैं। समय-समय पर विशिष्ट व्यक्तियों को जिन वस्तुओं से कोई अनुभव हुआ उन सिद्धांतों के संकलन से ऐसे ग्रंथों का निर्माण हुआ जो मानव के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुए। आयुर्वेद भी ऐसा ही एक प्राचीन ग्रंथ है जिसमें स्वास्थ्य संबंधी सिद्धांतों की जानकारियाँ दी गई हैं।

उपनिषदों में भी आयुर्वेद के संकेत मिलते हैं। छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है - सभी प्राणियों का सार धरती है, धरती का सार जल है, जल का सार धरती है, जल का सार पौधे हैं, पौधों का सार मनुष्य है।

आयुर्वेद पर लिखित प्राचीनतम सर्वाधिक विस्तृत और विश्वसनीय ग्रंथ है 'चरक संहिता'। महर्षि चरक ने यह विवेचनात्मक ग्रंथ ईसा के शताब्दियों पूर्व लिखा था। आयुर्वेद के साथ ही वैदिक प्रणाली ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व प्रचलित थी। बाइबिल, महाभारत और रामायण में भी वनस्पतियों का वर्णन किया गया है। बहुत से बौद्ध भिक्षुओं को औषधियों का पर्याप्त ज्ञान था।

भारतीय उपमहाद्वीप में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सहृदय शासक अशोक ने अपने संपूर्ण साम्राज्य में बहुत-से धर्मार्थ चिकित्सालय और प्राथमिक चिकित्सा केंद्रों का निर्माण किया। कालांतर में जब दसवीं से बारहवीं शताब्दियों के बीच भारत पर विदेशी आक्रमण हुए, पुस्तकालय और विश्वविद्यालय जला दिए गए तब औषधियों से संबंधित बहुत सारे तथ्य और आँकड़े भी जल गए।

इससे आयुर्वेद विज्ञान को गहरा झटका लगा। ब्रिटिश आगमन के साथ ही पारंपरिक भारतीय चिकित्सा प्रणाली का विकास होने लगा। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् जड़ी-बूटियों और आयुर्वेद के प्रति पुनः रुचि जाग्रत हुई। आधुनिक युग में आयुर्वेद का प्राकृतिक विज्ञान समस्त विश्व में लोकप्रिय है।

आयुर्वेद का प्रयोजन

- मनुष्य को आरोग्य प्रदान करना ही आयुर्वेद का लक्ष्य है। इस हेतु इसके दो प्रयोजन बताए गए हैं।
- प्रयोजन चास्य स्वस्थ्स्य स्वास्थ्यरक्षणं मातुरस्य विकार प्रशमनं। च।
- स्वस्थ्य व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना।
- रोगी के रोगों का शमन करना।
- आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के प्रकार

आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति आठ भागों में विभक्त है (i) काय (ii) शल्य (iii) शालाक्य (iv) भूतविद्या (v) कौमारभृत्य (vi) विष या अगद तंत्र (vii) रसायन और (viii) बाजीकरण। सभी प्रकार के रोगों का निराकरण इन्हीं आठ अंगों में विभक्त कर किया जाता है।

आयुर्वेद में केवल शरीर के रोगों को ही रोग नहीं कहा जाता है, अपितु शरीर, इंद्रिय, मन, क्षुधा, पिपासा, जरा एवं आत्मा के दुःखों आदि सभी को रोग कहते हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद का प्रयोजन पुरुष को सर्वथा समर्थ बनाना है। जिससे वह पुरुषार्थ-चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति कर सके।

आयुर्वेद के मूल सिद्धांत एवं उनकी उपादेयता

किसी भी शास्त्र के कुछ मूलभूत सिद्धांत होते हैं जिनके आधार पर ही उस शास्त्र विशेष का अस्तित्व बना रहता है ये सिद्धांत यदि देश, काल एवं प्रकृति के अपरिहार्य नियमों की कसौटी पर अच्छी प्रकार से जाँच-परखकर स्थिर किए गए हैं तो वह 'शास्त्र-विशेष' निश्चय ही अपने सुदृढ़ सिद्धांतों के बल पर चिरकाल तक अपने स्वरूप तथा उपादेयता को बनाए रखता है।

आयुर्वेद जो मानव के समग्र जीवन का एक सर्वांगीण दर्शन एवं विज्ञान है, वह भी अनेक मूलभूत सिद्धांतों का आश्रयभूत है। अतः प्राचीन काल से अद्यावधिपर्यंत अक्षुण्ण रूप से मानव-समाज के आरोग्य की रक्षा करता हुआ तथा अद्यतन चिकित्सा-विज्ञान की नवनवोन्मेषशालिनी

प्रतिभाजनित आविष्कारों की चुनौतियों का मौनभाव से सामना करता हुआ देश, काल, संप्रदाय एवं जाति-निरपेक्ष मानवमात्र के लिए उपादेय बना हुआ है।

जिन क्रियाओं द्वारा शरीर में दोषों की समता उत्पन्न हो, वहीं चिकित्सा है। स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से भी दोषों की विषमता न होने पाए तथा दोषों की समता बनी रहे, चिकित्सकों के लिए यही प्रयत्न अपेक्षित है।

आयुर्वेद में वर्णित महत्वपूर्ण औषधीय पत्तियाँ एवं उनका उपयोग

प्राचीन आयुर्वेद की दृष्टि से ऋग्वेद का औषधि-सूक्त (10.97) विशेष महत्व रखता है। अथर्ववेद में ऐसे मंत्रों एवं सूक्तों का प्राचुर्य है लेकिन ऋग्वेद में यह सूक्त अकेला है। इस सूक्त में भिषगाथर्वण ऋषि ने औषधियों की देवता के रूप में स्तुति की। ये औषधियाँ सोम तथा बृहस्पति के मार्गदर्शन में भूमि के ऊपर तथा उसके गर्भ में ही निवास करती हैं। इन जड़ी-बूटियों के द्वारा चिकित्सक रोगों को समाप्त कर सभी को निरोग रखते हैं।

अर्थात अनेक प्रकार का पोषण करने वाली जो औषधियाँ प्राचीन काल में देवताओं से भी तीन पीढ़ी पहले उत्पन्न हुई हैं उन पीतवर्णा औषधियों के एक सौ सात सामर्थ्यों का मैं मनन करता हूँ।

ये औषधियाँ पुरुष के सभी दु:खों को नष्ट करके ऊर्जा बढ़ाने वाली तथा ओजस्विनी थीं। चिकित्सक (भषक) अनेक औषधियों का संग्रह रखता था। औषधियों के प्रयोग से रोगों के मूल अंश की समाप्ति होती है। शरीर के अवयवों एवं संधियों में औषधियों के पहुँच जाने से रोग समाप्त होते हैं।

स्पष्ट है कि मनुष्य के स्वास्थ्यवर्धन के लिए प्राकृतिक वनस्पतियों (औषधियों) का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता रहा है। ऐसे अनेक पवित्र एवं धार्मिक पौधे एवं जड़ी-बुटियाँ हैं जिनका प्राचीन काल से प्रयोग हो रहा है और आज वैज्ञानिक औषधि के रूप में पहचान हो रही है। वनस्पतियों की सौम्य और स्वास्थ्यवर्धक प्रभाव क्षमता के प्रति विश्व भर के लोग पूर्व की अपेक्षा अब अधिक जागरूक हो गए हैं और आयुर्वेद की ओर लौट रहे हैं, क्योंकि आयुर्वेद को हानिरहित एवं पार्श्व प्रभावों से मुक्त माना जाता है।

सार्वजनिक जीवन में प्रयोग होने वाली अनेक औषधीय पत्तियाँ हैं जो आसानी से उपलब्ध होती हैं। इनमें चमत्कारिक औषधीय गुण समाहित हैं जिसका ज्ञान आयुर्वेद से प्राप्त होता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

नीम

संस्कृत नाम – निंब, अंग्रेजी नाम – Margosa वानस्पतिक नाम - Azadirachta indica

औषधीय गुण

- ऋषियों ने कहा है कि नीम मानव जीवन को रोग मुक्त करने में बहुत सहयोगी वृक्ष है, जिसका हर भाग मानव शरीर की रक्षा में उपयोगी है। यह काफी बड़ा और फैला होता है तथा इसकी पत्तियाँ कड़वी होती हैं। इसकी छाल, पत्ते, फल, फूल सभी काम मे आते हैं।
- नीम की पत्तियों का रस पीने से रक्त शोधन होता है। इसके उपयोग से किशोरावस्था में निकलने वाली मुँह की फुन्सियों में लाभ होता है और चेहरा साफ और कांतिमय हो जाता है।
- नीम की पत्तियों से जो रस निकलता है उसे नीम ताड़ी कहते हैं। इसका उपयोग औषधि बनाने में होता है।
- शरीर के किसी भाग में भी दर्द होने या, हर प्रकार के फोड़े-फुन्सियों में नीम का तेल लेपन लाभ- प्रद होता है।
- नीम की पत्तियों के रस में एक-एक भाग शहद मिलाकर पीने से पीलिया रोग में बहुत लाभ होता है।
- नीम की सूखी पत्तियाँ भी उपयोगी हैं। जब हम इन्हें आग में जलाते हैं तो इससे उत्पन्न धुएँ से मच्छर तेजी से गायब हो जाते हैं। पर्यावरण में भी इस धुएँ से कोई नुकसान नहीं होता है।
- स्नान करते समय गरम पानी में नीम की पत्तियाँ डालने से त्वचा रोग में लाभ होता है।

पुदीना

संस्कृत नाम –टड, कशाल; अंग्रेजी नाम –Mint; वानस्पतिक नाम –Mentha piperita

औषधीय गुण

पुदीना के गुण अनेक हैं। यह छोटा शाक्रीय पौधा हर स्थान पर पाया जाता हैं। पुदीना औषधीय गुणों वाला लाभकारी पौधा है। इसकी पत्तियों व इसके रस का उपयोग हर भारतीय रसोई में किया जाता है।

- गर्मी में हर प्रकार के बुखार में उपयोगी है।
- पेट के रोगों तथा उल्टी आने पर इसका रस गुणकारी है।
- खाँसी, अतिसार तथा गैस रोगों में पुदीने का प्रयोग लाभकारी है।

अश्वगंधा

संस्कृत नाम – अश्वगंधा; अंग्रेजी नाम -Winter Cherry; वानस्पतिक नाम- Withania somnifera

औषधीय गुण

- अश्वगंधा को जीवोद्धारक औषधि के रूप में जाना जाता है। इसमें अर्बुदरोधी एवं (प्रतिजैविक) गुण भी पाया जाता है। आयुर्वेद में इसकी पत्तियों को पीसकर लेप लगाने से कई रोगों से मुक्ति मिलती है।
- अश्वगंधा के लेप से शरीर के फोड़े-फुंसी खत्म हो जाते हैं। इसकी पत्तियों को पीसकर घी, शहद और पीपल के साथ प्रयोग करने से काफी फायदे होते हैं।
- इसकी पत्तियों के सेवन से चर्म रोग में भी लाभ होता है।

कालमेघ

संस्कृत नाम-कालमेघ; अंग्रेजी - Andrographis; वानस्पतिक नाम - Andrographis paniculata

औषधीय गुण

- कालमेघ की पत्तियों में औषधीय महत्व के एल्केलॉइड पाए जाते हैं।
- इन पत्तियों का उपयोग ज्वर नाशक, पीलिया, पेचिस, सिरदर्द, कृमिनाशन, रक्तशोधक और उदर रोगों के लिए लाभकारी है।
- इसके नियमित सेवन से रक्त शुद्ध होता है तथा यह यकृत के लिए शक्तिवर्धक का कार्य करती है।
- सरसों के तेल व कालमेघ की पत्तियों का मलहम चर्मरोग जैसे दाद, खुजली आदि दूर करने में बहुत उपयोगी है।

तुलसी

संस्कृत नाम-तुलसी; अंग्रेजी नाम - Hotly Basil & Basil; वानस्पतिक नाम- Ocimum basilicum and O. Sanctum

औषधीय गुण

- तुलसी धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत एक गुणकारी जड़ी बूटी है। इसकी पत्तियों को बहुत पवित्र माना जाता है। हिंदु धर्म के लोग बहुत श्रद्धा-भावना से इसे पूजा के लिए प्रयोग में लाते हैं।

- इसका पौधा कम ऊँचा होता है। इस पर छोटे-छोटे फूल अगस्त-सितंबर में आते हैं। सुगंधित, पुष्प मंजरी में खिलते हैं, प्रयोज्य अंग पर्ण, बीज, पंचाग हैं।
- तुलसी के पत्तों का काढ़ा बनाकर बुखार रोगियों को पिलाने से बुखार से मुक्ति मिलती है।
- सर्दी, जुकाम, नजला होने पर तुलसी की चाय सौंफ, मुलेठी डालकर बनाएं। इसमें एक चम्मच शहद डालकर पीने से रोगी ठीक हो जाता है।
- कतिपय रोगों में तुलसी का स्वरस गुणकारी होता है।
- तुलसी पत्तियाँ एवं काली मिर्च, कृमि विकार, कुष्ठ आदि रोगों में लाभकारी है।
- आँतों पर तुलसी का वातप्रशमन एवं कृमिहर प्रभाव होता है।

तेजपत्ता

संस्कृत नाम – तमालपत्र; अंग्रेजी नाम - Bay Leaf वानस्पतिक नाम -Laurus nobilis

औषधीय गुण

- इसका वृक्ष सदाबहार मध्यम आकार का होता है। इसकी छाल बाहर से श्वेत, स्वाद में मधुर, सुगंधित तथा चबाने पर लसदार होती है। छाल को तज कहते हैं । यह पहाड़ी एवं गर्म क्षेत्रों में पैदा होता है। बाजार में सुखाए पत्ते तेजपत्ता के नाम से मिलते हैं।
- खाँसी तथा साँस के रोगों में यह लाभकारी है।
- बुखार, वम, अतिसार तथा पेट रोगों के लिए उपयोगी है।

बेल

संस्कृत नाम – श्रीफल; अंग्रेजी नाम-Bael/Wood Apple; वानस्पतिक नाम - Aegle marmelos

औषधीय गुण

- धार्मिक भावना की दृष्टि से देखा जाए तो बेल पूजनीय वृक्ष है। यह वृक्ष मध्यम आकार का होता है। इसके पत्तों, फल, छाल आदि दवाओं औषधीय गुणों से युक्त होते हैं। यह पूरे देश में पैदा होने वाला पौधा है। आयुर्वेद में इसकी पत्तियों को महत्वपूर्ण माना जाता है।
- शुगर रोगियों को इसके पत्तों का रस निकालकर पीने से लाभ होता है।
- हृदय के रोगियों के लिए बिल्व अत्यंत लाभकारी है।
- पित्तातिसार एवं-रक्तातीसार में बिल्व का चूर्ण मुलेठी एवं मिश्री के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है।
- इसके उपयोग से खांसी, बुखार, सांस जैसे रोग दूर हो जाते हैं।

मेथी

संस्कृत नाम – मेथिका; अंग्रेजी-Fenugreek; वानस्पतिक नाम-Trigonella foenum graecum

औषधीय गुण

इसके बीज वायु तथा कफ ज्वर का नाश करते हैं। हरी पत्तियों वाली मेथी के बीजों का रंग पीला होता है। इसकी फसल पूरे भारत के मैदानी क्षेत्रों में होती है। इसके पत्ते तथा बीज अति लाभकारी होते हैं।

- खांसी रोग को दूर करती है।
- वात रोगों के लिए इसके पत्तों का रस शहद में मिलाकर पीने से लाभ होता है।
- मेथी रक्त शोधन करती है।
- मेथी की पत्तियों का रस शरीर को शक्ति प्रदान करता है।

सहजन

संस्कृत नाम –शोभन्जना; अंग्रेजी नाम –Drumstick; वानस्पतिक नाम -Moringa oleifera

औषधीय गुण

इसे बहुत सारे नामों जैसे शोभांजन, शिग्रु, सजिना, सुरजना, मरुगई, मोरिंगा, इंडियन हॉर्सरैडिश आदि से जाना जाता है। यह पूरे भारतवर्ष में सुगमता से पाया जाता है और इसके पत्ते, बीज और जड़ें औषधीय रूप में उपयोगी हैं।

सहजन के पत्ते असाधारण रूप से पौष्टिक होते हैं। इनमें विटामिन खनिज तथा ऐमीनो अम्ल बहुत अधिक मात्रा में मिलते हैं।

मेहंदी

संस्कृत नाम – मेहंदिका; अंग्रेजी नाम- Henna; वानस्पतिक नाम - Lawsonia inermis

औषधीय गुण

रोग उपचार में मेहंदी का बहुत योगदान है। यह कीटनाशक है, शरीर में गर्मी अधिक बढ़ने पर मेहंदी का रस मिश्री में घोलकर देना चाहिए। गर्मी के कारण सिर दर्द होने की स्थिति में सिर पर मेहंदी को बारीक पीसकर पानी में भिगोकर लेप की भांति बालों पर लगाने के आधे घंटे बाद उसे धो लेना चाहिए।

जिन लोगों के बाल आयु के पहले ही सफेद होने शुरू हो गए हों वे मेहंदी की पत्तियों को धूप में सुखाकर फिर उसे पीसकर पाउडर बना लें। पत्तियों के पाउडर को पानी में भिगोकर लगाना चाहिए।

अगर बाल झड़ने लगें तो मेहंदी की पत्तियों के पाउडर में आँवले का पाउडर मिलाकर लगाने से बालों का झड़ना रुक जाता है तथा बाल काले और मजबूत हो जाते हैं।

घृतकुमारी

संस्कृत नाम - घीकुंवर; अंग्रेजी– Aloevera; वानस्पतिक नाम - Aloe Tbarbadensis

औषधीय गुण

यह यकृत के लिए अत्यंत लाभदायक है। यह आँतों में से पित्त निकालता है। अतः यह पीलिया के उपचार में उपयोगी है।

त्वचा संबंधी सभी प्रकार की समस्याओं के उपचार में यह लाभदायक है।

सौंदर्य प्रसाधन में इसकी जड़ का प्रयोग होता है।

इसका प्रयोग टूथपेस्ट में भी होता है क्योंकि यह दाँतों एवं मसूड़ों के लिए लाभदायक है।

अमरबेल

संस्कृत नाम – हेमपुष्प; अंग्रेजी - Giant Dodder; वानस्पतिक नाम - Cuscuta reflexa

औषधीय गुण

गठिया, बुखार, हड्डी टूटना, सिर दर्द आदि व्याधियों में उपयोगी है।

अनेक स्त्री-रोगों का निदान करता है।

पीपल

संस्कृत नाम-पिप्पलीकाच; अंग्रेजी- Sacred Fig; वानस्पतिक नाम -Ficus religiosa

औषधीय गुण

पीपल के पत्ते अत्यंत लाभकारी होते हैं। पत्तों का रस नासिका में टपकाने से नकसीर में लाभ होता है।

छाल, कोमल पत्ते, फल एवं रबड़ क्षीर औषधीय रूप से उपयोगी हैं। त्वचा रोग, खांसी, मुँह के छालों आदि व्याधियों में लाभदायक होता है।

सदाबहार

संस्कृत नाम – कटुकरोहिणी; अंग्रेजी – Periwinkle; वानस्पतिक नाम-Catharanthus roseus

औषधीय गुण

सदाबहार की पत्तियाँ एवं पुष्प दोनों ही मधुमेह के लिए लाभप्रद होते हैं।

इसका उपयोग साईटिका के दर्द में भी लाभदायक होता है।

हरसिंगार

संस्कृत नाम-परिजात; अंग्रेजी-Night Jasmine; वनस्पति नाम - Nyctanthes arbotristis

औषधीय गुण-

हरसिंगार के पत्तों को खाली पेट खाने से या इनका काढ़ा बनाकर पीने से मधुमेह नियंत्रित रहता है तथा यह मूत्र संबंधी रोगों में भी लाभकर है।

इसके पत्तों को उबालकर पीने से घुटनों का दर्द समाप्त हो जाता है।

इसके पुष्प के कई औषधीय उपयोग हैं।

गेंदा

संस्कृत नाम-स्वरसाः पुष्पम्; अंग्रेजी – Marigold ;वानस्पतिक नाम- Tagetes

औषधीय गुण

गेंदे की पत्तियाँ औषधीय रुप में अत्यंत उपयोगी होती हैं। फोड़े-फुंसी या कान के दर्द के लिए इसके रस का प्रयोग होता है।

धनिया

संस्कृत नाम-धान्य; अंग्रेजी नाम - Coriander; वनस्पति नाम - Coriandrum Sativum

औषधीय गुण

धनिये के पत्तों को पीसकर उसकी चटनी रक्त-वर्धक होती है।

उपसंहार

आयुर्वेद में जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों आदि के द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है। इन औषधियों के उपयाग से हम न केवल रोगों से छुटकारा पाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं अपितु अपनी प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि भी कर सकते हैं। इन औषधियों का कोई विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ता है। इनके प्रयोग से मनुष्य स्वस्थ और सबल बनता है।

संदर्भ-ग्रंथ

- डॉ. रामकृष्ण शास्त्री, (1977) अथर्ववेद संहिता प्रथम खंड,चौखंबा ओरियन्टालिया, वाराणसी,
- श्री रामशर्मा, (1960) अथर्ववेद (दो भागों में) मथुरा,
- डॉ. अनंत राम शर्मा, (2008) अष्टांग हृदयम् (सूत्रस्थान) चौखंबा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी,
- डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी, (2008) चरक संहिता, चौखंबा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी,
- गोविंद दास सेन, (2008) भैषज्य रत्नावली, चौखंबा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी,
- डॉ. रामजीत विश्वकर्मा, वैदिक साहित्य में शल्य चिकित्सा-एक अध्ययन, चौखंबा सुभारती, प्रकाशन, वाराणसी।
- डॉ अनंत राम शर्मा, सुश्रुत संहिता, चौखंबा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी।
- डॉ. जहान सिंह चौहान, आयुर्वेद की पेटेन्ट औषधियाँ, चौखंबा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी।
- कन्हैया लाल तिवारी, (2000) आयुर्वेद का सुबोध इतिहास, इन्डोलॉजिकल पब्लिशर्स, दिल्ली
- सुमन सेठ, अनु कुमारी दीपिका जैन, दिव्य वनस्पतियाँ, वंदना ऑफसेट प्रिन्टर्स, दिल्ली।
- टीकाकार पं रामगोविंद, त्रिवेदी ऋग्वेद संहिता।
- जगदीश लाल शास्त्री, (1961) यजुर्वेद, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
- K.H. Krishnamurty, Outlines of Ayurveda, Low Price Publications.
- David Frawley, Ayurveda Heeling, Red Wheel Weiser.
- Atreya & David Frawley, Practical Ayurveda Red Wheeel Waiser, July Secret for Physical, Sexual (1998) and Spritual Health.

चिकित्सा के क्षेत्र में हल्दी का महत्वपूर्ण योगदान

विशाखा बर्मन, ख्याति लहरी, आस्था, मुकेश कुमार, वैशाली
कृषि प्रौद्योगिकी विभाग,
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)
ई-मेल: mukeshbt06@gmail.com

हल्दी एक प्रकंद (रूपातंरित स्तंभ) है जो भारतीय मूल के अदरक परिवार (जिन्जिबेरेसी) का सदस्य है और इसका उपयोग मसाले के रूप में किया जाता है। करक्यूमिन हल्दी का एक घटक है जिसका शोथरोधी (एंटीइन्फ्लेमेटरी) प्रभावों के लिए सबसे अधिक अध्ययन किया गया है। हल्दी में करक्यूमिन सक्रिय तत्व है, जिसके शक्तिशाली प्रतिजैविक गुण होते हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति, उपचार की एक पारंपरिक भारतीय प्रणाली है, जो विभिन्न स्वास्थ्य स्थितियों के लिए हल्दी के सेवन की सलाह देती है। इनमें पुराना दर्द और सूजन शामिल हैं। पश्चिमी चिकित्सा ने दर्द निवारक और घाव भरने के कर्मक के रूप में हल्दी का अध्ययन किया है।

हल्दी एक प्राचीन मसाला फसल है, जो दक्षिण पूर्व एशिया में मूल रूप से पाया जाता है, जिसका उपयोग रंजक एवं मसालों के रूप में बहुत समय से किया जाता है। इसकी खेती मुख्य रूप से बंगाल, चीन, ताइवान, श्रीलंका, जावा, पेरू, ऑस्ट्रेलिया और वेस्टैंसीज में की जाती है। हिंदुओं के कई धार्मिक अनुष्ठानों में इसका इस्तेमाल किया जाता है। हल्दी वास्तविक रूप में सबसे सस्ते मसालों में से एक है।

हल्दी भारतीय वनस्पति है, इसका वानस्पतिक नाम कुरकुमा लौन्गा है। यह ५-६ फुट तक बढ़ने वाला पौधा है जिसकी भूमिगत गाँठों में हल्दी मिलती है।जब निचली पत्तियाँ पीली हो जाती हैं तब हल्दी की फसल लगभग 9-10 महीनों में कटाई के लिए तैयार हो जाती है। प्रकंदों को ध्यान से हाथ से चुने जाने पर खोदा जाता है। फिर सबसे ऊपर के पत्तेदार भाग को काटकर उसकी जड़ों को अलग कर दिया जाता है। अब उसमें लगे मिट्टी के कणों को तेज झटकों या रगड़ के हटा दिया जाता है, प्रकंद राइजोम) को फिर पानी से अच्छी तरह से धोकर), उनको छोटे ढेर में रखकर, हल्दी के पत्तों से ढँका

जाता है और सुखाने के लिए छोड़ दिया जाता है। उँगलियों की तरह के नए प्रकंद और उभार वाले प्रकंद(मातृ प्रकंद) को अलग-अलग करके उपयोग किया जाता है।

'हल्दी को 'हरिद्रा' के नाम से भी जाना जाता है। हल्दी में प्रोटीन (6.3%), वसा (5.1%), खनिज (3.5%), कार्बोहाइड्रेट (69.4%), नमी (23.1%), और सगंध तेल (5.5%) होते हैं। गाँठ के भाप आसवन से a- फैलेंडरीन (1%), सबीएन(0.6%), सिनेओल (1%), बोर्नेओल (0.5%), जिंजिबेरेन (25%) और सेस्कुइटेर्पिनेस (53%) प्राप्त होते है। करक्यूमिन हल्दी का प्रमुख करक्यूमिनोइड है, जिसके दो अन्य भाग डेसमेथॉक्सीकरक्यूमिन और बिसडेसमेथॉक्सीकरक्यूमिन हैं। करक्यूमिन हल्दी को पीला रंग देता है और हल्दी के चिकित्सीय प्रभाव इसी के कारण है।

हल्दी का उपयोग विभिन्न रोगों के लिए जैसे कि पित्त विकार, एनोरेक्सिया, खाँसी, मधुमेह के घाव, यकृत संबंधी विकार, गठिया और वायुविवरशोथ (साइनेसाइटिस) आदि के घरेलू उपचार में पारंपरिक चिकित्सा में किया जाता है। मसाले और रंजक के रूप में इसके उपयोग के अलावा, हल्दी और इसके घटकों में मुख्य रूप से करक्यूमिन और सगंध तेल जैविक क्रियाओं का एक विस्तृत स्पेक्ट्रम को दर्शाता है। इसमें शोथरोधी, प्रतिऑक्सीकारक, कर्कट रोगरोधी, उत्परिवर्तन रोधी, स्कंदनरोधी, एंटीफर्टिलिटी, एंटीडायबिटिक-, जीवाणुरोधी, कवकरोधी, प्रोटोजोआरोधी, कवकरोधी, विषाणुरोधी, (जीविषरोधी), एंटीकुलर, हाइपोलेर्सेस्टर और हाइपोकोलेस्टेमिक गुण शामिल हैं। 1970 में शोधकर्ताओं ने पाया कि हल्दी में शोथरोधी और प्रति-ऑक्सीकारक गुण होते हैं। सुरक्षा मूल्यांकन अध्ययनों से संकेत मिलता है कि हल्दी और करक्यूमिन दोनों को बिना किसी दुष्प्रभाव के अधिक मात्रा में सहन किया जा सकता है।

हल्दी के चिकित्सीय गुणः

स्वादिष्ट भोजन के अलावा, हल्दी, जिसे प्यार से "किचन क्वीन"कहा जाता है, का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में विभिन्न रोगों के घरेलू उपचार के रूप में किया जाता रहा है।

हल्दी का उपयोग गठिया, हार्टबर्न (अपच), जोड़ों का दर्द, पेट दर्द, क्रोहन रोग और व्रण वृहदांत्रशोथ (अल्सरेटिव कोलाइटिस), बाईपास शल्य क्रिया, नकसीर, दस्त, आँतों की गैस, पेट की सूजन, भूख न लगना, पीलिया, यकृत की समस्याओं, हेलिकोबैक्टर पाइलोरी (एच पाइलोरी) संक्रमण, पेट में व्रण, क्षोभकारी आंत्र संलक्षण(IBS),पित्ताशय थैली विकार, उच्च कोलेस्ट्रॉल, त्वचा की एक शोथ- स्थिति लाइकेन प्लानस, तथा विकिरण उपचार के उपरांत त्वचा में सूजन, और थकान, आदि में किया जाता है।

इसका उपयोग सिरदर्द, ब्रोंकाइटिस, जुकाम, फेफड़ों में संक्रमण, हेफीवर, फाइब्रोमाएल्जिया, कुष्ठ रोग, बुखार, मासिक धर्म की समस्याओं, खुजली वाली त्वचा, शल्य क्रिया के बाद स्वास्थ लाभ और कैंसर के लिए भी किया जाता है। अन्य रोगों में जैसे अवसाद, अल्जाइमर रोग, आंख की मध्य परत में सूजन, मधुमेह, जल प्रतिधारण, कीड़े, एक स्वप्रतिरक्षा रोग जिसे प्रणालीगत ल्यूपस एरिथेमेटोसस (एसएलई), तपेदिक, मूत्राशय की सूजन और वृक्क (गुर्दे) की समस्याओं में भी उपयोग में लाया जाता है।

हल्दी से स्वास्थ्य लाभ

1. दर्द से राहत

सूजन को आमतौर पर कई स्वास्थ्य चुनौतियों का स्रोत माना जाता है। हल्दी एक उत्कृष्ट शोथरोधी जड़ी-बूटी है। यह सहज स्थिति जैसे कि बर्साइटिस, गठिया, पीठ दर्द आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

हल्दी को दर्द निवारक माना जाता है। दर्द से राहत के लिए बहुत से अध्ययन हल्दी की पुष्टि करते हैं। एक अध्ययन में कहा गया है कि यह लोगों के घुटनों में गठिया वाले स्थान पर आइबुप्रोफेन की तरह प्रभावशाली था।

2. प्राकृतिक यकृत निर्विषीकारक

हल्दी का प्रतिऑक्सीकारक प्रभाव इतना शक्तिशाली है कि यह यकृत को आविषों से क्षतिग्रस्त होने से रोक सकती है। यह उन लोगों के लिए उपयोगी हो सकती है जो मधुमेह या अन्य स्वास्थ्य स्थितियों के लिए प्रबल औषधियाँ लेते हैं और उनका लंबे समय तक उपयोग करते हैं तथा जिनसे यकृत को नुकसान पहुंचता है।

हल्दी एक शक्तिशाली रक्त शोधक है और नवीन रक्त निर्माण में सहायता करती है। हल्दी विषाक्त पदार्थों और रोगजनकों से यकृत की रक्षा करती है। यह प्रमुख हेपेटॉक्सिन को नष्ट कर देती है। हल्दी पित्त के स्राव को बढ़ाती है और कोलेलिथियसिस को रोक सकती है। हल्दी यकृत से कोलेस्ट्रॉल को भी हटाती है और इसके आत्मसात को बाधित करती है।

3.त्वचा की सुंदरता:

हल्दी में करक्यूमिन नामक रसायन होता है। यह रक्त को शुद्ध और पोषित करता है और त्वचा को स्वस्थ और चमकती रखने में सहायक होता है। यह एक्जिमा, दाद, मुँहासे, त्वचा कैंसर आदि जैसे

त्वचा रोगों के लिए भी उत्कृष्ट है और समय से पहले जीर्णता रोकने में मदद करता है। हल्दी का उपयोग सौंदर्य प्रसाधन और सनस्क्रीन उत्पाद के रूप में किया जाता है।

4. कैंसर के खतरे को कम करता है

करक्यूमिन कैंसर उपचार भी उपयोगी है। अध्ययनों से पता चलता है कि इसमें अग्नाशय के कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर और कई मायलोमा के प्रति सुरक्षात्मक प्रभाव हैं। करक्यूमिन का कैंसर उपचार में एक लाभदायक जड़ी-बूटी के रूप में अध्ययन किया गया है। यह कैंसर के विकास और आणविक स्तर में इसके विस्तार को रोकने में सहायक है।

प्रयोगशाला में किए गए कई अध्ययनों से संकेत मिलता है कि करक्यूमिन कैंसर कोशिकाओं के विकास को कम कर सकता है और परीक्ष्य जानवरों में ट्यूमर के विकास को रोक सकता है।

5. मधुमेह में लाभदायक

मधुमेह के अधिकांश आयुर्वेदिक उपचारों में हल्दी एक महत्वपूर्ण जड़ी-बूटी है क्योंकि यह रक्त शर्करा को कम करती है,ग्लूकोज उपापचय और इंसुलिन की गतिविधि को तीन गुना से अधिक बढ़ा देती है। वैज्ञानिकों के अनुसार, करक्यूमिन रक्त में ग्लूकोज के स्तर को कम कर सकता है। एक अन्य शोध के तहत, मधुमेह के रोगी को लगभग नौ महीने तक करक्यूमिन को दवा के रूप में दिया गया। इससे मधुमेह मरीज में सकारात्मक परिणाम नजर आए।

6. शरीर की प्रतिऑक्सीकारक क्षमता को बढ़ाता है

माना जाता है कि उम्र बढ़ने और कई बीमारियों के पीछे ऑक्सीकारक क्षति से होती है। इसमें मुक्त मूलक, बिना प्रतिक्रिया वाले इलेक्ट्रॉनों के साथ अत्यधिक अभिक्रियाशील अणु शामिल हैं। मुक्त मूलक महत्वपूर्ण कार्बनिक पदार्थों, जैसे वसा अम्ल, प्रोटीन या डीएनए के साथ अभिक्रिया करते हैं।

यह हीमोग्लोबिन को ऑक्सीकरण से बचा सकती है। हल्दी और करक्यूमिन के वसा-घुलनशील अर्क,इसके मुख्य सक्रिय घटक को प्रदर्शित करता है। ये विटामिन सी, ई और बीटा-कैरोटीन की तुलना में मजबूत प्रतिओक्सीकारक गुण को प्रदर्शित करता है।

प्रति ऑक्सीकारक के उपयोग का मुख्य कारण है कि वे आपके शरीर को मुक्त मूलकों से बचाते हैं।करक्यूमिन एक शक्तिशाली प्रतिऑक्सीकारक है जो अपनी रासायनिक संरचना के कारण मुक्त मूलकों को निष्प्रभावी कर सकता है। इसके अलावा, करक्यूमिन शरीर के अपने प्रतिऑक्सीकारक एन्जाइम की गतिविधि बढ़ा देता है। इसलिए करक्यूमिन मुक्त मूलकों से शरीर का बचाव करता है।

7. पाचन में लाभदायक

हल्दी भोजन में स्वाददेती है। हल्दी भोजन को पचाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह वसा को पचाने, पाचन में सुधार और यकृत से विषाक्त पदार्थों को समाप्त करने में सहायक है। हल्दी चूर्ण का पेट पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। यह जलन को कम करने में गैस संरक्षी के रूप में कार्य कर सकती है।

करक्यूमिन आँतों के लाइपेज, सुक्रेज और माल्टेज एन्जाइम की गतिविधि को भी बढ़ाता है। हल्दी सिस्टेमिन से प्रेरित ग्रहणी के व्रण की तीव्रता को कम करती है, पाचन भित्ति के श्लेष्म को बढ़ाती है, और पाचन रस को भी सामान्य करती है। हल्दी का उपयोग आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक पाचन उपचार अभिकर्ता के रूप में किया जाता है।

8. अवसाद में हल्दी के लाभ

अधिकांश उपलब्ध शोधों से पता चलता है कि हल्दी में पाया जाने वाला रसायन करक्यूमिन के सेवन से लोगों में अवसादरोधी लक्षणों में कमी आ जाती है। अध्ययन के अनुसार, करक्यूमिन एक अवसादरोधी के रूप में प्रभावी है।

अवसाद मस्तिष्क व्युत्पन्न-तंत्रिका प्रेरित कारक बीडीएनएफ) और सिकुड़ते हिप्पोकैम्पस के) कम स्तर से भी जुड़ा हुआ है, मस्तिष्क का वह क्षेत्र है। जिसमें सीखने और स्मृति की भूमिका होती है। करक्यूमिन BDNF के स्तर को बढ़ाता है, संभवतः इन परिवर्तनों में से कुछ को कम कर देता है।

कुछ प्रमाणों के आधार भी हैं कि करक्यूमिन मस्तिष्क के न्यूरोट्रान्समीटर सेरोटोनिन और डोपामाइन स्रावण में वृद्धि कर सकता है।

9 . गठिया में हल्दी के प्रभावः

पश्चिमी देशों में गठिया एक आम समस्या है जैसे कि जोड़ों में सूजन। यह जानते हुए कि करक्यूमिन एक शक्तिशाली यौगिक है, यह गठिया के उपचार में लाभदायक है। एक अध्ययन में पाया गया कि करक्यूमिन एक शोथरोधी दवा की तुलना में अधिक प्रभावी था।

कुछ शोधों के अनुसार हल्दी का अर्क, अकेले या अन्य हर्बल घटकों के साथ लेने से घुटने के पुराने संधिशोथ में दर्द को कम कर सकता हैं। कुछ शोधों में हल्दी ने पुराने जोड़ों के दर्द को कम करने के लिए आइबुप्रोफेन की तरह काम किया है।

10. करक्यूमिन का अल्जाइमर रोग की रोकथाम और उपचार में लाभ

अल्जाइमर रोग दुनिया में मनोभ्रंश का एक प्रमुख कारण है। दुर्भाग्य से, अल्जाइमर के लिए अभी तक कोई अच्छा उपचार उपलब्ध नहीं है। इसलिए इसे प्रारंभ में रोकना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

यह ज्ञात है कि अल्जाइमर रोग में सूजन और ऑक्सीकारक क्षति एक भूमिका निभाती है और करक्यूमिन दोनों पर लाभकारी प्रभाव डालता है।

हल्दी के दुष्प्रभाव:

हल्दी संभावित स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है लेकिन इसका अधिक मात्रा में सेवन करना स्वास्थ्य के लिए जोखिम पैदा करता है। हल्दी आमतौर पर महत्वपूर्ण दुष्प्रभावों का कारण नहीं बनती है। लेकिन कुछ लोग उदर रोग, मतली, चक्कर आना या दस्त का अनुभव कर सकते हैं।

हल्दी के वे कर्मक जो पाचन स्वास्थ्य में लाभकारी हैं, जब उन्हें बड़ी मात्रा में लिया जाता है तो जलन हो सकती है।अधिक गैस्ट्रिक अम्ल का उत्पादन करने के लिए हल्दी उदर को उत्तेजित करती है जबकि यह कुछ लोगों के पाचन में मदद करता है, पर दूसरों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।

इसमें रक्त को पतला करने वाले गुण हैं। हल्दी के अन्य बताए गए लाभों, जैसे कि कम कोलेस्ट्रॉल और कम रक्तचाप, किसी के रक्त में हल्दी की उपस्थिति से उनके क्रियाकलापों के साथ कुछ बदलाव करने पड़ सकते हैं। जो लोग रक्त को पतला (ब्लड-थिनिंग) करने वाली औषधियॉ लेते हैं, जैसे कि वार्फ़रिन (कौमेडिन), उन्हें हल्दी की बड़ी मात्रा में सेवन से बचना चाहिए।

बांझपन: पुरुषों द्वारा अधिक सेवन से हल्दी टेस्टोस्टेरोन के स्तर को कम कर सकती है और शुक्राणु की गति को कम कर सकती है। इससे प्रजनन क्षमता कम हो सकती है। हल्दी का उपयोग संतान प्राप्ति की चाह वाले लोगों द्वारा सावधानी से किया जाना चाहिए।

आयरन की कमी : हल्दी को अधिक मात्रा में लेना लौह अवशोषण को रोक सकता है। लोहे की कमी वाले लोगों में हल्दी का उपयोग सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

शल्य क्रिया: हल्दी रक्त के स्कंदन को धीमा कर सकती है। इससे शल्य क्रिया के दौरान और बाद में अतिरिक्त रक्तस्राव हो सकता है। नियोजित शल्य क्रिया से कम से कम 2 सप्ताह पहले हल्दी का उपयोग बंद कर दें। यह व्यायाम-प्रेरित सूजन और मांसपेशियों की व्यथा के प्रबंधन में भी मदद कर

सकती है। इसके अलावा, अपेक्षाकृत इसकी कम खुराक उन लोगों के लिए स्वास्थ्य लाभ प्रदान कर सकती है जिनके पास स्वास्थ्य की स्थिति का कोई निदान नहीं है।

निष्कर्ष

- करक्यूमिन ने अपने कई स्वास्थ्य लाभों के लिए दुनिया भर में ध्यान आकर्षित किया है। इन लाभों की सर्वाधिक प्राप्ति करक्यूमिन को पिपेरिन जैसे रसायनों के साथ सेवन कर की जा सकती है।
- हल्दी और इसके यौगिकों में जैविक गतिविधियों का एक विस्तृत स्पेक्ट्रम दिखाई देता है, इसकी क्रिया और औषधीय प्रभावों के व्यापक अध्ययन के बाद हल्दी से नई दवाओं को विकसित करना आसान होगा। यह उम्मीद की जाती है कि हल्दी और इसके घटक विशेष रूप से करक्यूमिन और सगंध तेल के कारण विभिन्न बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए निकट भविष्य में सहायता मिलेगी। आहार में हल्दी को शामिल करने के स्वास्थ्य लाभ हैं। प्रतिरक्षा को मजबूत बनाता है, दर्द को दूर करने में मदद करता है और अन्य चीजों के अलावा पाचन में सहायता कर सकता है। लेकिन कुछ दुष्प्रभावों के कारण, हल्दी कुछ लोगों के लिए सेवन करने योग्य नहीं है।

संदर्भ

- Akrishnan VR and Menon VP (2001). Potential role of antioxidants during ethanol-induced changes in the fatty acid composition and arachidonic acid metabolites in male Wistar rats. Cell Biol. Toxicol.; 17: 11–22.
- Anand, P., Sundaram, C., Jhurani, S., Kunnumakkara, A.B.andAggarwal, B.B.(2008). Curcumin and cancer: an "old-age" disease with an "age-old" solution. Cancer Lett. 18; 267(1):133-64
- Araujo AC and Leon LL (2001) Biological activities of Curcuma longa L. Mem. Inst. Oswaldo Cruz. 96:723–728.
- Barclay L. R. C., Vinqvist M. R., Mukai K., Goto, H., Hashimoto,Y. and Uno, Y. H., (2000).On the Antioxidant Mechanism of Curcumin: Classical Methods Are Needed To Determine Antioxidant Mechanism and Activity. Organic Lett.2,(18)2841-2843.
- Bar-Sela, G., Epelbaum, R. and Schaffer, M. (2010). Curcumin as an Anti-Cancer Agent: Review of the Gap between Basic and Clinical Applications. Curr Med Chem, 17(3), 190–197.
- Belcaro, G.,Cesarone, M. R.,Dugall, M.,Pellegrini, L.,Ledda, A.,Grossi, M. G. and Togni, S. Appendino, G.(2010).ACurcumin-Phosphatidylcholine Complex, For The Complementary Management Of Osteoarthritis. Panminerva Med 52(1):55-62.
- Biswas SK, McClure D, Jimenez LA, Megson IL and Rahman I (2005) Curcumin induces glutathione biosynthesis and inhibits NF-kappaB activation and interleukin- 8 release in alveolar epithelial cells: mechanism of free radical scavenging activity. Antioxid Redox Signal; 7: 32–41.

- Burman V, Kanaujai H, Lehari K, Aastha, Singh NP and Vaishali (2019). Characterization of phenolic compounds of turmeric using TLC. JPP:994-998.
- Chan AT, Manson JE, Albert CM, Chae CU, Rexrode KM, Curhan GC, Rimm EB, Willett WC and Fuchs CS (2006) Nonsteroidal anti-inflammatory drugs, acetaminophen, and the risk of cardiovascular events. Circulation;113: 1578–1587.
- Chandran, B. and Goel, A.(2012).A Randomized, Pilot Study to Assess the Efficacy and Safety of Curcumin in Patients with Active Rheumatoid Arthritis.Phytother. Res. 26: 1719–1725.
- Di M. and Savoia R.N. (2015).Understanding Turmeric Anti-Inflammatory effects and Its Clinical Use.Research Gatepg 1-18.
- Dogne JM, Hanson J, Supuran C and Pratico D (2006) Cardiovascular side effects: from light to shadow. Curr Pharm Des; 12:971–975.
- Glassman K. "Why The Health Is This Good For Me?, WebMD.com
- Grobel, H., and Murphy, S. A. (2018).Acne Vulgaris and Acne Rosacea.Integr Med.pg 1-17.759–770.e5.
- Gujral ML, Chowdhury NK and Saxena PN (1953) The effect of certain indigenous remedies on the healing of wounds and ulcers. J. Indian State Med. Assoc.;22: 273-276.
- Gupta,S. C., Patchva, S. and Aggarwal,B. B. (2013).Therapeutic Roles of Curcumin: Lessons Learned from Clinical Trials, A. Asso of Pharma Sci.15(1): 195–218.
- Hamaguchi T, Ono K,Yamada M (2010) Review: Curcumin and Alzheimer's Disease. CNS Neuroscience & Therapeutics 285–297.
- HewlingsS. J.and Kalman D. S. (2017).Curcumin: A Review of Its' Effects on Human Health.Foods 6(10): 92.
- https://www.webmd.com/vitamins/ai/ingredientmono-662/turmeric.
- Kapoor LD (1990) Handbook of Ayurvedic Medicinal Plants, CRC Press, Boca Raton, Florida; 2: 185-187.
- Kulkarni SK, Bhutani MK, Bishoni M. (2008) Antidepressant activity of curcumin: involvement of serotonin and dopamine. Psychopharmacol (Berlin); 201:435–442.
- Kuptniratsaikul, V., Thanakhumtorn, S., Chinswangwatanakul, P., Wattanamongkonsil L. and Thamlikitkul, V.(2009). Efficacy and Safety of Curcuma domesticaExtracts in Patients with Knee Osteoarthritis. J. of Alternative and Complementary Med.15, No. 8.
- Menon, V. P., and Sudheer, A. R.(2007).Antioxidant and Anti-Inflammatory Properties of Curcumin.The Molecular Targets and Therapeutic Uses ofCurcumin in Health and Disease.AdvExp Med Biol.105–125.
- Mishra, S. and Palanivelu K. (2008).The effect of Curcumin (turmeric) on Alzheimer's disease: An overview. Ann Indian Acad Neurol. 11(1): 13–19.
- Mohammad M, Lajis NH, Abas F, Ali AM, Sukari MA, Kikuzaki H and Nakatani N. (2005) Antioxidative constituents of Etlingera elatior. J Nat Prod.; 2005; 68:285–288.
- Phan TT, See P, Lee ST, and Chan SY (2001) Protective effects of curcumin against oxidative damage on skin cells in vitro: its implication for wound healing. J Trauma; 51:927–931.
- Platel K and Srinivasan K(1996) Influence of dietary spices or their active principles on digestive enzymes of small intestinal mucosa in rats. Int. J. Food Sci. Nutr.; 47: 55–59.

- Prasad, S. and Aggarwal B.B. (2011). Turmeric, the Golden Spice: From Traditional Medicine to Modern Medicine. Benzie IFF, Wachtel-Galor S, editors. Herbal Medicine: Bimolecular and Clinical Aspects. 2nd edition.Boca Raton (FL): CRC Press/Taylor & Francis; Pg 1-37
- Rathaur,P., Raja,W., Ramteke. P.W. and John, S.A. (2018).Turmeric: The Golden Spice of Life.I .J. of Pharma Sci and Research 1987-1994.
- Ravindran, J., Prasad, S. and Aggarwal, B.B.(2009).Curcumin and Cancer Cells: How Many Ways Can Curry Kill Tumor Cells Selectively?AAPS J. 11(3): 495–510.
- Saikia A P, Ryakala VK, Sharma P, Goswami P and Bora U (2006) Ethnobotany of medicinal plants used by Assamese people for various skin ailments and cosmetics. J Ethnopharmacol; 106:149–157.
- Sasikumar,B. (2012). Handbook of Herbs and Spices (Second edition)Woodhead Publishing Series in Food Sci, Tech and Nutrition (1)526-546.
- Sinha, K.K. (2003). Spices and Flavoring (Flavouring) Crops : Tubers and Roots|Encyclopedia of Food Sciences and Nutrition (Second Edition).
- Surh YJ, Chun KS, Han HH, Keum SS, Park YS, and Lee SS (2001) Molecular mechanism underlying chemopreventive activities of anti-inflammatory phytochemicals: down regulation of COX-2 and iNOS through suppression of NF-kB activation. Mutat. Res.; 2001; 48: 243–268.
- Tohda C, Nakayama N, Hatanaka F, and Komatsu K (2006) Comparison of anti-inflammatory activities of six curcuma rhizomes:Apossible curcuminoid-independent pathway mediated by Curcuma phaeocaulis extract. Evid Based Complement Alternat Med 3:255–260.
- Vaishali and Singh NP (2017) Curcuma longa ke rupatmak chritro ka aanklan. Bhartiya Krishi Anusandhan Patrika.
- Ware, M. andRdn L.D. (2018).Everything you need to know about turmeric https://www.medical news today.com/articles/306981.php
- Xu BY, Ku HS, Yao YY, Lin X Ma.Y.H., ZhangX H, Li J (2005) The effects of Curcumin on depressive-like behaviors in mice. EJFP 518 40-46.
- Zhang, L., Fiala, M., Cashman, J., Sayre, J., Espinosa, A., Mahanian, M., Zaghi, J., Badmaev, V., Graves, M.C., Bernard, G. and Rosenthal, M. (2006).Curcuminoids enhance amyloid-beta uptake by macrophages of Alzheimer's disease patients. J Alzheimers Dis. 10(1):1-7.

आधुनिक युग का एक महत्वपूर्ण पादप उत्पाद : रबर

प्रेमलता विकल

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वनस्पतिविज्ञान विभाग

सेठ रंगलाल कोठारी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

राजसमंद-313324, (राजस्थान)

ई-मेलः vikal16prem@gmail.com

प्रस्तावना

रबर,पादपों द्वारा स्रावित एक मिश्रण है जिसमें रेज़िन, गोंद, हाइड्रोकार्बन व अन्य कई पदार्थ मिश्रित अवस्था में पाए जाते हैं। आवृतबीजी पादपों में से लगभग 2000 जातियाँ रबर स्रावित करती हैं, जो मुख्यतः उष्णकटिबंधीय व उपोष्ण क्षेत्रों में पाई जाती है। कई आवृतबीजी कुलों के पादपों से रबर प्राप्त किया जाता है जैसे कि यूफोर्बिएसी, सेपोटेसी, एपोसाईनेसी, एस्क्लीपिएडेसी, ऐस्टरेसी, मोरेसी इत्यादि। परंतु सबसे उत्तम श्रेणी का रबर यूफोर्बिएसी कुल के पादप (जो एक बड़े वृक्ष की श्रेणी में आता है) हेविया ब्राजीलिएन्सिस से प्राप्त किया जाता है। विश्व के कुल रबर उत्पादन का 97-98% रबर इसी पौधे से प्राप्त होता है।

यद्यपि रबर के बारे में पश्चिमी विश्व के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के निवासियों को प्राचीन समय से ही जानकारी थी, परंतु 1496 में क्रिस्टोफर कोलम्बस ने सबसे पहले हैती निवासियों को कैकुक के गोंद से तैयार जलसह गेंद से खेलते देखा। जोसेफ प्रिस्टल ने इस पदार्थ को रबर का नाम दिया। आरंभ में रबर से कई चीजें बनाई गईं व कई दैनिक उपयोग की वस्तुएँ आदि बनाने में भी इसको काम में लिया गया। इसके अधिक ताप पर लचीले एवं कम ताप पर भंगुर हो जाने से इसकी उपयोगिता में कमी आई। 1839 में चार्ल्स गुडईयर ने गंधकयुक्त वल्कनीकृत रबर को 150^{o}C तक गर्म करने पर देखा फिर से यह कठोर हो जाता है तथा इसके घर्षण व कटने-फटने में न्यूनता आ जाती है। इस आविष्कार से औद्योगिक जगत में क्रान्ति आ गई। 20वीं शताब्दी तक प्राकृतिक रबर सिर्फ ब्राज़ील से आता था व जहाजों में लदान का काम पारा बंदरगाह से होता था, अतः इसका नाम पारा-रबर पड़ गया।

सर जोज़फ हुकर ने इसी रबर के पौधे को भारत में पुनः स्थापित किया। मलेशिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड, श्रीलंका विश्व के प्रमुख रबर उत्पादक देश हैं। कुछ अन्य देशों जैसे जायर, नाईज़ीरिया, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका भी रबर उगाने वाले देशों में आते हैं। भारतीय रबर के सारे वन (लगभग 94%) केरल के कोट्टायम व क्विलोन जिलों में हैं जो देश के कुल उत्पादन का 94% भाग हैं। कुछ अन्य भागों जैसे- तमिलनाडु, कर्नाटक व अंडमान में भी रबर का उत्पादन किया जाता है।

रबर के रासायनिक व भौतिक गुण

रबर एक प्रत्यास्थ व लचीला पदार्थ है जो वायु व जलरोधी होता है। रासायनिक परिभाषा के अनुसार यह एक बहुलक है जिसमें अनियमित व्यवस्था होती है जो इसके लचीलेपन के लिए जिम्मेदार है। प्राकृतिक रूप से प्राप्त रबर सामान्य ताप पर नर्म व पारभासक होता है जो अधिक ताप पर अपना लचीलापन खो देता है व चिपचिपा पदार्थ बन जाता है। कम ताप (0-10^{o}C) पर यह कठोर व अपारदर्शी रहता है। यह जल में नहीं घुलता पर कार्बनिक विलायकों जैसे ईथर, क्लोरोफार्म, कार्बनडाईसल्फाईड, बैन्जीन इत्यादि में घुलनशील है। रबर का रासायनिक संघटन देखें तो इसमें 92-94% हाइड्रोकार्बन, 3% रेज़िन, व 2% प्रोटीन होता है जो मूलभूत रूप से आइसोप्रीन इकाई (एक पंच कार्बन इकाई C_5H_8) से बना होता है व इसी का बहुलक रबर है। रबर हैलोजन अम्लों, हैलोजन (क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन, फ्लुओरीन), ओज़ोन, नाइट्रोजन के ऑक्साईड के साथ क्रिया कर यौगिकों का निर्माण करता है तथा नाइट्रिक अम्ल, हाइड्रोजन परऑक्साईड व पोटेशियम परमैंगनेट से यह ऑक्सीकृत हो जाता है।

रबर एक प्रकार का लेटेक्स अर्थात रबड़क्षीर है जो कई काष्ठीय व आरोही पादपों से प्राप्त होता है। लेटेक्स की उपस्थिति छाल, पर्णों या पादक के दूसरे नर्म भागों में होती है। व्यावसायिक रूप से उपयोगी रबर सदैव पादपों के निचले भागों से प्राप्त किया जाता है। लेटेक्स एक गोंद की तरह श्वेत द्रव है जिसमें छोटे-छोटे असंख्य कण होते हैं इसका पादप के घाव भरने में कोई योगदान नहीं होता। किंतु इससे पादपों को पोषण, सुरक्षा व पदार्थों के संचरण या भंडारण में सहायता मिलती है। लेटेक्स पादपों की विशेष कोशिकाओं (लेटेक्स नलिकाएँ) और लेटेक्स वाहिनियों में उपापचयी क्रियाओं के उपोत्पाद के रूप में बनता है।

रबर प्रदायक पादप

1. पारा रबर

यह रबर उत्पाद *हेविया ब्राजीलिएन्सिस* पादस से मिलता है जो यूफोर्बिएसी कुल का सदस्य है। इसकी गुणवत्ता सर्वश्रेष्ठ होती है क्योंकि रबर हाइड्रोकार्बन में, आइसोप्रीन इकाई का अनुपात अन्य अवयवों की तुलना में ज्यादा होता है। इसका रंग हल्का पीला या सफेद होता है।

वानस्पतिक लक्षण एवं वर्णन

हेविया का पादप एक दृढ़, तेज वृद्धि करने वाला, सुशाखित वृक्ष होता है। इसकी सामान्य ऊँचाई 20-25 मीटर व आधारीय भाग पर स्तंभ की मोटाई 2-3 मीटर तक पाई जाती है। शाखाएँ आधार से लगभग 4-5 मीटर ऊपर से बनना प्रारंभ होती हैं। इसकी पत्तियाँ गहरी हरी, संवृत, संयुक्त, त्रिपर्णक,

पुष्प लघु, हरे, सुगंधित, एकलिंगी, यौगिक असीमाक्ष में व्यवस्थित, नर पुष्प नीचे व मादा पुष्प पुष्पक्रम में शीर्ष की तरफ पाए जाते हैं। फल त्रिकोष्ठीय केप्स्यूल, प्रत्येक कोष्ठ में एकल बीज उपस्थित, विस्फुटन विस्फोटक विधि द्वारा होता है।

खेती

हेविया एक उष्णकटिबंधीय पादप है जिसकी वृद्धि 24-35^{o}C तापक्रम नम जलवायु, जलोत्सारित दुमट मृदा व 175-250 सेमी औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अत्यधिक होती है। इसका प्रवर्धन बीजों द्वारा ही होता है क्योंकि बीजों की जीवनक्षमता अल्पकालिक होती है। अतः बीज पकते ही शीघ्रातिशीघ्र बो देते हैं। रबर प्राप्ति के लिए पादप 6-7 वर्षों में तैयार हो जाते हैं परंतु सर्वाधिक उत्पादन 10-12 वर्षों बाद होता है और वृक्ष की जीवन क्षमता 25-30 वर्ष तक ही होती है।

रबर उत्पादन एवं प्रसंस्करण

1. निष्कासन विधि- इसमें उन सभी वृक्षों को चुना जाता है जिनके स्तंभ भूमि से 1 मीटर ऊँचाई पर 50 सेमी मोटे हों। इनमें लेटेक्स वाहिकाओं की मात्रा अधिक होने से एक विशेष प्रकार के चाकू से पतला चीरा (1-1.5 मिमी) लगाकर छाल को काटकर अंदर की तरफ (30^{o} के कोण पर) तिरछा लगाया जाता है। सामान्यतः एक समय में स्तंभ के एक तरफ ही नियमित अंतराल से चीरे लगाए जाते हैं। कभी-कभी इनका आकार 'v' की तरह भी होता है। प्रातःकाल के समय लेटेक्स वाहिकाओं में स्फीति दाब उच्च होता है जो प्रवाह को तीव्र रखता है अतः चीरा प्रातःकाल में ही लगाया जाता है। दोपहर तक इसमें प्रवाह बंद हो जाता है। प्रवाहित लेटेक्स को चीरे के ठीक नीचे मिट्टी के घड़े में इकठ्ठा कर लेते हैं व इनमें कुछ प्रतिस्कंदक पहले से ही मिला के रखते हैं (हाइड्रोजन परऑक्साइड, अमोनिया आदि) ताकि पात्रों में रबर स्कंदित ना हो। रबर एकत्रित होने के बाद चीरे की सतह पर चिपकी हुई स्कंदित रबर को भी अलग से एकत्रित कर लेते हैं जो निम्न कोटि का रबर होता है। यह सभी कार्य प्रतिदिन दोहराया जाता है। जब स्तंभ की एक सतह 10-12 वर्षों में चीरों से भर जाती है तो चीरे दूसरी ओर लगाना प्रारंभ करते हैं। इसी अवधि में उस सतह पर चीरों के घाव भर जाते हैं व नयी छाल बन जाती है। कुछ विश्राम के साथ रबर निष्कासन का कार्य पूरे वर्ष तक किया जाता है।

2. प्रसंस्करण - वृक्षों से एकत्रित रबर के कोलॉइडी पायसन में 30-35% तक जल होता है। रबर के इस रूप में मिट्टी व धूल के कण नहीं होने चाहिए। शुद्ध पायस इमल्शन को निम्न चरणों में शोधित किया जाता है-

(i) सर्वप्रथम निष्कासित रबर को ऐलुमिनियम की छननियों में छानकर इसमें उपस्थित छाल, पत्तियाँ व अन्य कई अशुद्धियाँ पृथक् कर लेते हैं।

(ii) लेटेक्स में मानक जल की मात्रा ही रखी जाती है जिसको आर्द्रतामापी से नाप लिया जाता है।

(iii) अब सारे लेटेक्स को बड़े-बड़े पात्रों में फॉर्मिक व ऐसीटिक अम्ल मिलाकर (लगातार हिलाते हुए) स्कंदित कर लेते हैं।

(iv) स्कंदित रबर को जल से धोने के पश्चात् इसे रोलरों में दबाकर निचोड़ लेते हैं और बाद में मशीनी रोलरों में डालकर इनको परतों का रूप दे दिया जाता है।

(v) इन शीटों को धुएँ वाले कक्षों में रखकर सुखा देते हैं। इस प्रक्रिया में 50^{o}C से कम तापमान पर लगभग 2.5 मिमी शीट 3-4 दिन में सूखती है, इस सूखी रबर से ही कई प्रकार की रबर बनाई जाती है।

3. वल्कनीकरण - इस प्रक्रिया के लिए रबर को गर्म करके (150^{o}C पर) गंधक की विभिन्न मात्राओं के साथ मिलाया जाता है। कभी-कभी इसके अतिरिक्त अन्य रसायन (सेलिनियम, कार्बनिक परऑक्साईड या नाइट्रो परऑक्साईड) भी मिलाए जाते हैं। इस विधि से उपचारित रबर लचीला, अच्छी तनन सामर्थ्य व अपघर्षण प्रतिरोधक बन जाता है।

रबर के अन्य स्रोत

(i) कैस्टीला रबर- यह *कैस्टीला इलेष्टिका* व *के. उलई,* (कुल मोरेसी) से प्राप्त करते हैं जो कि मेक्सिको व मध्य अमरीका के प्राकृत पादप हैं । इसके वृक्षों के 8-10 वर्ष के होने पर काफी मात्रा में रबर प्राप्त किया जाता है।

(ii) सीआरा रबर- इसे *मेनिहोट ग्लेजिओविई* (कुल यूफोर्बिएसी, जो आजकल भारत में खूब उगाया जाता है) से प्राप्त किया जाता है। यह वृक्ष ब्राज़ील के रेगिस्तान का प्राकृत पादप है। यह रबर वृक्ष के 4-5 वर्ष के होने पर ही मिलने लगता है व अच्छी श्रेणी का होता है।

(iii) आसाम रबर- यह रबर फाइकस इलेस्टिका (कुल मोरेसी) से प्राप्त होता है जो भारत व मलाया का प्राकृत पादप है। भारत में यह बाहरी हिमालयीय क्षेत्रों में पूर्व में नेपाल से आसाम, खासी पर्वतमाला और म्यानमार तक 1000-1700 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मिलता है, जहाँ सामान्यतः गर्म व नम मौसम, नम घाटियाँ, नम पर्वत ढाल या नम वन हो। यह रबर बहुत अच्छी श्रेणी का तो नहीं होता किंतु इससे भारत में काफी रबर प्राप्त होता है। जड़ों व स्तंभों दोनों में रबर

प्राप्ति के लिए चीरे लगाए जाते हैं। वृक्षों के 20 वर्ष के होने के बाद तीन वर्षों में एक बार ही प्रत्येक वृक्ष से रबर निष्कासन किया जाता है। लेटेक्स बांस की चटाइयों या बड़ी-बड़ी पत्तियों पर इकठ्ठा कर लिया जाता है। यह ताजा लेटेक्स चॉक की तरह सफेद व भीनी ईथर की गंध लिए होता है। इसका स्कंदन प्रकाश व टैनिक अम्ल और फिटकरी की सहायता से करते हैं। इस रबर में रेज़िन की मात्रा ज्यादा होती है जिससे यह कुछ समय बाद कड़ा पड़ जाता है।

- कुछ अन्य पादप भी रबर प्रदायक हैं जो निम्न हैं-
- फन्टूमिया इलेस्टिका, कुल ऐपोसाइनेसी (लागोस सिल्क रबर)
- लेन्डोल्फिया ह्यूडेलोटि एवं ले. ओवेरियेन्सिस, कुल एपोसाईनेसी (लेन्डोल्फिया रबर)
- पार्थिनियम अर्जेन्टेटम, कुल ऐस्टरेसी (ग्वायुल रबर)
- टेरेक्सम कोकसेग्ज, कुल ऐस्टरेसी (डेन्डोलियोन रबर)
- यूफोर्बिया इन्टिसी, कुल यूफोर्बिएसी (इन्टिसी रबर)
- हेनकॉर्निया स्पीशीओसा, कुल ऐपोसाइनेसी (मांगाबेरिआ)
- ऐपोसाइनेसी केन्नाबिनम, कुल ऐपोसाइनेसी (भारतीय भांग/ हैम्प)
- क्रीप्टोस्टिजीया ग्रेण्डीफ्लोरा, क्री.मेडागेस्करियन्सिस, एस्क्लीपियास सुबुलेटा, कुल एस्क्लीपिएडेसी (पलाय रबर)

लेटेक्स के अन्य उत्पाद

गटा परचा- यह सेपोटेसी कुल के कुछ सदस्यों से प्राप्त होता है जो निकलते समय एक सलेटी-सफेद रंग लिए होता है परंतु बाद में यह अप्रत्यास्थ रबर में बदल जाता है। इसका मुख्य प्रदायक *पेलेक्वियम गट्टा* है जो मलाया का प्राकृत पादप है व मलेशिया में मुख्य रूप से पाया जाता है। पौधों से लेटेक्स चीरे लगाकर केलों के पत्तों या नारियल के खोलों में इकठ्ठा किया जाता है। यह शीघ्र ही स्कंदित हो जाता है। इसका प्रमुख उपयोग पनडुब्बी के केबल बनाने में होता है क्योंकि यह खारे जल का प्रतिरोधी दृढ़ एवं लोचयुक्त होता है। इसका प्रयोग प्रतिरोधक के रूप में, पाईप, गोल्फ गेंदें इत्यादि बनाने में भी किया जाता है। इसका प्रयोग दंत विज्ञान में भी किया जाता है।

बलाटा- यह भी गटा परचा की तरह अप्रत्यस्थ रबर है। यह मेनिलकारा बाईडेन्टेटा (कुल सेपोटेसी) नामक वृक्ष से प्राप्त होता है जो दक्षिणी अमेरिका व त्रिनिदाद का स्वदेशी पादप है व जंगली अवस्था में

उगता है। इसका उपयोग गटा परचा की तरह ही होता है और विशेष रूप से इसे मशीनों के पट्टे बनाने के काम में लिया जाता है।

जेलुटोंग- यह मलाया वृक्ष ड्येरा कोस्ट्यूलेटा कुल ऐपोसाइनेसी से प्राप्त एक गोंद है जो पौधे के लेटेक्स में मिलता है एवं चिकल (गोंद) का प्रतिस्थापक है।

चिकल- यह सेपोटेसी कुल के एक्रस पादप के लेटेक्स से प्राप्त एक गोंद है। यह मेक्सिको के युकाटन प्रायद्वीप और ग्वाटेमाला का प्राकृत पादप है। इकठ्ठे किए गए लेटेक्स को दो घंटे तक उबाला जाता है, उसके बाद इसके खंड, गेंद इत्यादि बना लिए जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त चिकल को सुखाया, चूर्णित व शुद्धिकृत किया जाता है। अंत में इसे साफ करके, जीवाणुरहित एवं सुगंधित बनाकर च्यूईंग गम बनाया जाता है।

रबर के उपयोग

रबर आज के समय में अत्यंत उपयोगी वस्तु है। इसका प्रयोग खेल, प्लास्टिक, औषधि, वस्त्र उद्योग इत्यादि में काफी किया जाता है। बड़ी मशीनों व मोटरों को एक स्थान पर स्थिर करते समय रबर एक प्रघात अवशोषक के रूप में हमारे लगभग सभी उपकरणों व मशीनों में यह अत्यंत उपयोगी है। रबर का प्रमुख उपयोग टायर व ट्यूब उत्पादन में है (कुल उत्पादन का लगभग 70% भाग)। इसका उपयोग रबर के दस्ताने, मोमजामा, मूत्र नलिकाएँ, एनिमा के उपकरण, कन्डोम इत्यादि बनाने में भी किया जाता है।

रबर से गद्दे, चटाइयाँ व तकिये, मोटर गाड़ियों की गद्दियाँ, फर्नीचर की गद्दियाँ, आसंजक, पेन्सिल मिटाने वाली रबर, जूतों के सोल, चप्पल व कई वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

गिलोय (टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया) : प्राकृतिक अमृत

डॉ. शुक्ला सलूजा एवं डॉ. योगेन्द्र कुमार गौतम

वनस्पतिविज्ञान विभाग

श्री वेंकटेश्वर महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय) धौलाकुआँ, नई दिल्ली -110021

ई-मेल : shuklasaluja@gmail.com

प्राचीनकाल से ही मनुष्य रोग निदान के लिए विभिन्न प्रकार के पादपों का उपयोग करता आया है। औषधीय पादपों से उपचार बहुत ही सुरक्षित माना जाता है क्योंकि इसके अनुषंगी-प्रभाव कम या नगण्य होते हैं। औषधी प्रदाय पौधे अधिकतर जंगली होते हैं। कभी-कभी इन्हें उगाया भी जाता है। इन पादपों की जड़ें, तने, पत्तियाँ, पुष्प, फल, बीज और यहाँ तक कि छाल का उपयोग भी उपचार के लिए किया जाता है। पादपों का यह औषधीय गुण उनमें उपस्थित कुछ रासायनिक पदार्थों से होता है जिनकी मानव-शरीर क्रियाओं पर विशिष्ट क्रिया होती है।

परिचय

गिलोय (टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया) एक बहुवर्षी लता होती है। आयुर्वेद में इसको कई नामों से जाना जाता है। जैसे-अमृता, गुडुची, छिन्नरुहा, चक्रांगी, आदि। बहुवर्षीय तथा अमृत के समान गुणकारी होने से इसका नाम अमृता है। आयुर्वेद में इसे बुखार की अत्यधिक उपयोगी औषधि माना गया है एवं जीवंतिका नाम दिया गया है। गिलोय की बेल जंगलों, खेतों की मेड़ों, पहाड़ों की चट्टानों आदि स्थानों पर सामान्यतः कुंडलाकार चढ़ती पाई जाती है। नीम व आम के वृक्ष के आस-पास भी यह मिलती है। जिस वृक्ष को यह अपना आधार बनाती है, उसके गुण भी इसमें समाहित रहते हैं। इस दृष्टि से नीम पर चढ़ी गिलोय (नीम गिलोय) श्रेष्ठ औषधि मानी जाती है।

वानस्पतिक विवरण

गिलोय का वैज्ञानिक नाम टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया (Tinospora cordifolia) है। यह पुष्पीय पादपों (आवृतबीजी व्रग) के मेनिस्पर्मेसी (Menispermaceae) कुल का सदस्य है। गिलोय के तने की ऊपरी छाल बहुत पतली, भूरे या धूसर रंग की होती है, जिसे हटा देने पर भीतर का हरित मांसल भाग दिखाई देने लगता है। तना काटने पर अंतर्भाग चक्राकार दिखाई पड़ता है। पत्तियाँ हृद्याकार पान जैसे एकांतर क्रम में व्यवस्थित स्निग्ध होती हैं तथा इनमें 7 से 9 शिराएँ होती हैं। पर्ण-डंठल लगभग 1 से 3 इंच लंबा होता है। पुष्प ग्रीष्म ऋतु में छोटे-छोटे पीले रंग के गुच्छों में आते हैं। फल भी गुच्छों में ही लगते हैं तथा छोटे मटर के आकार के होते हैं। पकने पर ये रक्त के समान लाल हो जाते हैं। बीज सफेद, चिकने,

कुछ टेढ़े, मिर्च के दानों के समान होते हैं। अधिक उपयोगी अंग तना है परंतु पत्तियाँ भी उपयोगी होती हैं।

चित्र

औषधीय गुण एवं उपयोग

औषधीय गुण संपूर्ण पौधे में पाया जाता है लेकिन इसके तने की छाल औषधीय दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण भाग होती है। इस पादप में विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण सक्रिय फार्मास्युटिकल घटक जैसे ऐल्कलॉइड्, स्टेरॉइड्, डिटेरपेनॉइड् लेक्टॉन्स (diterpenoid lactones) और ग्लाइकोसाइड पाए जाते हैं।

गिलोय का प्रयोग प्राकृतिक औषधि के रूप में होता है। गिलोय भूख बढ़ाती है, शरीर में इंसुलिन उत्पादन क्षमता बढ़ाती है। गिलोय रक्त शोधन कर शारीरिक दुर्बलता को भी दूर करती है। यह बलगम निकासी कर देता है। इसे चूर्ण, छाल, रस और काढ़े के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके तने को कच्चा भी चबाया जा सकता है। नीम गिलोय में सर्वाधिक औषधीय गुण पाए जाते हैं। इसकी पत्तियों में कैल्शियम, प्रोटीन, फॉस्फोरस और तने में स्टार्च पाया जाता है। यह वात, कफ और पित्त का शमन करती है। गिलोय शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है।

प्लेटलेट्स बढ़ाने का इससे उत्तम कोई उपचार नहीं है। यह चिकनगुनिया, डेंगू, स्वाइन फ्लू और बर्ड फ्लू में रामबाण है। गिलोय एक रसायन है, जो रक्तशोधक, ओजवर्धक, यकृत हृदयरोगनाशक और

यकृत पुष्टिकारक भी है। यह पीलिया और जीर्ण ज्वर का नाश करती है तथा शरीर के जोड़ और असमय बुढ़ापे को रोकती है।

गैस, जोड़ों का दर्द, शरीर का टूटना और असमय बुढ़ापा वात असंतुलित होने के लक्षण हैं। गिलोय के एक चम्मच चूर्ण को घी के साथ लेने से वात संतुलित होता है। गिलोय का चूर्ण शहद के साथ खाने से कफ और सोंठ के साथ आमवात से संबंधित बीमारियाँ (गठिया) रोग ठीक होता है। गिलोय और अश्वगंधा (Withania Somnifera) को दूध में पकाकर नियमित इस्तेमाल करने से बांझपन से मुक्ति मिलती हैं।

कैंसर और टीबी के रोग में गुणकारी

गिलोय रस और गेहूँ के ज्वारे का रस थोड़े से पानी के साथ एक कप की मात्रा खाली पेट सेवन रक्त कैंसर में लाभप्रद होती है। गिलोय और गेहूँ के ज्वारे का रस तुलसी और नीम के 5 -7 पत्ते पीसकर सेवन करने से कैंसर में भी लाभ होता है। क्षय (टीबी) रोग में गिलोय सत्व, इलायची तथा वंशलोचन को शहद के साथ लेने से लाभ होता है।

ज्वर शमन करने और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में लाभकारी गिलोय के काढ़े में शहद मिलाकर सुबह और शाम सेवन करने से बार-बार होने वाला ज्वर समाप्त हो जाता है।

गिलोय और नीम को बराबर मात्रा में लेकर काढ़ा बनाकर सुबह और शाम सेवन करने से ज्वर ठीक हो जाता है।

गिलोय ज्वर पीड़ितों के लिए अमृत है, गिलोय का सेवन ज्वर पीड़ितों व ज्वर के बाद शक्तिवर्धक का काम करता है। गिलोय रस में खांड डालकर पीने से पित्त ज्वर ठीक होता है। इसे शहद में मिलाकर सेवन करने से पित्त वृद्धि रुकती है। प्रतिदिन सुबह-शाम गिलोय का रस घी में मिलाकर या शहद गुड़ या मिश्री के साथ सेवन करने से शरीर में रक्त की अल्पता दूर होती है।

गिलोय और काली मिर्च का चूर्ण बराबर मात्रा में मिलाकर गुनगुने पानी में सेवन करने से हृदयशूल में लाभ मिलता है व रस का सेवन करने से हृदय दुर्बलता दूर होती है और हृदय रोग ठीक होते हैं। गिलोय और त्रिफला चूर्ण को सुबह और शाम शहद के साथ चाटने से मोटापा कम होता है।

गिलोय, बड़ा गोखरू (Tribulus) और आँवला बराबर मात्रा में, तैयार चूर्ण का सेवन मिश्री और घी के साथ करने से शारीरिक दुर्बलता दूर होती है।

गिलोय का एक चम्मच चूर्ण या काली मिर्च अथवा त्रिफला का एक चम्मच चूर्ण शहद में मिलाकर चाटने से पीलिया रोग में लाभ होता है। गिलोय की बेल गले में लपेटने से भी पीलिया में लाभ होता है। गिलोय के काढ़े में शहद मिलाकर दिन में 3-4 बार पीने से पीलिया रोग ठीक हो जाता है। गिलोय के पत्तों को पीसकर एक गिलास मट्ठे में मिलाकर सुबह-सुबह पीने से पीलिया ठीक हो जाता है।

गिलोय के रस में मिश्री या शहद मिलाकर दिन में दो बार पीने से गर्मी के कारण आ रही या सामान्य वमन रूक जाती है। गिलोय के तने का काढ़ा बनाकर ठंडा करके पीने से वमन रुक जाती है। 6 इंच गिलोय का तना लेकर कूटकर काढ़ा बनाकर इसमें काली मिर्च का चूर्ण डालकर गरम-गरम पीने से साधारण जुकाम ठीक हो जाता है।

संदर्भ

- उपाध्याय ऐ. के, कुमार के, कुमार ऐ, मिश्रा एच एस : टिनोस्पोरा कार्डीफोलिया (willd.) हुक. एफ. और थॉमस. (गुडुची)-वेलिडेशन ऑफ़ द आयुर्वेदिक फार्माकोलॉजी थ्रो एक्सपेरिमेन्टिल एंड क्लिनिकल स्टडीज। Int J Ayurveda Res. 2010;1(2):112-21.
- साहा एस. घोष एस. टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया : वन प्लांट, मेनी रोल्स। Anc Sci Life. 2012; 31(4): 151-159.
- सूर्यवंशी एस, चौधरी ऐ, रैना पी, घाणेकर आर के : ऐ पॉलिहर्बल फार्मूलेशन, HC9, रेगुलेटेड सेल ग्रोथ एंड एक्सप्रेशन ऑफ़ सेल साइकिल एंड क्रोमैटिन मॉडुलेटरी प्रोटीन इन ब्रैस्ट कैन्सर सेल लाइन्स J Ethesnopharmacol 2019; 242;112022.
- गुप्ता पी के, कुलकर्णी एस : ऐ पॉलीसैकेराइड रिच एक्सट्रेक्ट फ्रॉम टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया इन्हिबिट द इंट्रासेलुलर सर्वाइवल ऑफ़ ड्रग रेजिस्टेन्स स्ट्रेन ऑफ़ मायक्रोबैक्टीरियम ट्युबरकुलेसिस इन मैक्रोफाज बाइ नाइट्रिक ऑक्ससिड इंडक्शन। Tuberculosis 2018; 113: 81-90.
- आचार्य बालकृष्ण (2017). आयुर्वेद जड़ी-बूटी रहस्य (द्वितीय संस्करण). दिव्य प्रकाशन. पृ. 450. ISBN 978-81 -89235-44-4.

मोक्षदायिनी क्षिप्रा जल का स्वास्थ्य : एक अध्ययन

प्रो. डी. एम. कुमावत एवं मनीष कुमार शर्मा
पर्यावरण प्रबंध अध्ययनशाला,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
ई-मेल : mks_ujjain@yahoo.com

प्रस्तावना

अमृतमयी पुण्य सलिला क्षिप्रा का मध्यप्रदेश के मालवा अंचल में एक मुख्य एवं अतिविशिष्ट स्थान है। क्षिप्रा ने अनादि काल से अनगिनत क्षेत्रों को सींचा है। कभी अतीत में क्षिप्रा भी प्रवाहमान थी, जिसने असंख्य प्राणियों की प्यास बुझाई व खेतों को सिचिंत किया किंतु आज मानवीय अतिरेक व अत्यधिक दोहन की वजह से क्षिप्रा जल की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ा है।

आज क्षिप्रा जल की गुणवत्ता की नियमित जाँच एवं स्वास्थ्य परीक्षण की अत्यंत आवश्यकता महसूस की जा रही है। जल की गुणवत्ता को निर्धारित करने के लिए संबंधित मापदंडों में हुए परिवर्तनों जैसे तापमान, pH, क्षारीयता, चालकता, धुंधलापन, क्लोराइड, फॉस्फेट, नाइट्रेट, घुलित ऑक्सीजन, जैविक ऑक्सीजन मांग, कुल कॉलीफार्म एवं जीवाणुओं की गणना आदि का आकलन समय-समय पर करना अति आवश्यक है। इसी तारतम्य में क्षिप्रा नदी जल का विस्तृत भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परीक्षण किया गया।

क्षिप्रा परिचय

1. स्थिति, उद्‌गम एवं मार्ग

क्षिप्रा नदी मध्यप्रदेश के धार जिले के उत्तर में स्थित विंध्य पर्वत श्रेणी (खाखरी बाड़ी) शिखर से निकल दक्षिण में स्थित मालवा पठार से होती हुई चंबल नदी में मिलती है। उज्जैन शहर इसके किनारे पर बसा है और हर बारह वर्ष बाद इसके घाटों पर कुंभ मेला लगता है। क्षिप्रा शब्द का अर्थ ही शुद्‌धता का द्‌योतक है (शुद्‌धता आत्मा की, भावना की, मन एवं शरीर की)। यह 23056' अक्षांतर एवं 87028' देशांतर में प्रवाहमान है। इसकी कुल लंबाई 195 कि.मी. है। जिसमें से 93 कि.मी.का मार्ग उज्जैन जिले में है। आगे चलकर यह मंदसौर एवं रतलाम जिले को छूती हुई चंबल नदी में मिलती है। क्षिप्रा की मुख्य धारा में मिलने वाली अन्य छोटी नदियों में खान एवं गंभीर नदी आती हैं।

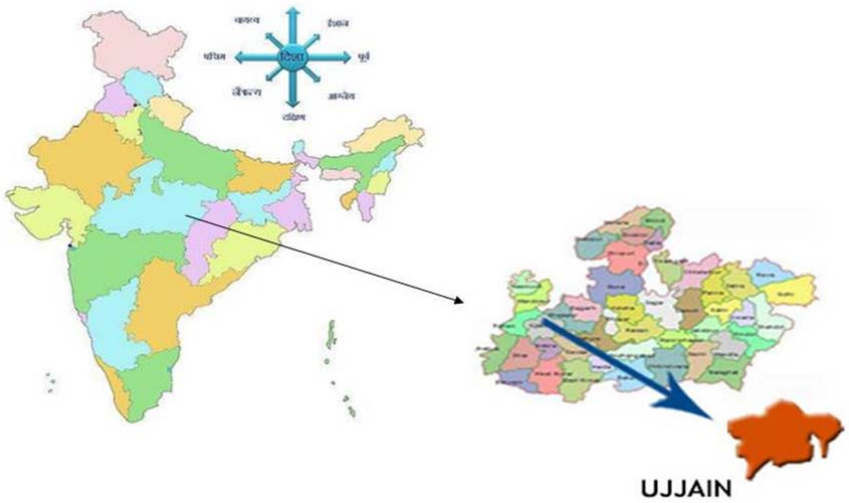

चित्र :- क्षिप्रा नदी के विभिन्न नमूना संग्रहण केंद्र (Sampling Stations) (कुल प्रवाहित लंबाई 195 किमी.) 1.खाखरी बाड़ी (उद्गम), 2.केवडेश्वर कुंड, 3.क्षिप्रा ग्राम (देवास), 4. त्रिवेणी (खान नदी संगम क्षेत्र), 5.गउघाट, 6. रामघाट, 7.चक्रतीर्थ, 8. मंगलनाथ, 9. सिद्धवट, 10. महिदपुर पुल, 11. आलोट

कार्य योजना एवं रूपरेखा

क्षिप्रा जो कभी अविरल धारा के रूप में प्रवाहमान रहती थी अब केवल वर्षा के कुछ महीनों में ही प्रवाहमान रहती है। शेष समय जल कई स्थानों पर एकत्रित होकर ठहरा रहता है। इसके किनारे बसे गाँव व उज्जैन शहर के बीच विकास एव फैलाव के कारण इसका जल संग्रहण क्षेत्र सिकुड़ने के साथ ही जल में संदूषकों की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। उससे उत्पन्न होने वाली बीमारियों तथा जीवाणुओं में भी वृद्धि हो रही है, साथ ही इन जीवों की प्रतिरोधक क्षमता का बढ़ना भी एक जटिल समस्या बन रही है। मानव स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में इसके पारितंत्र एवं इसके घटकों का स्वास्थ्य परीक्षण भी समय-समय पर होना अनिवार्य है। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए क्षिप्रा जल स्वास्थ्य अभियान

का आरंभ किया गया। इस अध्ययन के लिए कार्य योजना को निम्न भागों में विभाजित किया गया। परीक्षण हेतु जल नमूना संग्रहण स्थल का चयन क्षिप्रा के उद्गम स्थल से चंबल में विलय तक के क्षेत्र में (195 की.मी.) 11 मुख्य घाटों पर एक विस्तृत सर्वेक्षण कर जल के नमूने एकत्र कर उनकी गुणवत्ता की परख की गई।

1. जल नमूने एकत्रित करने के लिए चिहीनत क्षेत्रों का आधार था;
2. नदी का उद्गम
3. शहरी क्षेत्र में प्रवेश
4. मुख्य शहरी क्षेत्र जहाँ मानव गतिविधियाँ अधिक हों
5. चंबल में विलय पूर्व क्षेत्र

(क) अध्ययन क्षेत्र

1. **खाकरी बाड़ी :-** यह स्थान नदी का उद्गम माना जाता है जो कि इंदौर जिले में स्थित है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ नदी एक छोटी पहाड़ी पर स्थित भूमिगत जलधारा के रूप में प्रतीत होती है एवं पहाड़ी से नीचे कुंड में इसका प्रकट रूप दिरबाई देता है।
2. **केवडेश्वर कुंड :-** यह उद्गम स्थल से लगभग 200 मीटर पर स्थित है। यहाँ पर नदी पाँच कुंडों में प्रवेश करती है। इस स्थान पर धार्मिक कार्य होते हैं एवं यहीं प्रथम बार नदी का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।
3. **क्षिप्रा ग्राम देवास :-** यह स्थान नदी से लगभग 95 कि.मी. दूर देवास जिले में स्थित है ।
4. **त्रिवेणी घाट :-** यह उद्गम स्थान से लगभग 115 कि.मी. दूर उज्जैन के दक्षिण पश्चिम में स्थित है तथा यहाँ विश्व प्रसिद्ध नवग्रह मंदिर है। इसी स्थान पर खान नदी दक्षिण दिशा से आकर क्षिप्रा नदी में मिलती है। जो इंदौर से अत्यधिक घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट लाती है एवं क्षिप्रा में त्रिवेणी पर समाहित होती है।
5. **गउघाट :-** यह उद्गम स्थल से लगभग 124 कि.मी. दूर स्थित है। इस स्थान पर धार्मिक आयोजन तथा मानवीय गतिविधियाँ अधिक होने के कारण इस स्थान पर प्रदूषण अधिक है।
6. **रामघाट :-** यह उद्गम स्थल से लगभग 130 कि.मी. दूर हिंदुओं का पवित्र घाट है। इसी घाट के समीप नहर के घरेलू नाले भी इसमें समाहित होते हैं, जो कि यहाँ जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत माने गए हैं।

7. **चक्रतीर्थ (श्मशान) घाट :-** यह उद्गम स्थल से लगभग 132 कि.मी. दूर स्थित है। यहाँ पर शवों को जलाया जाता है व नदी में ऊपर की ओर धोबी घाट पर कपड़ो की धुलाई तथा रंगाई का काम होने से यह स्थान नदी का अत्यधिक प्रदूषित स्थान माना जाता है।
8. **मंगलनाथ :-** यह उद्गम स्थल से लगभग 140 कि.मी. दूर स्थित है। प्रवाहमान न होने के कारण इस स्थान पर जलकुंभी के पौधों की संख्या अत्यधिक हो चुकी है। घरेलू एवं मंदिर से निकलने वाले अपशिष्ट सीधे नदी में प्रवाहित होते हैं जिससे यहाँ का जल प्रदूषित एवं अत्यधिक सुपोषी बन गया है।
9. **सिद्धवट :-** यह उद्गम स्थल से लगभग 142 कि.मी. दूर स्थित है। यह उज्जैन शहर में स्थित अध्ययन क्षेत्र का आखिरी स्थान है तथा यहाँ नदी क्षेत्र के आसपास 200 से अधिक छोटी-बड़ी कपड़ा रंगाई एवं छपाई की इकाइयाँ हैं। इन इकाइयों से उत्पन्न रासायनिक अपशिष्ट सीधा नदी में प्रवाहित होता है। साथ ही वर्ष भर दूर-दूर से भक्त अपने पूर्वजों को पिंडदान एवं अन्य उत्तरकार्य करने इस घाट पर आते हैं। श्राद्ध मास में यहाँ पर सैकड़ों लिटर दूध वट वृक्ष पर अपने पितरों को श्रद्धालुजन अर्पित करते हैं, जो सीधा नदी में प्रवाहित होता है। यहाँ भी जल अत्यधिक प्रदूषित एवं सुपोषी हो गया है।
10. **महिदपुर :-** उज्जैन परिक्षेत्र से आगे बढ़ती हुई क्षिप्रा नदी 150 कि.मी. आगे महिदपुर में प्रवेश करती है। यहाँ भी मुख्य रूप से घरेलू अपशिष्ट नदी में प्रवाहित किए जाते हैं।
11. **आलोट :-** महिदपुर से आगे उद्गम स्थल से लगभग 190 कि.मी. दूर आलोट से क्षिप्रा जल स्वास्थ्य परीक्षण अध्ययन का अंतिम बिंदु था। यहाँ भी घरेलू अपशिष्ट ही जल में प्रवाहित होते हैं। आलोट से कुछ कि.मी. दूर सीपावरा ग्राम में क्षिप्रा-चंबल नदी का संगम हो जाता है।

(ख) प्रतिचयन विधि

जल के नमूने निर्जर्मीकृत आसुत जल से साफ की गई प्लास्टिक बोतलों में एकत्रित किए गए। सूक्ष्मजीव परीक्षण हेतु शुष्क बोतल का उपयोग किया गया जो 0.5 मि.ली. सोडियम थायोसल्फेट (10 प्रतिशत घोल) द्वारा उपचारित की गई थी। परीक्षण हेतु जल नमूने, जल सतह से 30-40 से.मी. की गहराई से एकत्रित कर प्रयोगशाला में ले जाए गए। जल नमूनों का परीक्षण भौतिक, रासायनिक एवं जैविक स्तर पर मानक विधियों द्वारा किया गया।

भौतिक परीक्षण : मुख्य भौतिक लक्षणों में पीएच, तापमान, धुंधलता, चालकता एवं कुल घुलित ठोस का परीक्षण APHA (1998) द्वारा वर्णित विधियों से किया गया।

रासायनिक परीक्षण : रासायनिक प्राचल जैसे घुलित ऑक्सीजन (विंकलर विधि), रासायनिक ऑक्सीजन माँग, कठोरता (कैल्सियम मि.ग्रा. एवं EDTA टाइट्रिमेट्रिक विधि), क्षारीयता, फॉस्फेट, क्लोराइड, नाईट्रेट आदि प्रदूषण के प्रमुख सूचक हैं जिनका अध्ययन APHA (1998) द्वारा वर्णित विधियों से किया गया।

वैज्ञानिक मापदंडों के आधार पर एकत्रित जल नमूनों के जीवाण्विक गुणों का परिमापन : (कुल कोलीफार्म एवं विष्ठा कोलीफार्म) इसके लिए जल नमूनों का परीक्षण अति संभाव्य संख्या विधि द्वारा किया गया। जीवाणु की वृद्धि के लिए उपयोग में लाए गए संवर्धन माध्यम मेकान्की ब्रॉथ, BGLB (Brilliant Green Lactose Broth) एवं EMB (Eosin Methylene Blue) एगार माध्यम थे।

फीकल स्ट्रेप्टोकोकाई : इन जीवाणुओं के परीक्षण हेतु अजाईड डेक्स्ट्रोस ब्रॉथ एवं Pfizer Selective Enterococcus (PSE) एगार संवर्धन माध्यम का उपयोग APHA (1998) द्वारा वर्णित विधियों से किया गया।

परपोषित जीवाणु गणना : वायवीय एवं वैकल्पिक अवायुजीवी परपोषित जीवाणुओं की संख्या का निर्धारण मानक प्लेट गणना विधि द्वारा किया गया।

चित्र 1 : क्षिप्रा नदी का उद्गम

चित्र 2: क्षिप्रा नदी का उद्गम (कुंड)

चित्र 3 : क्षिप्रा नदी देवास में

चित्र 4 : कान्ह नदी

चित्र 5 : त्रिवेणी घाट उज्जैन

चित्र 6 : गउघाट उज्जैन

चित्र 7: रामघाट उज्जैन

नमूना संग्रह

ग्यारह चयनित क्षेत्र/घाट से नदी की सतह एवं सतह से 24 से 30 से.मी. नीचे के स्वच्छ एवं जीवाणु रहित काँच की बोतलों में जल के नमूने एकत्रित किए गए। जल गुणवत्ता के कुछ परिमापों का अध्ययन संग्रहण क्षेत्र पर ही किया गया एवं कुछ नमूनों को हिमशीत अवस्था में प्रयोगशाला में विश्लेषण हेतु लाया गया।

कार्य उद्देश्य

- नदी जल, मानव जीवन पर तीन आयामों से मुख्य भूमिका निभाता है-
- जीवन की गुणवत्ता एवं जीवन स्तर में नदी जल की भूमिका।
- तटीय जन जीवन की जल में हिस्सेदारी।
- नदी का सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन से सरोकार।
- उपरोक्त तीनों आयामों के लिए निम्न परीक्षण बहुत आवश्यक माने गए हैं-

वैज्ञानिक मापदंडों के आधार पर जल नमूनों के भौतिक, रासायनिक एवं जैवाण्विक गुणों का परिमापन एवं विश्लेषण (Physicochemical and bacteriological analysis of water samples)

जल में उपस्थित आंत्ररोगजनकों की विविधता का अध्ययन (Isolation and identification of enteropathogens)

अवलोकन एवं परिणाम

उद्देश्यों के अनुरूप एकत्रित जल नमूनों के परीक्षण के परिणाम व प्रमाण इस प्रकार हैं :-

क्षिप्रा जल की गुणवत्ता को मापने वाले भौतिक, रासायनिक एवं जीवाण्विक मापदंडों के परिणाम, भारतीय मानक ब्यूरो (Bureau of Indian Standards) एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization) द्वारा जारी मापदंडों की सीमा तालिका 2 में दर्शित हैं।

भौतिक गुण

pH :- सभी ग्यारह स्थानों पर pH के मान में ज्यादा अंतर नहीं था। अधिकतम pH (7.50) site 9 पर पाया गया तथा न्यूनतम pH (6.64) site 5 पर पाया गया (तालिका : 2)। WHO मापदंड के अनुसार 6.5 -

8.5 pH जलीय जीवन के लिए उपयुक्त है। अर्थात क्षिप्रा का जल जलीय जीवन के लिए pH के मान से सभी स्थानों पर उपयुक्त है।

तापमान :- अध्ययन के दौरान अधिकतम तापमान (27.40c) site 11 तथा न्यूनतम तापमान (230c) site 1 पर पाया गया (तालिका 2)1 तापमान में अत्यधिक विषमता नहीं पाई गई और जलीय जीवन के लिए आवश्यक तापमान सभी अध्ययन स्थलों पर पाया गया।

चालकता (Conductivity) :- पानी में उपस्थित आयनों को प्रदर्शित करने की क्षमता चालकता, शून्य होती है। प्रदूषकों की मात्रा बढ़ने पर चालकता भी बढ़ती है। सभी स्थानों की चालकता 170 - 11680 Mho/cm के मध्य पाई गई तथा न्यूनतम (170) site 2 एवं अधिकतम (11680) site 4 पर पाई गई जो प्रदूषण स्तर को दर्शाता है (तालिका 2)।

आविलता (Turbidity) :- इसका मापना नेफेलो आविलता मापी के द्वारा किया जाता है। यह मापी पानी के धुंधलेपन को दर्शाता है जो कि प्रदूषण का एक मापक है। सभी परीक्षण स्थलों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि अधिकतम आविलता site 9 पर पाई गई अर्थात यह क्षेत्र नदी का अत्यधिक प्रदूषित क्षेत्र है। जबकि सबसे कम आविलता site 1 पर पाई गई जो नदी की शुद्धता को प्रदर्शित करता है। BIS के अनुसार जलीय जीवन के लिए उपयुक्त आविलता 5 है। BIS के अनुसार क्षिप्रा नदी किसी भी स्थान पर जलीय जीवन के अनुकूल नहीं है।

विलीन ऑक्सीजन एवं जैविक ऑक्सीजन मांग (DO & BOD) :- BIS तथा WHO के मापक के आधार पर क्षिप्रा का जल किसी भी स्थान पर पीने योग्य नहीं पाया गया। DO की सभी गणना 1.17 से 8.17 के मध्य पाई गई। इसी प्रकार BOD की सभी गणना 15.7 से 140.2 के मध्य पाई गई (तालिका 2)।

क्षारीयता (Alkalinity) :- क्षारीयता के आधार पर क्षिप्रा का पानी WHO तथा BIS के मानकों से नीचे है। विभिन्न स्थानों पर ज्ञात की गई क्षारीयता तालिका 2 में प्रदर्शित है।

क्लोराइड :- सभी 11 स्थलों पर क्लोराइड WHO तथा BIS मानक से कम पाए गए (तालिका 2)।

नाइट्रेट :- क्षिप्रा जल में नाइट्रेट की उपस्थिति हर स्थान पर BIS मानक से कम पाई गई (तालिका 2)। जिन स्थानों पर अत्यधिक घरेलू अपशिष्ट या मलमूत्र जल में समाहित होता है वहीं पर नाइट्रेट की मात्रा अधिक रहती है।

फॉस्फेट :- कुछ स्थानों पर फॉस्फेट की मात्रा WHO तथा BIS से अधिक पाई गई है। फॉस्फोरस, प्लवक (Plankton) एवं जलीय पौधों के विकास को उत्प्रेरित करता है जो कि जलमार्ग में बाधा उत्पन्न

करते हैं और अंततः सुपोषीकरण का कारण बनते हैं। फॉस्फेट की अधिकता से पाचन संबंधी समस्याएँ तथा विषाक्तता उत्पन्न होती है। फॉस्फेट की मात्रा सर्वाधिक (3.2) Site 6 पर पाई गई तथा सबसे कम (0.82) site 1 पर पाई गई (तालिका 2)।

कुल कठोरता (Total Hardness) :- इस मापक पर सभी स्थानों का जल WHO तथा BIS के द्वारा निर्धारित मापक से नीचे पाया गया। अधिकतम कठोरता (87.24) site 4 पर तथा न्यूनतम (52.0) site 10 पर पाई गई है (तालिका 2)। कार्बोनेट आयन प्रभावी रूप से जल की कठोरता का परिकलन करते हैं।

संपूर्ण घुलनशील ठोस (Total Dissolved Solid) :- सर्वेक्षण के दौरान सबसे अधिक TDS (1200 मि.ग्रा./ली.) site 4 पर पाया गया तथा सबसे कम (310 मि.ग्रा./ली.) site 10 पर पाया गया (तालिका 2)।

जीवाण्विक अवलोकन एवं परिणाम

सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति पानी की शुद्धता की पहचान है। प्रदूषण के मापन के लिए सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति का ज्ञान उतना आवश्यक है जितना कि रासायनिक तत्वों का।

इस जल स्वास्थ्य परीक्षण अध्ययन में चार प्रकार के जीवाणुओं का मान सभी 11 स्थलों पर ज्ञात किया गया है, ये चार जीवाणु हैं :-

कुल कोलीफॉर्म (Total Coliform) :- कोलीफॉर्म अध्ययन को जल की गुणवत्ता के आकलन हेतु महत्वपूर्ण जैविक सूचक माना जाता है। जल में E.coli बैक्टीरिया की उपस्थिति यह दर्शाती है कि जल सीधे मल पदार्थों से संदूषित है एवं रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति का संकेतक है। इसके अनुसार सर्वाधिक प्रदूषित site 6 पाई गई, जिसमें कोलीफार्म 2000 MPN/ 100 ml उपस्थित थे (तालिका 3)।

फीकल कोलीफॉर्म :- यह जीवाणु जल प्रदूषण को मापने हेतु उचित मापदंड का कार्य करते हैं क्योंकि मनुष्य मल में 96.4 प्रतिशत जीव कोलीफॉर्म समूह के होते हैं। अतः इस समूह का जल में पाया जाना नियततापी (Warm Blooded animals) जीवों के मल से उत्पन्न प्रदूषण को दर्शाता है। इसके मापक के अनुसार सर्वाधिक प्रदूषित site 5 पाई गई, जिसमें 2000 MPN/ 100 ml उपस्थित थे (तालिका 3)।

फीकल स्ट्रेप्टोकोकाई :- इस जीवाणु की सर्वाधिक संख्या site 6 पर पाई गई तथा न्यूनतम संख्या site 1 पर (तालिका 3)।

हेटरोट्रोफिक प्लेट काउन्ट :- हेटरोट्रोफिक प्लेट गणना के द्वारा जल में उपस्थित जीवाणुओं की संख्या ज्ञात होती है। इसके अनुसार सर्वाधिक प्रदूषित site 6 थी जिसमें 1200 MPN/ 100 ml पाए गए (तालिका 3)।

BIS के अनुसार सभी चारों जीवाणुओं की संख्या 50 से कम होनी चाहिए तथा सभी स्थानों पर इनकी मात्रा बहुत अधिक पाई गई जो पानी के प्रदूषण को दर्शाती है। उपरोक्त जीवाण्विक अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि नदी के जल में BIS तथा WHO के मानकों से कहीं ज्यादा मात्रा है, जो कि जल के प्रदूषण को प्रमाणित करता है।

तालिका:-1 क्षिप्रा नदी के प्रतिदर्श संग्रहण स्थलों की भौगोलिक स्थिति एवं उनकी विशेषताएँ

क्र.	प्रतिदर्श संग्रहण स्थल (Site)	उद्गम से दूरी (किमी)	ऊँचाई (मी.)	अक्षांतर	देशांतर	प्रदूषण के स्रोत
1	खाकरी बाड़ी	0	588	22° 35'N	75° 20' E	घरेलू अपशिष्ट
2	केवडेश्वर कुंड	200	588	22° 35' N	75° 20' E	घरेलू अपशिष्ट
3	क्षिप्रा ग्राम देवास	95	453	22° 58' N	78° 06' E	घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट
4	त्रिवेणीघाट	115	453	23° 09' N	75° 43' E	घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट
5	गउघाट	124	453	23° 09' N	75° 43' E	घरेलू अपशिष्ट
6	रामघाट	130	453	23° 09' N	75° 43' E	घरेलू अपशिष्ट
7	चक्रतीर्थ (श्मशानघाट)	132	453	23° 09' N	75° 43' E	घरेलू एवं अन्य अपशिष्ट
8	मंगलनाथ	140	453	23° 09' N	75° 43' E	घरेलू एवं अन्य अपशिष्ट
9	सिद्धवट	142	453	23° 09' N	75° 43' E	घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट
10	महिदपुर	150	450	23° 29' N	75° 42' E	घरेलू एवं अन्य अपशिष्ट
11	आलोट	190	451	23° 77' N	75° 55' E	घरेलू अपशिष्ट

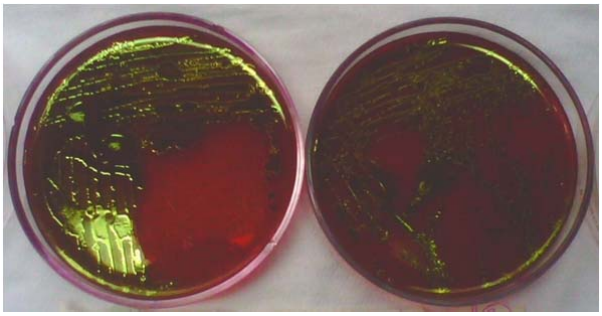

चित्र 8 : EMB Plate पर *ई.कोलाई* जीवाणु

तालिका - 2 : वैज्ञानिक मापदंडों के आधार पर एकत्रित जल नमूनों के भौतिक रासायनिक गुणों (Physicochemical characteristics of water samples) का परिमापन

Param-eters	pH	Temperature (C^o)	Conductivity Mho/m	Turbidity (NTU)	DO mg/L	BOD mg/L	Alkalinity mg/L	Chloride mg/L	Nitrate mg/L	Phosphate mg/L	Total Hardness mg/L	Total Dissolvved Solids mg/L
Site 1	6.67	23	192	70	1.17	17.64	20.40	24.4	1.42	0.82	78	710
Site 2	6.70	23.4	170	110	1.20	15.7	20.81	26.1	1.87	0.96	82.18	728
Site 3	6.84	24	1156	117	8.17	38.4	40.00	28.21	2.32	1.02	84.43	802
Site 4	7.14	24	11680	170	5.42	64.68	56.25	42.10	4.17	2.14	87.24	1200
Site 5	6.64	25	293.7	150	6.14	68.41	47.40	40.13	3.42	2.18	83.40	780
Site 6	6.98	24.6	1975	175	3.86	65.86	54.8	46.27	4.32	3.2	87.42	1090
Site 7	6.89	24.3	10970	181	3.91	140.12	58.71	48.4	4.87	2.78	85.61	1010
Site 8	7.20	24	7200	172	6.48	60.24	59.68	36.4	2.94	2.40	72.30	611
Site 9	7.50	25.1	8950	185	6.20	62.37	60.4	37.8	4.17	1.87	78.52	702
Site10	6.80	27	7115	115	7.17	45.40	43.20	26.4	1.16	1.4	52.0	310
Site11	7.20	27.4	780	124	7.23	43.85	45.69	28.2	1.02	1.18	54.21	330
WHO Standards	6.5-8.5	-----	-----	----	0-20	0-6	200-600	200-600	---	2	1000	------
BIS Standards	6.5-8.5	-----	1500	5	6	0-3	300	250	45	0.1	300	300

Site 1: खाकरी बाड़ी, Site 2: केवडेश्वर कुंड, Site 3: क्षिप्रा ग्राम देवास, Site 4: त्रिवेणी घाट, Site 5: गउघाट, Site 6: रामघाट, Site 7: चक्रतीर्थ (श्मशान घाट), Site 8: मंगलनाथ, Site 9: सिद्धवट, Site 10: महिदपुर, Site 11: आलोट

तालिका 3 :- वैज्ञानिक मापदंडों के आधार पर एकत्रित जल प्रतिदर्शों के जीवाण्विक गुणों (Bacteriological characteristics of water samples) का परिमापन

प्रतिदर्श संग्रहण स्थल (Site)	Parameters			
	E. coli MPN/100 ml	Fecal Streptococci MPN/100 ml	Fecal coliforms MPN/100 ml	Heterotrophic Cfu/100 ml
Site 1	300	100	250	100
Site 2	450	150	200	150
Site 3	500	380	250	300
Site 4	450	400	500	350
Site 5	1500	850	2000	1050
Site 6	2000	1500	1700	1200
Site 7	750	500	450	300
Site 8	500	400	320	200
Site 9	1000	750	800	500
Site 10	1300	1000	1050	800
Site 11	1500	1050	1100	920
WHO	--------	--------	--------	--------
BIS	< 50	< 50	< 50	< 50

Site 1: खाकरी बाड़ी, Site 2: केवडेश्वर कुंड, Site 3: क्षिप्रा गाँव देवास, Site 4: त्रिवेणीघाट, Site 5: गउघाट, Site 6: रामघाट, Site 7: चक्रतीर्थ (श्मशान घाट), Site 8: मंगलनाथ, Site 9: सिद्धवट, Site 10: महिदपुर, Site 11: आलोट

निष्कर्ष

क्षिप्रा जल का pH सभी ग्यारह स्थानों पर मानकों के अनुसार पाया गया। किंतु कुछ स्थान जैसे site 8 तथा 9 पर pH क्षारीय पाया गया। जिसका संभावित कारण संदूषित औद्योगिक बहि:स्राव का नदी जल में मिश्रण हो सकता है।

चालकता (Conductivity) जल में घुलित ठोस का तीव्र एवं सुदृढ़ मापक है। क्षिप्रा जल की उच्च चालकता आँकड़ों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नदी का औद्योगिक प्रदूषण नगरीय जल में मिश्रित हो रहा है जो कि जल की चालकता में वृद्धि कर रहा है।

अध्ययन के दौरान पानी का धुंधलापन (Turbidity) प्रत्येक स्थान पर अधिक पाया गया, जो सर्वाधिक site 9 पर था। धुंधलापन, तलछट बारिश, शहरी क्षेत्रों से बहकर आने वाले जल-प्रवाह, उत्खनन उद्योगों से निकले अपशिष्टों तथा प्लवक (Plankton) की अत्यधिक वृद्धि के कारण हो सकता है।

विलीन ऑक्सीजन (Dissolved Oxygen) की मात्रा में बहुत अधिक विभिन्नता पाई गई (1.17-8.17 मि.ग्रा./ली.)। यह दर्शाती है कि पर्यावरणीय/मौसमी परिवर्तन, नदी के जल में पोषक तत्वों के स्तर को प्रभावित करते हैं।

फॉस्फेट (Phosphate) की मात्रा कुछ स्थानों को छोड़कर जैसे Site 6 एवं 7 को छोड़कर अन्य स्थलों पर वांछित सीमा में पाई गई (2 मिली./ली.)। BIS के अनुसार सभी स्थानों पर फॉस्फेट की मात्रा बहुत अधिक पाई गई, जो कि नदी के किनारे औद्योगिक प्रदूषण कृषि से निकले उर्वरक, खाद तथा चट्टानों की कटाई के कारण हो सकती है। जल में नाइट्रेट की मात्रा सभी परीक्षण स्थलों पर वांछित सीमा के भीतर पाई गई।

प्रस्तुत अध्ययन के दौरान कुल कठोरता सभी स्थानों पर मापकों के अनुरूप पाई गई, जो कि पानी में केल्सियम तथा मैग्नीशियम की मात्रा को दर्शाता है।

फीकल कोलीफॉर्म (Faecal Coliform) का मान स्ट्रेप्टोकोकाई (Streptococci) की अतिरिक्त संख्या संभवत: प्रदूषण स्रोतों के विशिष्ट सूचक हो सकते हैं क्योंकि कुछ फीकल स्ट्रेप्टोकोकाई पोषी विशिष्ट होते हैं। फीकल कोलीफॉर्म/स्ट्रेप्टोकोकाई अनुपात संभावित प्रदूषण स्रोत विषयक जानकारी प्रदान करता है। प्रस्तुत अध्ययन में सभी जीवाणुओं की संख्या अत्यधिक पाई गई, जो कि जल के मल पदार्थों से संदूषण को प्रदर्शित करता है।

चूंकि क्षिप्रा जल, जलीय वातावरण में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवों से युक्त है तथा इनकी अत्यधिक संख्या इस ओर संकेत करती है कि इन जीवाणुओं की उपस्थिति नदी के पानी को आने वाले समय में और अधिक प्रभावित कर सकती है।

वर्तमान अध्ययन के कुछ स्थानों (Site 7, 8 एवं 9) पर जल कुंभी का आधिक्य दूसरे जलीय जीवन को प्रभावित कर रहा है, जो कि अपने आप में एक विचारणीय बिंदु है।

धार्मिक भावनाओं को ध्यान में रखते हुए नदी के जल का समुचित उपचार बहुत आवश्यक है। क्योंकि वर्तमान अध्ययन के कई स्थानों पर प्रदूषण का प्रमुख कारण धार्मिक आयोजनों के द्वारा होने वाले स्वाभाविक कार्य हैं, जिन्हें रोका जाना लगभग असंभव है किंतु जनमानस में जागरूकता से इसे कम किया जा सकता है।

सुझाव एवं प्रस्तावित कार्य योजनाएँ

- राष्ट्रीय स्तर पर क्षिप्रा नदी को सुरक्षित रखने के प्रयास होने चाहिए क्योंकि यह हमारे स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं जीवन की गुणवत्ता के लिए एक मूल्यवान धरोहर है।
- प्राकृतिक एवं मानवीय क्रियाकलापों के द्वारा जल के भौतिक एवं रासायनिक मापक सदैव प्रभावित होते हैं। अतः नदी के पारिस्थितिक तंत्र की नियमित निगरानी आवश्यक है।
- प्राकृतिक पर्यावास की वृद्धि तथा जैव-विविधता के संरक्षण हेतु पर्यावरणीय शिक्षा की व्यापक नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए।
- क्षिप्रा जल में अधिक मात्रा में रोगजनक जीवाणुओं की उपस्थिति पानी की गुणवत्ता में गिरावट का संकेत देती है। अतः जल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए इसमें मल एवं अपशिष्ट प्रवाह को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।
- कृषि में उपयोगी उर्वरक, खाद एवं अन्य नाइट्रोजन तथा फॉस्फेट स्रोतों का व्यवस्थित प्रबंध किया जाना चाहिए जिससे पानी में मिलने वाले या पानी के आवंटन में मिलने वाले संदूषकों को कम किया जा सके।
- नदी जल से एकत्रित नमूनों के आँकड़ों की जानकारी को पूर्व विकसित परिभाषित संकेतक, मानकों, सहनशीलता की सीमा, आवृत्ति के साथ जल-संसाधन, निगरानी प्रणाली के रूप में लागू किया जाना चाहिए तथा इसे जन-सामान्य तक पहुँचाया जाना चाहिए।

- क्षिप्रा जल में बहु-औषधि प्रतिरोधी हानिकारक जीवाणुओं की उपस्थिति पानी में पाए जाने वाले सभी प्रकार के जीवों एवं मुख्यतः मानव के लिए हानिकारक ही नहीं अपितु घातक भी है। हानिकारक सूक्ष्म जीवों की आनुवंशिक विविधता का अध्ययन, जीव विकास, वर्गीकरण, रोगजनक क्षमता तथा जन-स्वास्थ्य के क्षेत्र में बनाई जाने वाली नवीन एवं प्राचीन योजनाओं के नवीनीकरण में सहायक होगा। अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों के परिणाम एवं संपूर्ण प्रतिवेदन को चिकित्सा, रोग निदान, टीकाकरण आदि क्षेत्रों में भी तर्कसंगत रूप से अमल में लाया जा सकता है।

संदर्भ

American Public Health Association (APHA-AWWAWPCH), 1998, Standard Methods for the Examination of Water and Waste Water.

जलवायु परिवर्तन - कृषकों की समस्याएँ और उनका समाधान

(जिला अशोकनगर (मध्य प्रदेश), भारत के संदर्भ में)

डॉ. रेनू राजेश
वनस्पतिविज्ञान विभाग
शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अशोकनगर - 473331 (म.प्र.)
ई-मेल : renuswami_askn@yahoo.com

कृषि अल्पकालिक मौसम परिवर्तनों के साथ-साथ दिर्घकालिक जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील है। इससे फसल की उपज प्रभावित होती है और इसलिए खाद्य सुरक्षा भी।। कृषि पर आर्थिक प्रभाव का देश की अर्थव्यवस्था और व्यापार के पैटर्न पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता हैं। जिसमें कृषि लाभ, बाजार मूल्य, मांग, आपूर्ति और व्यापार शामिल हैं। भारतीय कृषि आज भी मौसम पर निर्भर है, विशेष रूप से बारिश पर। स्थान और समय के संबंध में वर्षा का पैटर्न काफी बदल गया है। यह इतनी अनिश्चित हो गई है कि सभी भविष्यवाणियाँ गलत साबित हो जाती हैं। जैसे-जैसे क्रषक की लाभप्रदता कम हो रही है,वे या तो इस धंधे से दूर जा रहे हैं या अपने जीवन का अंत करने का कठोर निर्णय ले रहें हैं। इन दोनों स्थितियों को नहीं अपनाया जाना चाहिए। जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए उसके समाधान की पद्धतियों का पता लगाना होगा। कृषकों को अपने क्षेत्र में तकनीकों और फसलों के प्रकार को विविधता के साथ प्रयोग करने की आवश्यकता है। साथ ही सरकार को कृषकों और कृषि के धंधे का समर्थन करने के लिए नीतियाँ बनानी होंगी।

मध्य प्रदेश भारत के मध्य भाग में स्थित है। इसमें मौसम संबंधी दो उपविभाग शामिल हैं, पूर्व मध्य प्रदेश और पश्चिम मध्य प्रदेश। अशोकनगर पश्चिम उपखंड में मध्यप्रदेश के 51 जिलों में से एक है। तथा पहले पछार के रूप में जाना जाता था, मध्यप्रदेश के चंबल क्षेत्र के दक्षिणी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है जिसे आजीविका क्षेत्र विश्लेषण के तहत प्रगतिशील कृषि क्षेत्र माना जाता है। यह सिंध और बेतवा नदियों के बीच समुद्र तल से 1640 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। भौगोलिक रूप से जिला अक्षांश $24^{o}34^{6}$,N और देशांतर $77^{o}\ 43^{6}$,E के बीच स्थित है। इसकी कृषि स्थलाकृति (topography) है। अशोकनगर को 4 उप-प्रभागों और 7 तहसीलों (अशोकनगर,चंदेरी, मुंगौली, ईसागढ़, शादोरा, नायसराय और पिपराई) में विभाजित किया गया है। जिले में कुल गाँव 900 हैं और 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 844979 (444651 पुरुष और 400328 महिलाएँ) हैं। अशोकनगर योजना आयोग और एनएआरपी (कृषि जलवायु क्षेत्र) के अनुसार ग्रिड क्षेत्र है।जिले में कृषि विज्ञान केंद्र स्थित है।

वर्ष को तीन सत्रों में विभाजित किया गया है- ग्रीष्म (मध्य मार्च से मध्य जून), वर्षा (मध्य जून से सितंबर) और सर्दियाँ (अक्तूबर से मध्य मार्च)। गर्मियों के दौरान तापमान 35° C से 46° C तक रहता है। वर्षा ज्यादातर दक्षिण पश्चिम मानसून के कारण होती है। वर्षा के मौसम के दौरान औसत दैनिक तापमान लगभग 30° C रहता है। सर्दियों में औसत दैनिक तापमान 15°C से 20° C तक होता है। रात का तापमान 5° C तक गिर सकता है। समसामयिक शीतकालीन वर्षा यानी मावठ शुरुआती गर्मियों की गेहूँ और चने की फसलों के लिए महत्वपूर्ण है। अशोकनगर में वार्षिक वर्षा औसतन 889 मिमी और सामान्य बारिश के दिन अड़तीस हैं। खेती योग्य क्षेत्र 307.1 (000ha) है और खेती योग्य बंजर भूमि 25.4 (000ha) है। जिले में वर्षा आधारित क्षेत्र 191.5 (000ha) है। खरीफ मौसम में सोयाबीन प्रमुख फसल है और रबी मौसम में गेहूँ और चना दो प्रमुख सिंचित फसलें हैं। जिला सूखे, गर्मी की लहर और ठंड से प्रभावित होता है। अशोकनगर अपनी अनाज मंडी और शरबती गेहूँ के लिए जाना जाता है। वर्षा पर निर्भर कृषि क्षेत्रों को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - शुष्क भूमि (एक वर्ष में 750 मिमी से कम वर्षा) और व्रषा आधारित क्षेत्र (एक वर्ष में 750 मिमी से अधिक वर्षा प्राप्त करता)। अशोकनगर वर्षा-सिंचित क्षेत्र के अंतर्गत आता है। एक वर्ष में औसत वर्षा 889 मिमी है। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों से अशोकनगर में वर्षा के पैटर्न और वर्षा की मात्रा में भारी बदलाव आया है। इसके परिणामस्वरूप कृषि गतिविधियों, कृषक की सोच और स्थितियों में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। NP इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमने अनियमित वर्षा और कृषि के बीच संबंध की समस्या के बारे में जानने का फैसला किया।

उद्देश्य

वर्तमान कार्य का उद्देश्य है:

- जिला अशोकनगर में पिछले तीन वर्षों में गेहूँ और सोयाबीन के उत्पादन पद्धति और बाजार मूल्य पद्धति का अध्ययन करने के लिए।
- इस संबंध में जिले के अनाज व्यवसायियों के विचारों का अध्ययन करना।
- जिले में कृषि से संबंधित सरकारी अधिकारियों के विचारों का अध्ययन करना।
- कृषि के संबंध में सरकारी प्रयासों की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।
- कृषक की बेहतरी के लिए भविष्य की योजनाओं को तैयार करना।

कार्यप्रणाली

वर्तमान अध्ययन में प्रयोग की जाने वाली कार्यप्रणाली में शामिल हैं :

- कृषक के साथ, अनाज व्यवसायियों के साथ और सरकारी अधिकारियों के साथ बातचीत।
- वर्षा डेटा, गेहूँ और सोयाबीन उत्पादन डेटा और मूल्य डेटा का संग्रह ।

अवलोकन

कार्यप्रणाली के अनुसार डेटा एकत्र कर उसका विश्लेषण किया गया। जिला अशोकनगर की सभी सात तहसीलों का प्रतिनिधित्व करने वाले कुल एक सौ कृषक, एक सौ अनाज व्यवसायियों और एक सौ सरकारी अधिकारियों को हमने नमूने के रूप में चुना। प्रश्नावली के अनुसार कृषक, अनाज व्यवसायियों और अधिकारियों का साक्षात्कार लिया गया। कुछ खेतों का भी दौरा किया गया।

वर्ष 2012 से 2016 तक जिला अशोकनगर का वर्षा का डाटा (स्त्रोत: CRIS, हाइड्रोमेट डिवीजन, भारत मौसम विज्ञान विभाग, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, नई दिल्ली) तालिका-1 में तालिकाबद्ध और ग्राफ-1 ए और 1 बी में चित्रमय रूप में दिया गया गया है।

तालिका 1- मिलीमीटर में जिला वर्षा (R / F) (जिला अशोकनगर)

(१) नीचे दिखाए गए जिले के अंतर्गत आने वाले स्टेशनों की वर्षा का औसत है।

(२) % प्रस्थान जिले के लिए वर्षा की लंबी अवधि के औसत से वर्षा का प्रस्थान हैं।

(3) रिक्त स्थान डेटा की गैर-उपलब्धता दिखाते हैं

वर्ष	जनवरी		फरवरी		मार्च		अप्रैल		मई		जून		जुलाई		अगस्त		सितंबर		अक्तूबर		नवंबर		दिसंबर	
	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP	R/F	% DEP
2012	10.5	46	0.0	-100	0.0	-100	0.0	-100	1.8	0	35.4	-50	346.1	10	318.0	1	110.5	-33	0.0	-100	0.0	-100	0.0	-100
2013	0.0	-100	71.5	1000	12.5	317	0.0	-100	0.0	-100	230.8	224	583.4	85	399.0	27	54.0	-67	118.3	371	0.0	-100	0.0	-100
2014	32.6	353	76.3	1073	1.5	-50	0.0	-100	0.0	-100	25.0	-65	250.0	-21	303.8	-3	115.9	-29	0.0	-100	0.0	-100	46.1	291
2015	41.0	469	21.0	223	44.5	1383	29.8	4150	0.0	-100	68.8	-3	371.5	18	279.0	-11	20.5	-88	20.0	-20	0.0	-100	0.5	-96
2016	11.3	56	1.8	-73	9.8	225	0.0	-100	7.3	303	83.8	18	515.8	63	324.5	3	50.0	-70	60.0	139	0.0	-100	0.0	-100

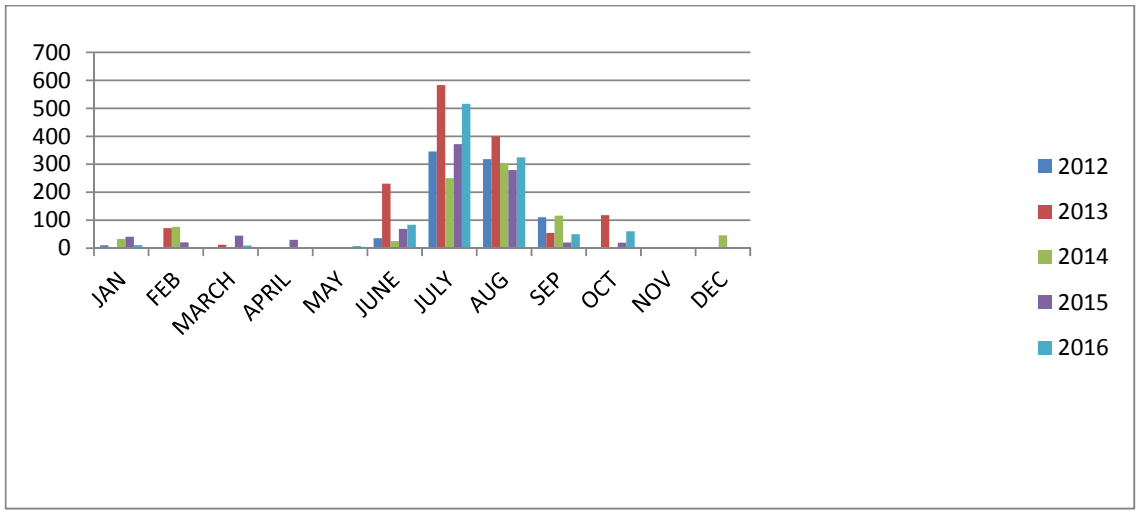

ग्राफ 1 ए : वर्ष 2012 से 2016 तक जिला अशोकनगर की औसत वर्षा (मिलीमीटर में)

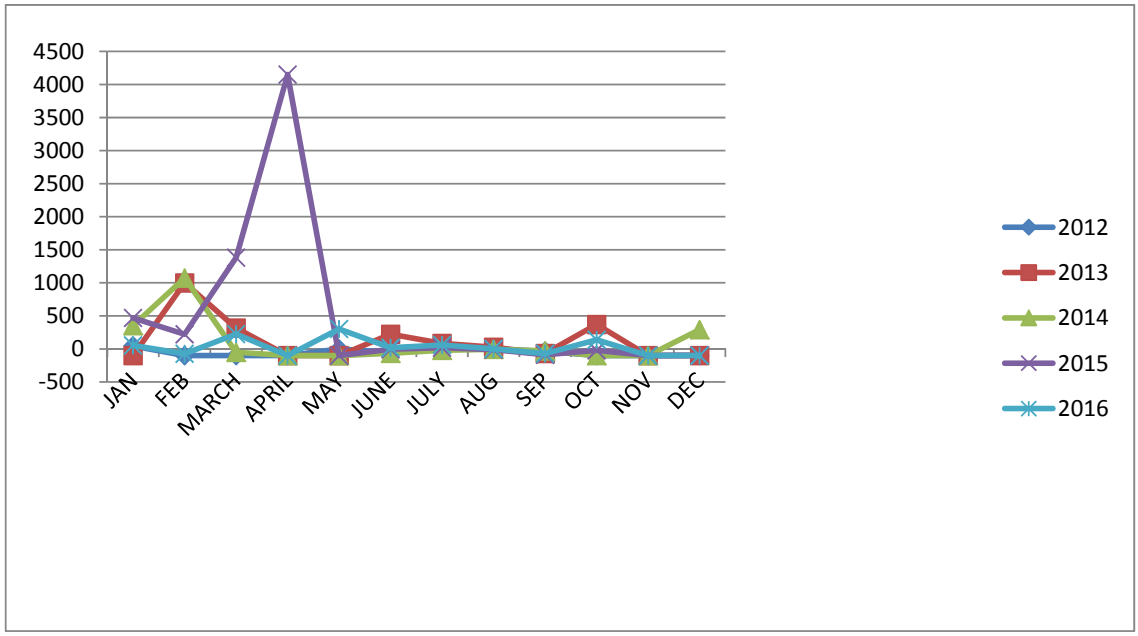

ग्राफ 1 बी :वर्ष -2012 से 2016 तक जिला अशोकनगर के दीर्घ अवधि के औसत आंकड़ों से वर्षा का प्रस्थान (% में)

कृषि उत्पाद (गेहूँ ओर सोयाबीन) संबंधित डाटा (स्रोत AGMARKNET, DMI, कृषि और कृषक कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली) भी तालिका-2 एवं ग्राफ-2 और तालिका- 3 एवं ग्राफ – 3 में सारणीबद्ध और चित्रमय रुप में (क्रमशः गेहूँ और सोयाबीन के लिए) दिखाया गया है।

तालिका -2 और ग्राफ- 2 : जिला अशोकनगर में गेहूँ के आगमन के लिए मासिक विश्लेषण (मीट्रिक टन)

वर्ष/मास	फ़रवरी	मार्च	अप्रैल	मई
2015	2468	1374	80128	67662
2016	1917	7432	95612	97014
2017	3913	15320	68265	39080

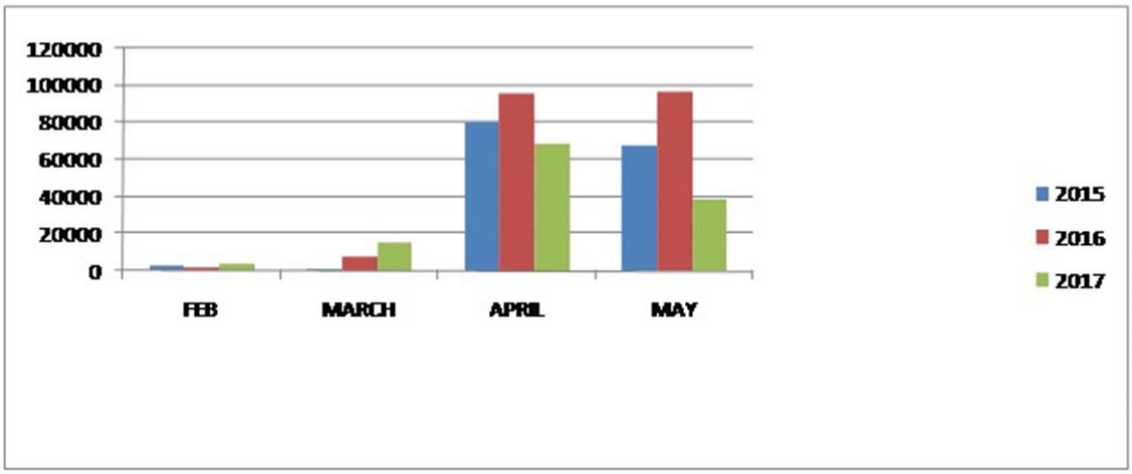

तालिका -3 और ग्राफ -3 : जिला अशोकनगर में सोयाबीन आगमन के लिए मासिक विश्लेषण (मीट्रिक टन)

वर्ष/मास	अगस्त	सितंबर	अक्तूबर	नवंबर
2015	1461	977	19998	24592
2016	1956	3255	18660	10779

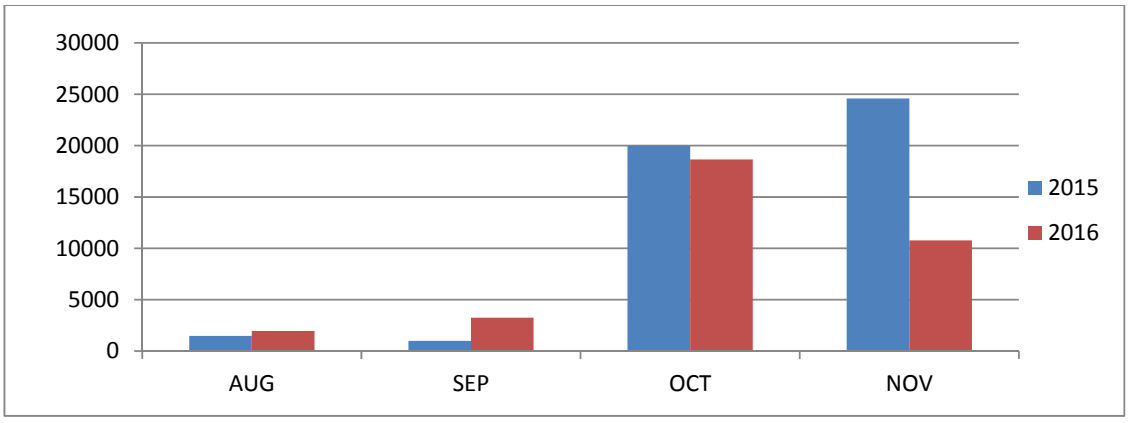

वर्षा आधारित क्षेत्र और सिंचित क्षेत्र तालिका-4 और ग्राफ 4 में दिखाए गए हैं।

तालिका -4 और ग्राफ -4 : रेनफेड क्षेत्र और सिंचित क्षेत्र जिला अशोकनगर में (लाख हैक्टर में)

वर्ष	सिंचित क्षेत्र (लाख हैक्टर में)	रेनफेड क्षेत्र (लाख हैक्टर में)
2015-16	1.88	2.99
2014-15	1.96	3.04
2013-14	1.85	3.11
2012-13	1.68	3.11

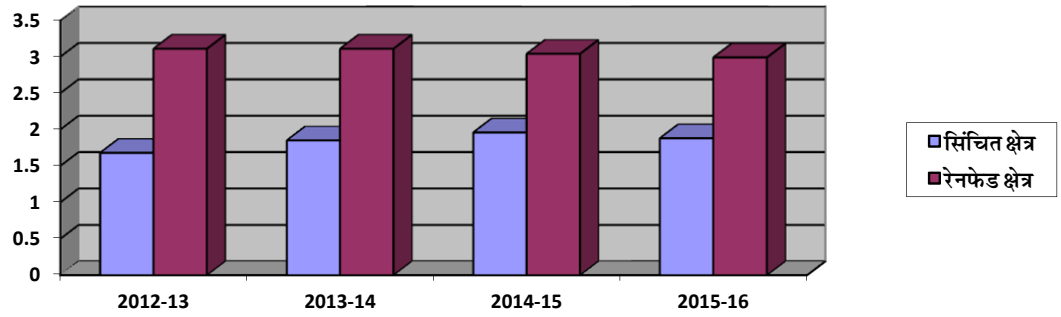

परिणाम और चर्चा

वर्ष में मात्रा और समय के अनुसार वर्षा पूरी तरह से अप्रत्याशित हो गई है और इसलिए गेहूँ और सोयाबीन की उपज भी। वर्ष 2015 में सर्दियों में वर्षा के कारण गेहूँ उत्पादन में वृद्धि हुई। 2016 में बारिश के मौसम में भारी बारिश हुई और सोयाबीन के उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ा। कृषक दुविधा में पड़ जाते हैं और बहुत से लोग इस पैतृक व्यवसाय को छोड़ना चाहते हैं। उनकी पीड़ा किसी भी तरह इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए है। NP अनाज व्यवसायी क्या सोचते हैं और विभिन्न स्तरों के सरकारी अधिकारियों का रवैया क्या है, इस कार्य योजना का मुख्य आकर्षण था।

अनाज व्यवसायियों के विचार:

जिन व्यवसायियों के साथ मेरी चर्चा हुई, वे 25 वर्ष से 65 वर्ष की आयु के थे। उनकी शिक्षा विभिन्न विषय – क्षेत्रों (विज्ञान, कला, वाणिज्य, कानून और यहां तक कि प्रबंधन) में है। शिक्षा 8 वीं पास से लेकर स्नातकोत्तर और यहां तक कि व्यवसायिक डिग्रियाँ भी है।

उनका अनुभव 5 वर्ष से लेकर 40 वर्ष साल के बीच का है।

इनमें से अधिकांश का व्यवसाय सभी प्रकार के अनाज और दालों (चना, सोयाबीन, गेहूँ, जौ, मक्का, चावल, मसूर, उड़द, तुअर, मूंगफली, मूंग आदि) से संबंधित हैं।

उनमें से ज्यादातर व्यवसायी कृषकों से उपज खरीदते हैं और मंडी में बिक्री करते हैं। कुछ उपज जिले के बाहर राज्य में या राज्य के बाहर सीधे भेजते हैं। यह व्यवसाय बिना रुके वर्ष भर चलता है।

जब वजन संतुलन के प्रकार के बारे में व्यवसायियों से बात की जाती है, तो कृषक और व्यापारी अलग-अलग राय रखते हैं। अनाज व्यवसायियों के लिए इलेक्ट्रॉनिक तुला (तराजू) अच्छी है क्योंकि यह तेजी से काम करती है लेकिन अधिकांश कृषक तराजू के पुराने संस्करण के पक्ष में हैं।

कृषक को अनाज व्यवसायियों द्वारा पीने के पानी, रहने के लिए जगह और उनकी उपज की सुरक्षा और खरीदी गई उपज का स्थल भुगतान जैसी बुनियादी सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। परंतु इस संबंध में कृषकों का अनुभव अच्छा नहीं है। अधिकतर अनाज व्यवसायी कृषक के साथ बीज, तकनीक, उर्वरक और कीटनाशकों के बारे में चर्चा करते हैं और सुझाव देते हैं।

कृषि उत्पादों में व्यवसायी भी अनियमित बारिश, उच्च तापमान और अन्य जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से ग्रस्त है।

सरकारी नीतियों के बारे में लगभग 65% व्यापारी जागरूक हैं। उन्हें मीडिया / प्रेस या उन अधिकारियों से जानकारी मिली जिनसे वे मिले थे। कई व्यवसायियों को इस संबंध में बात करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

व्यवसायियों के अनुसार कृषक कार्ड नीति और भावांतर योजना अच्छी है। लगभग 75% व्यवसायियों की राय है कि सरकार की नीतियां कृषक के लिए अच्छी और मददगार हैं। हालाँकि, लगभग 18% व्यवसायियों ने कहा कि कृषक को रु 10-20/- तक का हानि भरपाई भुगतान केवल छलावा है।

व्यवसायियों को भी उनके लिए कोई नीति नहीं होने की शिकायत है। यदि हानि होती है तो व्यवसायी को खुद वहन करनी पड़ती है। बड़ी हानि से बचने के लिए उन्हें कभी-कभी उपज की बिक्री समय से पूर्व करनी पड़ती है।

व्यवसायियों को पर्यावरण संरक्षण के बारे में भी जानकारी है।

अधिकारी जब कृषि उपज मंडी जाते हैं, तो वे कृषक के साथ बातचीत करते हैं और उनके लिए शिविर भी आयोजित करते हैं। मोबाइल फोन, रेडियो, टीवी और कंप्यूटर भी ऐसे साधन हैं जिनके माध्यम से कृषक और अनाज व्यवसायी स्वयं को सरकारी नीतियों के बारे में जागरूक रख सकते हैं ।

सरकारी अधिकारी/ प्रतिनिधि के विचार:

सरकारी अधिकारी / प्रतिनिधि जिनके साथ मेरी चर्चा थी, उनकी आयु 25 वर्ष से 56 वर्ष की थी। उनका अनुभव उनके संबंधित क्षेत्र / विभाग में 1-36 वर्ष है। वे किसी न किसी तरह से कृषि क्षेत्र से संबंधित सभी विभागों से संबंधित हैं, जैसे राजस्व, किसान कृषक विकास कल्याण, कृषि मंडी, एमपी राज्य कृषि निगम लिमिटेड, कृषि विभाग, वन विभाग, बागवानी विभाग, मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएँ आदि। जो पद हैं, उनमें पटवारी, पंच, सरपंच, जिला प्रबधंक, वरिष्ठ कृषि वैज्ञानिक, जिला सहकारी विकास समिति अधिकारी, आदिम जाति कल्याण अधकारी, पंचायत सचिव, पंचायत समन्वयक अधकारी आदि प्रमुख हैं।

ये सभी अधिकारी / प्रतिनिधि कृषि / कृषकों से संबंधित विभिन्न कार्यों / कर्तव्यों के लिए ज़िम्मेदार हैं, जैसे नामांतरण, फसल बीमा, फसलों से संबंधित आंकड़ों का रखरखाव, कृषि योजनाओं के बारे में कृषक को जानकारी, खेतों की मिट्टी का परीक्षण, कटाव को रोकने के लिए पेड़ लगाना आदि, कृषक को बीज, कीटनाशक, उर्वरक प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रयोजनों के लिए खेत की खसरा-खतौनी प्रदान करना ऋण पुस्तिका और केसीसी, अनुसूचित जाति/जनजाति के कृषक को अनुदान और सुविधाएं प्रदान करना, खेत-तालाब, विवादों का निपटारा, उत्पादन का सर्वेक्षण और हानि, प्राकृतिक आपदाओं के कारण हानि की स्थिति में क्षतिपूर्ति प्रदान करना, कृषक को खेती की अग्रिम तकनीकों से परिचित कराना। वन विभाग के अधिकारी विशेष रूप से 'वनोपज' से संबंधित सूचनाओं के लिए जिम्मेदार हैं जैसे कि तेंदूपत्ता, गोंद, लाख, शहद, आंवला आदि। कटाई के बाद प्रबंधन, (जो भी उपज हो उसकी उचित तरीके से बिक्री हो ताकि सही कीमत मिल सके) भी इन प्रतिनिधियों की जिम्मेदारी हैं।ये सभी अधिकारी-प्रतिनिधि सरकारी नीतियों के उचित क्रियांवयन के लिए जिम्मेदार हैं।

राजस्व विभाग के सरकारी अधिकारी, कृषक के संपर्क में रहने वाले प्रतिनिधियों जैसे पटवारी, सरपंच, पंचायत सचिवों के माध्यम से काम करते हैं। प्रतिकूल जलवायु के कारण फसल के हानि के मामले में या सरकार की विभिन्न योजनाओं का लाभ दिलवाने के लिए पटवारी पहले व्यक्ति हैं। वन से संबंधित मामलों में वन बीट-गार्ड महत्वपूर्ण है। किसी भी आवेदन/रिपोर्ट को सत्यापित कर तहसीलदार को भेज दिया जाता है और फिर अंतिम कार्रवाई के लिए आवेदन/रिपोर्ट राजस्व विभाग में पहुंच जाती है। फसल हानि के मामले में,आरबीसी 6(4) के अनुसार कार्रवाई की जाती है।

कृषकों को जानकारी देने के लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग किया जाता है जैसे मौखिक प्रचार, डोर टू डोर संपर्क, पोस्टर, शिविर, ग्राम चौपाल, कृषक मेला, कृषक सम्मलेन, कृषि उपज मंडी।

यह पूछे जाने पर कि इन सभी योजनाओं और व्यवस्थाओं से कृषक कितने संतुष्ट हैं, ज्यादातर अधिकारी सकारात्मक जवाब देते हैं। हालाँकि उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि अधिक प्रयासों की आवश्यकता है।

एकमात्र महिला सरपंच (एससी)ने स्पष्ट कहा कि बहुत कम किसान खुश हैं क्योंकि अधिकतर को सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं मिल पाता है।

संक्षेप में

कृषकों के सामने बड़ी समस्या मौसम की अनिश्चितता है। इसके अलावा अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता जिनके लिए कम पानी की आवश्यकता होती है और जो रोग एवं कीट प्रतिरोधी हैं की समस्या है। सरकारी दुकानों पर उर्वरकों और कीटनाशकों की कमी भी परेशानी का एक कारण है। जहां तक सिंचाई की बात है तो कृषक को बिजली आपूर्ति ठीक प्रकार से न होने का भी खतरा है। बेमौसम वर्षा कभी-कभी उत्पादन की गुणवत्ता को खराब कर देती है। हालांकि बड़े कृषक हानि उठाने में सक्षम हैं ।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन ने खाद्य सुरक्षा और कृषि के मामले में भारत को भारी आर्थिक हानि पहुँचायी है। अभी भी भारत की 60% से अधिक आबादी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। मानसून के आगमन और प्रदर्शन का प्रभाव समय के साथ बढ़ रहा है । वर्षा के पैटर्न में बदलाव कृषि को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहा है। इसलिए हमारी खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा है। सूखा और कीट प्रतिरोधी प्रकारों को विकसित करने के लिए प्राथमिकता के आधार पर कार्यवाही आवश्यक है। जल और मृदा संरक्षण की विधियों में सुधार; कृषकों के लिए प्रशिक्षण, कार्यशालाएं और प्रदर्शन अभ्यास; अनिश्चित वर्षा से संबंधित तनावों से निपटने हेतु अनुकूलन, प्रौद्योगिकियों के लिए कृषक को वित्तीय सहायता प्रदान करना, आदि ये सभी समाधान सरकारी तंत्र के माध्यम से संपन्न किए जाने हैं।

अशोकनगर में भी जलवायु परिवर्तन का प्रभाव गंभीर रूप से महसूस किया जा रहा है। वर्षा की परिवर्तनशीलता के कारण पानी का तनाव (कमी या अधिकता) होता है। मानसून में लंबे समय का अंतराल और उच्च तापमान के परिणामस्वरूप फसलों की उपज में आंशिक या पूर्ण विफलता होती है। अब समय और स्थान दोनों में वर्षा अत्यधिक अप्रत्याशित है, अच्छी वर्षा के वर्षों में भी महत्वपूर्ण विकास के चरण में सूखे के कारण जोखिम रहता है। जिले में अशोकनगर की जनसंख्या जो कृषि पर निर्भर करती है, संसाधन संपन्न कृषक से लेकर संसाधन बाधित कृषकों तक है। संसाधन संपन्न कृषक

में से कुछ ने व्यापक तकनीकों को अपनाया है और अच्छा काम कर रहे हैं। संसाधन की कमी वाली परिस्थितियों में खेती एक जोखिम है। अनियमित वर्षा के कारण कृषक की सोच और दृष्टिकोण बदल गया है। अधिक जोखिमों के कारण उनमें से कुछ इस धंधे से दूर जाना चाहते हैं।

समस्या का समाधान

- सरकारी अधिकारियों / प्रतिनिधियों के साथ मेरी चर्चा समस्या के कुछ सामान्य समाधानों की ओर ले जाती है।
- जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव से निपटने के लिए खेती के पैटर्न में बदलाव की जरूरत है। पारंपरिक विधियाँ अब मददगार साबित नहीं हो रही हैं।
- मौसम के पूर्वानुमान की जानकारी कृषक तक पहुँचनी चाहिए।
- कृषकों को फसल चक्रण और मिश्रित फसल प्रणाली के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। गर्मी, सूखा, बीमारी और तनाव सहिष्णुता के लिए नए प्रकार के बीज विकसित करना आवश्यक है।
- नए और बेहतर भूमि उपयोग प्रणालियों को विकसित करना भी आवश्यक है। स्थिति से निपटने के लिए वन्यकृषि और बागवानी फसलें महत्वपूर्ण हैं।
- प्राकृतिक संसाधन संरक्षण, विशेषकर पानी के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करना आवश्यक है। यह वह विधि है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में कृषक को मदद कर सकती है।
- समय पर मौसम सेवाओं, विभिन्न मुद्दों पर कृषि सलाह, फसलों के बीमा, बीजों और चारे के लिए सामुदायिक बैंकों के माध्यम से वर्तमान जलवायु जोखिमों का सामना करने में कृषकों की सहायता करना महत्वपूर्ण है।
- कृषि जैव विविधता को बढ़ावा देने की भी जरूरत है।
- कृषक को कृषि विस्तार सेवाओं (सरकारी एजेंसियों, रेडियो, टेलीविजन, कीटनाशकों और उर्वरकों के डीलरों, एनजीओ) के माध्यम से जागरूक किया जाना चाहिए।
- किसान फील्ड स्कूलों के माध्यम से कृषकों के समूह को प्रशिक्षित करना समय की आवश्यकता है।
- पानी के संतुलन के लिए कृषि जल प्रबंधन (लचीले फसल पैटर्न, पानी के भंडारण के छोटे टैंक, लकीरें, छतों का उपयोग, पानी के छिड़काव का उपयोग) का अभ्यास करना महत्वपूर्ण है।

सरकार के प्रयास:

मध्यप्रदेश कृषि विभाग द्वारा कार्यान्वित की जा रही विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत कृषक को दी जाने वाली सुविधाएँ/योजनाएँ-

1 नलकूप खनन योजना
2 राष्ट्रीय जलग्रहण / कैचमेंट क्षेत्र विकास योजना
3 सूरजधारा योजना
4 एमपीडब्यूए
5 एटीएमए योजना
6 बैलगाड़ी योजना
7 ब्रीज ग्राम योजना
8 एससी/एसटी प्रशिक्षण योजना
9 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन
10 राष्टीय कृषि विकास योजना
11 ISOPAM योजना
12 सघन कपास विकास योजना
13 सघन गन्ना विकास योजना
14 एकीकृत अनाज विकास कार्यक्रम
15 अन्नपूर्णा योजना
16 एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (उर्वरकों का विवेकपुर्ण उपयोग)
17 बलराम ताल योजना
18 भूजल संरक्षण योजना
19 राष्ट्रीय बायोगैस योजना
20 राष्ट्रीय कृषि विकास बीमा योजना
21 नदी घाटी योजना

भावांतर योजना सरकार की सबसे चर्चित योजना है।

कृषि संबंधित जानकारी जैसे फसल कैप्सूल; फसल के पैकेज; बीज, उर्वरक, अंकुर संरक्षण, मृदा परीक्षण, मशीनीकरण, सरकार के सूचना पोर्टल से प्राप्त होती हैं।

कृषि क्षेत्र में सरकारी सब्सिडी उल्लेखनीय रूप से बढ़ रही है।

कृषक की रणनीति जैसे अनुकूलन विधियां, रोपण की तारीखों में परिवर्तन, खेती या फसलों का चयन, सिंचाई की नई विधियों, से उपज में वृद्धि हो सकती है। अनिश्चित वर्षा के कारण आर्थिक क्षति में भारी वृद्धि हुई है, तथापि प्रौद्योगिकी और प्रबंधन तकनीकों के उपयोग से प्रमुख फसलों की उपज में वृद्धि हुई है।

स्थानीय बाजार की कीमतों में बड़े उतार-चढ़ाव से भूख और खाद्य सुरक्षा के जोखिम में वृद्धि हुई है। इसका परिणाम समाज में पलायन और नागरिक अशांति है। भविष्य में जलवायु परिवर्तन खतरनाक स्थिति दिखा सकता है। कम वर्षा या अत्यधिक वर्षा, दोनों कृषि क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार, हमारा ध्यान चार क्षेत्रों पर केंद्रित होना चाहिए - शुष्क भूमि कृषि, कम और भारी बारिश की स्थिति में जोखिम प्रबंधन, कृषक की सूचना तक पहुँच और नई तकनीकों का उपयोग।

कृषक की पीड़ा को दूर करने के लिए सरकारी अधिकारियों / प्रतिनिधियों द्वारा किए गए ईमानदार प्रयास बहुत जरूरी हैं। ये लोग कृषक और सरकार के बीच एक सेतु का काम करते हैं। यदि यह सेतु पूरी निष्ठा के साथ अपने कर्तव्य को पूरा करता है तो जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों के कारण कृषक जीवन दयनीय होने का कोई कारण नहीं होगा।

संदर्भ

- Agricoop.nic.in/mp/ashoknagar
- Bokhari, A.(2013): Climate Change Setting New Farming Patterns, http://www.dawn.com
- Government of India (2008) : National Action Plan on Climate Change
- Government of India (2011): Agriculture
- http://agmarknet.gov.in/PriceTrends/SA_Month_PriM.aspx
- CRIS, Hydromet Division, New Delhi, India Meteorological Department, District Rainfall Data
- Kaushik M P and Dwara G P (1982) : Introductory Ecology, Jai Prakash Nath and Co., Meerut,
- Mehra Mishita, How monsoon could impact agriculture, inflation, income and storage, The Economic Times (e edition) May 6, 2012,
- Rainfed Agriculture in India, article in GK Today, 05 Jan 2014
- Rajesh R, Changing Climate and Agriculture: A Review, In: Sharma D K, ed, Current Researches in Environmental Science, Astral International Pvt Ltd, New Delhi, 2011

- Rajesh R, Need of Sustainable Development to Combat the Impact of Erratic Rainfall on Agriculture (with special reference to district Ashoknagar, MP, India), Janparishad's 4th International Conference on Environment and agriculture in The UN Sustainable Development Goals, Dec 17th-19th, 2016, Bhopal MP India
- www.ashoknagar.nic.in

लीची के बीज अंकुरण पर जैव उर्वरक का प्रभाव

सुश्री नंदिनी कुमारी, डॉ. पुष्पांजलि खरे
वनस्पति विज्ञान विभाग, मगध महिला कॉलेज,
पटना विश्वविद्लाय, पटना
ई-मेल : kushwaha.nandini91@gmail.com,
khare.pushpanjali2@gmail.com

लीची उच्च निर्यात क्षमता वाले वाणिज्यिक महत्व का एक उष्णकटिबंधीय फल है। फलों की रानी 'लीची' न केवल अपने आकर्षक लाल रंग और स्वाद के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि विभिन्न पोषक-तत्व और स्वास्थ्य लाभों के लिए भी प्रसिद्ध है। रासायनिक उर्वरकों की उच्च और असंतुलित मात्रा ने मृदा और फलों की गुणवत्ता दोनों को खराब कर दिया है अतः मृदा की उर्वरता और फलों के उत्पादन को संतोषप्रदस्तर रखने या बढ़ाने के लिए प्राकृतिक जैव उर्वरकों के रुप में पीजीपीआर का उपयोग करके एक वैकल्पिक विधि लागू की जानी चाहिए। राइजोबैक्टीरिया को बढ़ावा देने वाले पादप विकास का आधुनिक और जैविक कृषि पद्धतियों में बहुत महत्व है। पीजीपीआर (पादप वृद्धि-कारक राइजोबैक्टीरिया) लाभकारी मृदा जीवाणु हैं पादपों की मूलों में उपनिवेशित रहते हैं और पादपों के वृद्धि और विकास को गति देते हैं। लीची के बीजों के अंकुरण और अंकुरण-वृद्धि पर पीजीपीआर कर प्रभाव का अध्ययन हेतु दो पीजीपीआर यानी एज़ोटोबैक्टर क्रूकोकम और स्यूडोमोनास फ्लोरेन्सेस का उपयोग करके और लीची बाग मिट्टी के संयोजन से एक पात्र प्रयोग किया गया था। अंकुर के प्रारंभिक उद्भव पात्र 3 और 5 में प्राप्त हुए थे। अंकुरण दर, ऊँचाई, प्ररोह की व्यास, मूल लंबाई, मूल व्यास, पत्तियों की संख्या, ताकत सूचकांक का अध्ययन किया गया। 100% अंकुरण दर, 18.56 (सेमी) प्ररोह लंबाई, 6.91 (मिमी) अंकुर व्यास, 11 स्वस्थ पत्तियों की संख्या, 10.5 (सेमी) मूलीय लंबाई, 20 की संख्या पात्र 5 में अंकित की गई जिसमें एज़ोटोबैक्टर क्रूकोकम + स्यूडोमोनास फ्लोरेन्सेस + लीची में स्वदेशी माइकोराइजा सम्मिलित एथे। मृदा जो बंध्य अंसरोपीय लीची मृदा की तुलना में सभी मापदंडों में अधिकतम मात्रा दर्शाती है। परिणामों में स्पष्ट रूप से पीजीपीआर के साथ बीज उपचार दिखाया गया है जो अंकुरण, अंकुर की वृद्धि और ताक़त को बढ़ाता है और लीची के पौधों के लिए प्राकृतिक जैव उर्वरकों के निर्माण के लिए विभिन्न संयोजनों में उपयोग किया जा सकता है।

मुख्य शब्द : पी जी पी आर, लीची बीज, जैव-उर्वरक, राइजोबैक्टीरिया, एजोटोबैक्टर क्रूकोकम, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स

परिचय

लीची एक महत्वपूर्ण उष्णकटिबंधीय सदाबहार फल है जो सैपिन्डेसी कुल का सदस्य है। यह विटामिन, खनिजों का समृद्ध स्रोत है और इसमें कई औषधीय गुण हैं। बिहार लीची का प्रमुख उत्पादक (70% उत्पादन अंश) राज्य है। लेकिन हाल के वर्षों में, इसका उत्पादन 2013 से कम हो गया है। मृदा की नाइट्रोजन और फास्फोरस के पुन:भरण हेतु रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक निवेश के कारण उच्च लागत और गंभीर पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। वर्ष 2013-14 में लीची का उत्पादन 234.20 टन था और 2016-17 में यह 199.98 हजार मीट्रीक उत्पन्न टन (बागवानी सांख्यिकी प्रभाग, कृषि विभाग, कूप और परिवार कल्याण विभाग) है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से फलों की गुणवत्ता के साथ-साथ मृदा की उर्वरता में कमी आई है। हाल के वर्षों में इस तरह के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिए कुछ लाभकारी सूक्ष्मजीवियों को अपनाया गया है जैसे कि पीजीपीआर के लिए पोषक तत्वों वाले पौधे, जैव नियंत्रण सहायक, उन्नत बीज अंकुरण विशेषताओं और पौधों की वृद्धि में सुधार, पोषी में प्रतिरोध तंत्र की सक्रियता, जैवभार में वृद्धि, उत्पादन और उपज (नाकेरन एवं अन्य; 2005)। मृदा संशोधन और जैव प्राथमिक बीज उपचार, बीज की गुणवत्ता में सुधार, रोगजनक अंकुरण नियंत्रण में रासायनिक फफूँदनाशक (मोहम्मदी एवं अन्य; 2006) के विकल्प के रूप में महत्वपूर्ण हैं। अवस्थी एवं अन्य (1998) के अनुसार एजोटोबैक्टर के साथ लगाए गए आडू के पादपों में पादप की ऊँचाई, तने का शुष्कभार और मूल का शुष्कभार बढ़ता है। जूलका एवं अन्ये (2004) के अनुसार मूंगफली (सरिया इलिनोइसिस कोच) के विकास पर एज़ोटोबैक्टर का प्रभाव है। परिणाम में पत्तियों की अधिकतम संख्या, प्ररोह का ताजा भार और मूल, अंकुर और मूलों का शुष्कभार, मूल/तना अनुपात, पत्ती का आकार और एज़ोटोबैक्टर उपचार के अंतर्गत मूल की लंबाई शामिल थी। इस प्रकार, वर्तमान अन्वेषण में केवल पीजीपीआर के प्रभाव और अन्तर्गत प्रयोग में लीची के बीजों की वृद्धि और उपज के संयोजन पर प्रयोग किए गए हैं।

सामग्री और विधि

पी जी पी आर (एज़ोटोबैक्टर और स्यूडोमोनास) के प्रभाव की जाँच लीची के अंकुरों पर एक पात्र प्रयोग करके इसके विकास और अस्तित्व के लिए की गई थी। यह प्रयोग जून 2018 से दिसंबर 2018 तक पाँच अलग-अलग उपचारित पात्रों में किया गया ।

तालिका 1: पात्रों में विभिन्न मृदा माध्यमों का विस्तार

पात्र	मृदा माध्यम
एम 1	बाँझ लीची बाग मृदा (नियंत्रण)
एम 2	लीची बाग की मृदा (स्वदेशी माइकोराइजा)
एम 3	लीची बाग मृदा + एज़ोटोबैक्टर क्रूकोकम
एम 4	लीची बाग मृदा + स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स
एम 5	लीची बाग मृदा + एज़ोटोबैक्टर क्रूकोकम + स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स

विधि

जुलाई 2018-दिसंबर 2018 में एक पात्र प्रयोग किया गया था। लीची के पुराने पौधों की मृदा को लिया गया था। प्रायोगिक स्थल के पास सोनबरसा गाँव के एक लीची बाग से ताजे और पकने वाले फल लिए गए। बीज को फल से निकाल लिया गया और नल के पानी में अच्छी तरह से धोया गया और फिर समान आकार के बीज छाँटकर 72 घंटे के लिए पानी में भिगोए गए ताकि कठोर बीज चोल को मुलायम किया जा सके। 72 घंटे के बाद, अलग-अलग मृदा माध्यमों में ये बीज बोए गए (तालिका 1) प्रत्येक उपचार के लिए पाँच बीजों को बोया गया और छायादार नेट हाऊस में रखा गया।

अवलोकन

सभी प्रेक्षण बुवाई के 180 दिनों के बाद किए गए थे।

1. **बीज डालने का कार्य :** बीज बोने पर पठन किया गया व बीज बुवाई के 6 सप्ताह बाद गणना की गई थी।

$$\% \text{ अंकुरण} = \frac{\text{अंकुरित बीजों की संख्या X 100}}{\text{बोए गए बीजों की कुल संख्या}}$$

2. **बीजाई की ऊँचाई :** अंकुर की ऊँचाई को मिट्टी की सतह से नोक तक मापा गया ।
3. **तने का व्यास :** इसे वर्नियर कैलिपर के साथ के मृदा स्तर से कुछ सेमी उँचाई पर मापा गया ।
4. **पौधों की पत्तियाँ :** पूरी तरह से विकसित, हरी पत्तियों की गिनती तने के निचले हिस्से से शुरू की गई।

5. **मूल :** लीची अंकुर के मूलाकुंर का अध्ययन पुरोहित (1982) द्वारा वर्णित रोपाई को उखाड़कर किया गया था। मूल की लंबाई, मूल का व्यास और माध्यमिक मूलों की संख्या तथा मूलीय प्रतिरुप के अंतर्गत अध्ययन किया गया। अंकुर को सावधानी से उखाड़ा गया और बहते नल के पानी में धोया गया। फिर पॉलिथीन बैग में डाल कर तुरंत प्रयोगशाला में लाया गया। धूल और अन्य अवांछित कणों को डिटर्जेंट तथा 0.1 एन एच. सी. एल. में धोकर हटाया। मुख्य मूल की लंबाई को मीटर स्केल की मदद से नापा गया। वर्नियर कैलिपर और माध्यमिक मूल के साथ मुख्य जड़ के व्यास की औसत संख्या अंकित की गई।

परिणाम और विवेचन

6 सप्ताह के बाद बीज अंकुरण पात्र एम 3 और एम 2 में अधिकतम (80%) और नियंत्रण एम 1 (40%) में न्यूनतम पाया गया। एम 5 उपचारित पात्रों में बोए गए सभी पाँच बीजों ने ग्राफ 1 अनुसार शीघ्र और 100% अंकुरण दर्शाया। बीज के पात्र जिसमें एजोटोबैक्टर होता है, जल्दी और बढ़ा हुआ बीज अंकुरण दर्शाता है। राइजोबैक्टीरिया द्वारा बीज के अंकुरण मापदंडों का सोरगम (राजू + एवं अन्य, 1999) और मोती बाजरा (निरंजन एव अन्य 2004) जैसे अनाजों में उल्लेख किया गया है। संगीता एवं अन्य (2002) ने एजोटोबैक्टर के टीकाकरण के कारण बीज के अंकुरण और अंकुरित वजन में वृद्धि को बताया।

पात्र एम 5 में 19.11 सेमी., एम 3 में 18.23 सेमी., एम 4 में 16.01 सेमी., एम 2 में 12.11 सेमी. और कम से कम नियंत्रण एम 1 में 6.08 सेमी. अंकुर की लंबाई देखी गई। एम 5 ने बाँझ मिट्टी के नियंत्रण (1.16 मिमी) की तुलना में लीची रोपाई (6.91 मिमी). का अधिकतम तन व्यास दर्शाया। एम 5 में 10 और एम 3 में 10 और एम 1 में कम से कम स्वस्थ पत्तों की संख्या अंकित की गई। मुख्य मूल की लंबाई और संख्या एम 5 में अधिकतम पाई गई और कम से कम नियंत्रण एम 1 में। एम 1 की तुलना में एम 5 और एम 3 में जड़ें स्वस्थ थीं।

पॉट	अंकुरण%	अंकुर की लंबाई (cm)	तना का व्यास (cm)	जड़ की लंबाई (cm)	स्वस्थ पत्तियों की संख्या
एम 1	40%	6.08	1.16	8.2	8
एम 2	60%	12.11	4.2	7.5	6
एम 3	80%	18.23	5.69	12.1	10
एम 4	80%	16.01	5	14.2	9
एम 5	100%	19.11	6.91	20	11

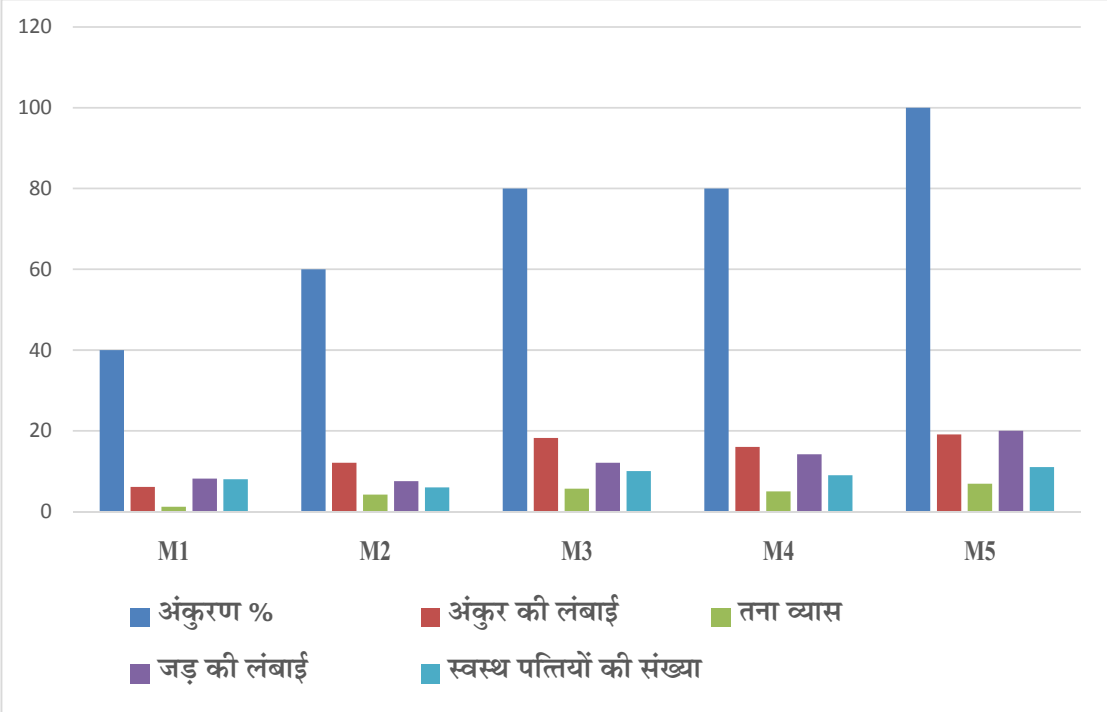

ग्राफ (1): लीची के बीज पर विभिन्न राइजोबैक्टीरिया का प्रभाव दर्शाया गया है

चित्र (1) : लीची के बीज पर विभिन्न राइजोबैक्टीरिया का विकास प्रभाव दिखाया गया है

निष्कर्ष

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राइजोबैक्टीरिया (एजोटोबैक्टर और स्युडोमोनास) को बढावा देने वाले पादप वृद्धि के साथ-साथ स्वदेशी माइकोराइजा ने अंकुरण दर में, पत्ती की संख्या एवं मृदा के पोषक तत्वों के बेहतर उपयोग के लिए सतह के क्षेत्र में वृद्धि के साथ बढ़ी हुई जड़े प्रदान की है। Uninoculated पात्र संतोषजनक परिणाम नहीं देते थे। पी.जी.पी.आर पादपों के विकास में सहायता करता है । इसे जैव संयोजन,पादप उद्दीपन तथा जैवनियंत्रण के लिए इनोकुलेन्ट के रुप में इस्तेमाल किया जा सकता है। (ब्लूमबर्ग तथा लूटनबर्ग, 2001; ग्विन, 2006)

संदर्भ

- Awasthi RP., Godara RK and Kaith NS (1998): Interaction effect of VAM and Azotobacter inoculation on micronutrient uptake of peach seedlings. Indian Journal of Horticulture., 11: 1- 5
- Blomberg GG, Lugtenberg BJJ (2001): Molecular basis of plant growth and biocontrol by rhizobacteria. Curr opinion plant biol 4: 343-350
- Gholami A., Shahsavani S., Nezarat S., (2009): The effect of plant growth promoting rhizobacteria (PGPR) on germination, seedling growth and yield of maize. World academy of Science, Engineering & Technology 49: 19 - 24
- Gwyn AB (2006) **:** Plant associated bacteria: survey, molecular phylogeny, genomics and recent advances. Plant – Associated Bacteria, 1-56
- Mazid M., Taqi AK (2015) : Future of biofertilizers in Indian agriculture: An overview. Int. J. Agric. Food. Res., 3(3): 10 – 24
- Mohammadi K., Yousef Sohrabi Y (2012): Bacterial Biofertilizers for sustainable crop production: A review. J. Agric. Biol. Sci., 7: 307 – 316
- Nakeeran S., Fernando DWG., Siddiqui ZA (2005): Plant growth promoting rhizobacteria formulations and its scope. In: Siddiqui ZA (ed) PGPR: Biocontrol and fertilization. Springer, Dordrecht., 257 – 296
- Niranjan SR, Shetty NP and Shetty HS (2004) : Seed Bio-priming with Pseudomonas isolates enhances growth of pearl millet plants and induces resistance against downy mildew. J. Pest manage. 50(1), p.p. 41-48.
- Paul S., Verma O P., Rathi M S., Tyagi S P (2002): Effect of Azotobacter inoculation on seed germination and yield of onion (Allium cepa). Annals of Agricultural Research., 23: 297 – 299
- Sharma S., Rana V.S., Kumari M., Mishra P (2018) : Biofertilizers: boon for fruit production. J. Pharma. Phytochem., 7(5): 3244 – 3247

विषयों का सामान्य वर्गीकरण एवं शब्दावली परिदृश्य

सतीश चंद्र सक्सेना
उपनिदेशक वै. त. श. आयोग (पूर्व)
बी बी - 35 एफ, जनकपुरी, नई दिल्ली

भाषा, भावों और संकल्पनाओं की सटीक अभिव्यक्ति और परस्पर संप्रेषण का माध्यम है। वैज्ञानिक संकल्पनाओं और उनमें निहित सूक्ष्मांतरों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त शब्द, तकनीकी शब्दों का रूप ले लेते हैं। शब्द ब्रह्म होते हैं और अक्षरों से ही निर्मित होते हैं। शब्दों की शृंखला, शब्दावली कहलाती है। जब यह शृंखला किसी विषय से संबद्ध होती है तो यह विषयगत या उस विज्ञान शाखा की शब्दावली कहलाती है। यह शब्दावली सामान्य शब्दावली से यथेष्ट भिन्न होती है। ऐसी शब्दावली एक दृष्टि से विशेषज्ञों की शब्दावली कहलाती है और इसे विषय का विशेषज्ञ ही भली-भाँति समझकर प्रयोग कर सकता है। कभी-कभी जटिल विषय की संक्षिप्त व्याख्या भी आवश्यक हो सकती है। यह भी सही है कि विषयगत जटिल संकल्पनाओं और सूक्ष्मांतरों की अभिव्यक्ति के लिए यथेष्ट प्रमाणिक और असमन्वित शब्दावली नितांत आवश्यक है।

'विज्ञान' शब्द ज्ञान में वि-उपसर्ग जोड़कर बनाया गया है। 'वि' उपसर्ग को मूल शब्द के साथ जोड़ने पर तीन प्रकार के अर्थ प्राप्त होते हैं। यथा-

(1) ज्ञान-विज्ञान, शुद्ध-विशुद्ध और नाश-विनाश आदि में "वि" विशेष अर्थ देता है और मूल शब्द का स्तर ऊपर उठाता है।

(2) गुण-विगुण, मल-विमल, संपन्न-विपन्न तथा संयोग और वियोग में "वि" उपसर्ग, मूल शब्द का विपरीत अर्थात विलोम अर्थ दे रहा है;

(3) केंद्रीकरण-विकेंद्रीकरण, संघटन-विघटन, पथ-विपथ, राग-विराग और संयोजन-वियोजन और कर्षण-विकर्षण में 'वि' उपसर्ग विपरीत अर्थ के साथ हटाने या दूर ले जाने का भी बोध कराता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

शब्दावली आयोग का लोगो है 'भारतीय भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान' अर्थात Knowledge in Indian Languages.

वेबस्टर के प्रमाणिक कोश में विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :-

Systemised knowledge derived from study, observations and experimentation carried on in order to determine the nature or principles of what is being studied.

Any specific branch of scientific knowledge especially one concerned with estabilishing and systematizing facts, principles and methods as by experiments and hypothesis.
Any branch of natural science.

अर्थात

अध्ययन अधीन सिद्धांतों के निर्धारणों में प्रेक्षणों, अध्ययन और प्रयोगों के आधार पर व्युत्पन्न क्रमबद्ध और व्यवस्थित ज्ञान ;
प्रयोगों और परिकल्पनाओं द्वारा स्थापित तथ्यों, नियमों और सिद्धातों से संबंधित वैज्ञानिक ज्ञान की कोई विशिष्ट शाखा ;

प्राकृतिक विज्ञान अथवा विशुद्ध ज्ञान की कोई शाखा ;

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन में प्रयोगों और प्रेक्षणों का पक्ष बहुत सशक्त और प्रबल है जबकि मानविकी और सामाजिक विज्ञान के कई विषयों में विज्ञान शब्द जुड़ा होने पर भी प्रयोगात्मक पक्ष उतना महत्वपूर्ण नहीं हैं। इसके अतिरिक्त आज, वैज्ञानिक कार्य संस्कृति (Scientific work culture), वैज्ञानिक प्रस्तुति (Scientific presentation), वैज्ञानिक पद्धति आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है।

आज कई विषयों में शास्त्र और विज्ञान शब्द भी जोड़ा जाता है। शास्त्र का शाब्दिक अर्थ भी विज्ञान है। विषय के विशेषज्ञ अपने आप को शास्त्री कहे जाने की अपेक्षा अपने विषय के आगे विज्ञानी अथवा विद् जोड़ना अधिक पसंद करते हैं। आजकल मानविकी के कई विषयों जैसे भूगोल, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन आदि का अध्ययन पूर्णतः वैज्ञानिक हो गया है। अधिकांश विषयों से जुड़े शास्त्र शब्द के स्थान पर अब विज्ञान शब्द का प्रयोग होने लगा है यथा राजनीति विज्ञान (Political science), खगोल विज्ञान (Astronomy), ज्योतिष विज्ञान (Astrology) आदि। संभवतः इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इन विषयों में निहित सिद्धांतों और संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति, व्याख्या और निर्वचन भी वैज्ञानिक विषयों की ही भाँति होता है। आज ज्ञान और विज्ञान के एक विषय में दूसरे कई विषयों का अतिक्रमण हो रहा है। इसे हम अंतर्विषयी अतिक्रमण (interdisciplinary encroachment) कहते हैं। इसका एक स्पष्ट लाभ यह हुआ है कि विषयगत ज्ञान का दायरा बढ़ गया है और उनमें दूरियाँ कम हो गई हैं। भूगोल, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान, मौसम विज्ञान (Meteorology), भूविज्ञान (Geology) और यहाँ तक कि भूभौतिकी (Geophysics) तथा भूरसायन (Geo chemistry) में बहुत से प्रसंग समान हैं और इन विषयों को भौमिकी (Geo Science) की संज्ञा दी गई है। वैसे Geo Sciences के लिए शाब्दिक पर्याय भूविज्ञान होना चाहिए परंतु भूविज्ञान पर्याय Geology के लिए रूढ़ है।

विज्ञानों का नामकरण

–logy_से अंत होने वाले विषय : बहुत से विषयों के अंत में –logy लगा होता है जो ग्रीक शब्द logos अथवा logic से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ, विज्ञान, सिद्धांत अथवा वाद (doctrine) होता हैं। मिले-जुले कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं जिनके अंत में विज्ञान लगा हुआ है:-

Psychology	मनोविज्ञान		Trichology	केशविज्ञान
Anthropology	मानव विज्ञान, नृ विज्ञान		Ecology	पारिस्थितिकी, परिस्थिति विज्ञान
Sociology	समाज शास्त्र		Edaphology	मृदा विज्ञान
Climatology	जलवायु विज्ञान		Aerobiology	वायु जैविकी
Biology	जैविकी, जीव विज्ञान		Bacteriology	जीवाणु विज्ञान, जीवाण्विकी
Hydrology	जल विज्ञान		Virology (virusology)	विषाणु विज्ञान
Pomology	फलविज्ञान		Phenology	लक्षण विज्ञान
Potamology	नद् विज्ञान		Palaeontology	जीवाश्म विज्ञान
Zoology	प्राणि विज्ञान (कहीं कहीं जंतुविज्ञान का भी प्रयोग होता है।)		Microbiology	सूक्ष्म जैविकी
Orlogy	पर्वत विज्ञान		Histology	ऊतक विज्ञान
Agrostology	घास विज्ञान		Planktonology	प्लवक विज्ञान, कंठ विज्ञान
Otorhinolaryngology	कर्ण नासा			

इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। वनस्पति विज्ञान में कई शब्द संयोजनों में Bio, Biotic और Biologic शब्द जोड़े जाते हैं। इनमें भी एकरूपता लाने का प्रयास किया गया यथा:-

bio assay	जैवआमापन		biotic environment	जीवीय वातावरण
biochemistry	जैवरसायन		biodiagradation	जैव निम्नीकरण
biotic	जीवीय		biosphere	जैवमंडल
biotic adaptation	जीवीय अनुकूलन		biotic influence	जीवीय प्रभाव
biocide	जैवनाशी		biological survey	जैविक सर्वेक्षण
			biological survey	जैविक अपक्षय

(ii)- Sciences : कुछ विषयों के अंत में Sciences लगा होता है जो अधिकतर विशिष्ट विषय समूह को व्यक्त करते हैं। हिंदी में भी इन विषयों के अंत में विज्ञान जोड़ा गया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं :

Biological Sciences	जीव विज्ञान, जैविकी		Environmental Health Sciences	पर्यावरणीस्वास्थ्य विज्ञान
Earth Sciences	भौमिकी विज्ञान		Social Sciences	सामाजिकी, सामाजिक विज्ञान
Physical Sciences	भौतिक विज्ञान		Chemical Sciences	रासायनिक विज्ञान
Life Sciences	जीवन विज्ञान			

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत राजनीति विज्ञान, मानव भूगोल (Human geography), सांस्कृतिक मानव विज्ञान (cultural Anthropology) तथा विकासात्मक अर्थशास्त्र (Developmental Economics) आदि विषय आते हैं। वैसे ज्ञान या विज्ञान की कोई भी शाखा ज्ञान या विज्ञान की दूसरी शाखा की अधीनता आसानी से स्वीकार नहीं करती और अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखना चाहती है। इस कारण विषय समूहन पर विशेषज्ञ एक मत नहीं होते।

(iii)- ics इस लैटिन प्रत्यय का प्रयोग संज्ञा बनाकर ज्ञान-विज्ञान के विषयों को निरूपित करने में किया जाता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

Linguistics	भाषाविज्ञान		Economics	अर्थशास्त्र

वैसे Economics के लिए अर्थविज्ञान और आर्थिकी पर्याय भी हो सकते थे, पंरतु अर्थशास्त्र पर्याय ही सर्व स्वीकृत है और अर्थ विज्ञान पर्याय Semantics के लिए नियत है

aeroponics	वायव संवर्धन		Physics	भौतिकी
bionomics	जैव-पारिस्थितिकी		Statics	स्थैतिकी
Ergonomics	श्रम दक्षता शास्त्र, श्रम प्रभाविकी		Statistics	सांख्यिकी
Ethics	1 नीति शास्त्र 2- आचार नीति		Dynamics	गतिकी

शब्दावली आयोग ने विषयों के नामकरण में संज्ञा से विशेषण बनाकर और फिर ई-प्रत्यय जोड़कर एक संहत (compact) और संक्षिप्त पर्याय बनाने की पद्धति को स्वीकार किया है। क्योंकि, व्याकरण के नियम के अनुसार संज्ञा से सीधी संज्ञा नहीं बनती। पहले संज्ञा से विशेषण बनाकर उसमें ई प्रत्यय जोड़कर पुनः संज्ञा बनाई जाती है। कुछ उदाहरण ऊपर दिए गए हैं, अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं:-

उद्यान – औद्यानिक – औद्यानिकी	(Horticulture)
प्र + उद्योग – प्रौद्योगिकी	(Technology)
विमान – वैमानिक – वैमानिकी	(Aeronautics)
विचार – वैचारिक – वैचारिकी	(Ideology)

(iv) culture : कुछ विषयों के अंत में culture शब्द लगा होता है जिसके दो अर्थ होते हैं :- culture 1. विज्ञान 2. पालन

कुछ उदाहरण इस प्रकार है :-

Agriculture	1. कृषि, खेती,		Floriculture	1. पुष्पकृषि 2. पुष्पविज्ञान
(Agricultural Sciences)	2.कृषि विज्ञान		Sericulture	रेशम कीट पालन
Horticulture	बागवानी		Apiculture	मधुमक्खी पालन, मौन पालन
Floriculture	1.पुष्पकृषि 2.पुष्पविज्ञान		Pisciculture	मछली पालन, मत्स्य पालन
			Aqua culture	जल कृषि

(v) – graphy से अंत होने वाले कुछ विषय

Geography : भूगोल

(वस्तुतः भूगोल शब्द से किसी विज्ञान का बोध नहीं होता । इसका अर्थ 'पृथ्वी गोल' है। परंतु भूगोल पर्याय geography के लिए सर्वमान्य हो चुका है इसलिए परिवर्तन का औचित्य नहीं है।)

cartography	मानचित्रकला, मानचित्र विज्ञान		oceanography	समुद्र विज्ञान, सामुद्रिकी
cartographer	मानचित्रकार			

(vi) अब तक के विषयों के जो नामकरण प्रस्तुत किए गए हैं उनमें प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। कुछ विशिष्ट विषयों के नामकरण ग्रीक प्रत्ययों palaeo (पुरा) neo (नव) का भी प्रयोग हुआ हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

Palaeo climatology	पुरा जलवायु विज्ञान		Palaeo lithology	पुराआश्मिकी
Palaeo geology	पुरा भूविज्ञान		Palaeolithic	पुरापाषाणी
Palaeo lithology	पुरा आश्मिकी		neolithic	नवपाषाणी
Palaeolithic	पुरापाषाणी		neogeography	नवभूगोल
neolithic	नवपाषाणी			

(vii) कुछ विषयों के नामकरण में कोई उपसर्ग या प्रत्यय प्रयुक्त नहीं होता। कुछ प्रचलित और सरल उदाहरण इस प्रकार हैं:-

Chemistry	रसायन शास्त्र		Humanitues	मानविकी
Botany	वनस्पति विज्ञान		Education	1. शिक्षा 2. शिक्षा विज्ञान
Philosophy	दर्शन, दर्शन शास्त्र		Forestry	वन विज्ञान, वानिकी

इसी प्रकार कुछ शब्द agro जोड़कर भी बनाए गए हैं :-

agro ecology	कृषि पारिस्थितिकी		agronomy	सस्य विज्ञान
agro forestall	कृषि वन संबंधी		agrotype	सस्य प्ररूप
agro forestry	कृषि वानिकी			

इसी प्रकार in situ स्थाने, स्वस्थाने; in vitro पात्रे, in vivo जीवे
कुछ शब्दों का कालांतर में अनुभव और संकल्पना को ध्यान में रखकर परिवर्तन किया गया है :-

chromosome	वर्णकाय के स्थान पर गुणसूत्र
genetics	जनन विज्ञान के स्थान पर आनुवंशिकी
geometry	रेखागणित के स्थान पर ज्यामिति

Radioactive, रेडियोऐक्टिव के स्थान पर रेडियो सक्रियता को वरीयता दी गई है।

electrophilic	(इलेक्ट्रान स्नेही) - इलेक्ट्रॉन रागी		hydrophobic	(जलविरोधी) जल विरागी
hydrophilic	(जल स्नेही) जल रागी		nucleophobic	नाभिक विरोधी, नाभिक विरागी
nucleophilic	(नाभिक स्नेही) नाभिक रागी		geology	भूगर्भ विज्ञान, भूविज्ञान
electrophobic	(इलेक्ट्रॉन विरोधी) इलेक्ट्रॉन विरागी		physics	भौतिक विज्ञान, भौतिकी

(भौतिक विज्ञान अब physical Sciences के लिए नियत किया गया है।)

सामान्यतः विष शब्द poison, toxic और venom (जैसे साँप का जहर) के लिए प्रयोग किया जाता है।

तकनीकी दृष्टि से इनमें भिन्नता है अतः विभिन्न पर्याय निर्धारित किए गए हैं :-

poison	विष		poisonous	विषैला
toxic	आविष		toxicity	आविषता
venom	(जीव + विष) = जीविष			

सारांश

प्रस्तुत आलेख में विज्ञान विषयों का सामान्य संक्षिप्त वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है, जो पूर्णतः न होकर मात्र निर्देशात्मक है। विषयों के चयन में मानविकी व विज्ञान दोनों ही विषय सम्मिलित हैं। उदाहरणों के चयन के लिए अपेक्षाकृत सरल उदाहरणों को ही आधार बनाया है जिनसे पाठकगण पहले से ही परिचित हैं।

आलेख का उद्देश्य विज्ञान तथा मानविकी के विषयों में एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित करते हुए समांतर नामकरण पद्धति प्रस्तुत करना है। विषय को रोचक बनाने व उसकी उपयोगिता में वृद्धि करने के लिए स्थान-स्थान पर शब्दावली का भी विवेचन किया गया है।

पारिभाषिक शब्दावली : एक सिंहावलोकन

प्रोफेसर सूरजभान सिंह
पूर्व अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण, भाषा की आधुनिकीकरण-प्रक्रिया का एक अंग है। इसका विवेचन भाषावैज्ञानिक और समाजभाषावैज्ञानिक दोनों स्तरों पर संभव है। भाषावैज्ञानिक स्तर पर, पारिभाषिक शब्दावली के भाषिक स्वरूप तथा शब्द-निर्माण की युक्तियों पर विचार महत्वपूर्ण है। समाजभाषावैज्ञानिक स्तर पर, शब्दावली की मानकता, इसकी विकास-प्रक्रिया तथा इसका प्रयोग पक्ष विचारणीय है। इन दो आयामों के अलावा भारत में शब्दावली-निर्माण संबंधी कार्यों को ऐतिहासिक तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाना जरूरी है। इस आलेख में इन सभी आयामों को केंद्र में रखते हुए पारिभाषिक शब्दावली का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है।

1. पारिभाषिक शब्दावली का स्वरूप

भाषिक संरचना की दृष्टि से सामान्य शब्द और पारिभाषिक शब्द में भेद है; क्योंकि पारिभाषिक शब्दों की रचना-प्रक्रिया का कोई भी नियम, सामान्य शब्द-रचना प्रक्रिया के नियमों की मर्यादा से बाहर नहीं जा सकता; लेकिन अर्थ-संरचना की दृष्टि से पारिभाषिक शब्द और सामान्य शब्द के बीच भेद महत्वपूर्ण है।

पारिभाषिक शब्द मूलरूप में ही ग्रहण किए जाते हैं, लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ में नहीं। सामान्य शब्द, आवश्यकतानुसार, मूल लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ किसी भी रूप में ग्रहण किए जा सकते हैं। सामान्य या साहित्यिक भाषा-व्यवहार में हम, प्रभावोत्पादकता के लिए, सामान्य शब्दों के अर्थों को विस्तारित कर सकते हैं या उनका विचलित अथवा लाक्षणिक अर्थों में प्रयोग कर सकते हैं। 'आशा की किरणें', 'बदचलन इच्छाएँ', 'लंगड़ी मानवता', 'तभी भीतर से साहब दहाड़े, जैसी अभिव्यक्तियों में 'किरणें', बदचलन', 'लंगड़ी' और 'दहाड़े शब्दों का प्रयोग लाक्षणिक या विचलित अर्थों में हुआ है। इसके विपरीत, तकनीकी या पारिभाषिक शब्दों में इस प्रकार का विचलन संभव नहीं। भौतिकी में 'किरण' शब्द 'प्रकाश की किरणें' के अर्थ में ही ग्राह्य है, 'आशा की किरण' के अर्थ में नहीं। प्राणिविज्ञान में 'गधा' शब्द केवल 'जानवर' विशेष के अर्थ में ही ग्राह्य है, 'बेवकूफ' के अर्थ में नहीं। इस प्रकार पारिभाषिक शब्द अपने-अपने विषय-क्षेत्रों में सर्वत्र एक ही अर्थ में ग्राह्य होते हैं।

विषय सापेक्षता पारिभाषिक शब्दों का एक अन्यतम गुण है। हर पारिभाषिक शब्द से किसी न किसी विषय-क्षेत्र के संदर्भ में ही उस शब्द का अभीष्ट अर्थ समझा जा सकता है। पारिभाषिक शब्दों

की बाह्य संरचना से जो प्रकट अर्थ व्यक्त होते हैं उनसे कहीं अधिक (तकनीकी) अर्थ निहित होते हैं। जो उन शब्दों की शास्त्रसम्मत परिभाषाओं के आलोक में ही प्रकट होते हैं। 'रेखित चेक', 'ओवरड्राफ्ट', 'मियादी जमा', 'चालू खाता', 'ऋण मेला', 'बचत खाता आदि शब्दों के अभीष्ट अर्थ बैंकिंग व्यवहार-क्षेत्र के संदर्भ में ही स्पष्ट होते हैं। 'रेखित चेक' शब्द का सामान्य अर्थ है "एक ऐसा चेक जिस पर रेखा खींची गई हो", लेकिन बैंकिंग के पारिभाषिक शब्द के रूप में इसका तकनीकी अर्थ है एक ऐसा चेक जिसके ऊपर बायीं ओर दो समानांतर रेखाएँ खिंची हों और जिसका भुगतान उसी को हो सकता हो जिसके नाम चेक कटा हो, चेक धारक को नहीं, आदि।

पारिभाषिक शब्दों की मूल प्रवृत्ति अर्थों के सूक्ष्मीकरण की ओर होती है जिससे हर पारिभाषिक शब्द किसी विशिष्ट या सूक्ष्म अर्थ का वाचक बन जाता है। तकनीकी भाषा में गूढ़ या कूट शब्द, सूत्र, संकेताक्षर, रेखाचित्र, प्रतीक शब्द, गणितीय सूत्र तथा प्रतीक (विशिष्ट चिह्न) आदि भाषाई युक्तियाँ इसी सूक्ष्मीकरण प्रक्रिया के परिणाम हैं। 'विज्ञान' शब्दार्थ को सूक्ष्मता की ओर प्रवृत्त करता है और 'साहित्य' विस्तार की ओर। इस दृष्टि से साहित्य और विज्ञान, दोनों ही शब्दों को सामान्य अर्थ से दूर, लेकिन अलग-अलग दिशाओं में, ले जाते हैं। विज्ञान, अभिधार्थ को उसके मूल स्थान से हटाकर संकुचित अर्थ की ओर ले जाता है। वह 'ताप' 'गरमी' 'ऊष्मा' और 'ऊष्णता' के सामान्य अर्थों को संकुचित करके उनमें भेद करता है।वह cold (ठंडा, शीत) cooling (शीतलन) refrigeration (प्रशीतन), chilling (द्रुतशीतन), quenching (शमन) के बीच तकनीकी भेद बरतता है। वह 'किरण' (ray), 'किरणपुंज' (beam) और 'विकिरण' (radiation) में भी अंतर करता है। इसके विपरीत, साहित्य अपनी शैलीगत आवश्यकता के लिए, कई बार न केवल इनके अंतरों को अस्वीकार करता है, बल्कि शुद्ध तकनीकी शब्दों को भी उनके तकनीकी अर्थों से हटाकर भिन्न अर्थों में प्रयुक्त करता है, जैसे 'प्रेम का त्रिकोण', 'फोटो-फ़िनिश, 'जेट गति', 'आशा की किरण' आदि।

पारिभाषिक शब्द और उसके अर्थ के बीच संबंध, रूढ़ीकरण प्रक्रिया द्वारा स्थापित और विकसित होता है। नई संकल्पना और नए आविष्कारों के लिए उपयुक्त शब्दों की आवश्यकता होती है जो मुख्यतः दो प्रकार से प्राप्त होते हैं - भाषा के विद्यमान शब्द भंडार से शब्दों के अर्थों को परिवर्धित अथवा संकुचित करके, या नए शब्दों का निर्माण करके। दोनों ही स्थितियों में शब्दों में अर्थ का आरोप करने की आवश्यकता पड़ती है। जो शब्द सतत व्यवहार में बने रहते हैं वे अभीष्ट तकनीकी अर्थों में रूढ़ हो जाते हैं; लेकिन जो शब्द व्यवहार और प्रचलन में नहीं आ पाते वे चयन और व्याकरण की दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी समय के साथ विलुप्त हो जाते हैं।

विभिन्न पारिभाषिक शब्दों में निहित पारिभाषिकता की मात्रा में अंतर हो सकता है। कुछ शब्दों में पारिभाषिकता की मात्रा अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक हों सकती है और कुछ में कम। कुछ शब्द

पारिभाषिक तथा अपारिभाषिक दोनों संदर्भो में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए कभी-कभी पारिभाषिक शब्दों को पूर्ण पारिभाषिक तथा अर्ध-पारिभाषिक कहा जाता है। 'अणु' (molecule) 'परमाणु' (atom), 'रेडियोसक्रियता' (radioactivity), 'जीन' (gene), 'स्पीशीज़' (species), 'संजीन (genome), 'आविष' (toxic), 'जीवविष' (venom), 'प्लवक' (plankton) आदि पारिभाषिक शब्द अपने-अपने विषय-क्षेत्रों में प्रायः पूर्ण तकनीकी अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। इसके विपरीत कुछ शब्द मूलतः पारिभाषिक होते हुए भी आम प्रयोग या एकाधिक ज्ञान शाखाओं में मुक्त प्रयोग के कारण सामान्यतः सुग्राह्य हो जाते हैं, जिन्हें कुछ विद्वान 'मध्यस्थ पारिभाषिक' और 'अर्धपारिभाषिक' नाम देते हैं, यद्यपि पूर्ण पारिभाषिक और मध्यस्थ पारिभाषिक के बीच की सीमा रेखा अत्यंत क्षीण है, जैसे 'लाभांश' (dividend), प्रतिनियुक्ति (deputation), प्रजातंत्र (democracy), अधिसूचना (notification), टेंडर/निविदा आदि। कई शब्द संदर्भ के अनुसार तकनीकी, अर्धतकनीकी और गैर-तकनीकी, तीनों अर्थों में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं। अंग्रेज़ी का 'speaker' शब्द तीन भिन्न अर्थों में ग्रहण किया जा सकता हैः वक्ता (गैरतकनीकी अर्थ), संसद का अध्यक्ष (तकनीकी अर्थ),लाउडस्पीकर (अर्धतकनीकी अर्थ)। कुछ शब्द एक ही अर्थ-क्षेत्र के भीतर तकनीकी तथा गैरतकनीकी दोनों रूपों में प्रयुक्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिए 'हवाई अड्डा' (aerodrome) और 'हवाई पत्तन' (airport) शब्दों में तकनीकी दृष्टि से अर्थभेद है - सामान्यतः केवल उसी हवाई अड्डे को हवाई पत्तन कहते हैं जिसमें सीमा शुल्क की सुविधा हो, परंतु 'एयरपोर्ट' शब्द का प्रयोग गैरतकनीकी अर्थ में भी होता है, जैसे टैक्सी ड्राइवर के लिए यह कथन : "पालम एयरपोर्ट चलो"। ऐसी स्थिति में दोनों शब्दों में भेद न करते हुए अधिक प्रचलित शब्द 'पालम हवाई अड्डा' का प्रयोग समीचीन है। इसके विपरीत वैमानिकी के संदर्भ में इन शब्दों का शुद्ध तकनीकी अर्थों में प्रयोग संभव है जहाँ 'हवाई अड्डा' तथा 'हवाई पत्तन' दो अलग-अलग शब्दों का प्रयोग, आवश्यक हो जाता है।

पारिभाषिक शब्दों के सामान्य तथा तकनीकी अर्थों के बीच का संबंध पारदर्शी भी हो सकता है, अपारदर्शी भी। पारदर्शी शब्दों के तकनीकी अर्थ स्वतः स्पष्ट होते हैं, जैसे हिंदी शब्द 'स्तनधारी' (mammal), 'आकस्मिक अवकाश' (casual leave), नपुंसक लिंग' (neuter gender), 'स्त्रीरोगविज्ञान' (gynaecology), 'मनोविकार' (psychiatry), 'शरीर-रचना' (anatomy), 'रक्तस्राव' (haemorrhage), 'नेत्ररोगविज्ञान' (opthalmology), 'अस्थिरोगविज्ञान'(orthopaedics), 'प्रसूति' (obstetrics) और त्वचारोग विज्ञान (dermatology)। इनमें से हिंदी के शब्द अंग्रेज़ी के तकनीकी शब्दों की तुलना में अधिक पारदर्शी या स्वतः व्याख्यात हैं। इसके विपरीत कुछ पारिभाषिक शब्दों को बाह्य संरचना से उनके वास्तविक तकनीको अर्थ का स्पष्ट बोध नहीं होता। ऐसे शब्द अपारदर्शी (opaque) कहलाते हैं। व्यक्तियों के नाम पर बने पारिभाषिक शब्द प्रायः अपारदर्शी होते हैं, जैसे फारेनहाइट, वोल्टमीटर, एम्पियर आदि। कई पारिभाषिक शब्द मिथ्यानाम (misnomer) भी होते हैं, जो गलती से किसी भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हो जाते

हैं, जैसे 'gavial' शब्द वस्तुतः हिंदी के 'घड़ियाल' शब्द का अंग्रेज़ी लिप्यतरण है, लेकिन पहली बार गलती से 'r' को 'v' पढ़ लिया गया और बाद में इसी रूप में यह अज्ञानवश प्रयुक्त और प्रचलित हो गया। कई बार ऐसा भी होता है कि जिस समय पारिभाषिक शब्द बनाया जाता है उस समय वह शब्द अभीष्ट अर्थ या संकल्पना के अनुरूप होता है, लेकिन कालांतर में नई खोजों के फलस्वरूप उसकी संकल्पना में परिवर्तन या परिवर्धन हो जाता है, लेकिन रूढ़ हो जाने के कारण वह शब्द उसी रूप में चलता रहता है। उदाहरणार्थ 'malaria' शब्द लेटिन mal= 'bad' तथा aros= 'air' से मिलकर बना है। चूंकि तब यह माना जाता था कि मलेरिया का रोग गंदगी या 'गंदी हवा' से होता है, इसलिए इसे यह नाम दे दिया गया। बाद की खोजों से पता लगा कि यह बीमारी गंदगी से ना होकर मच्छर के काटने से होती है। फिर भी 'मलेरिया' शब्द ही चलता रहा।

सही अर्थों में देखा जाए तो बहुत कम पारिभाषिक शब्द अपनी संरचना के माध्यम से अपने तकनीको अर्थों को पूर्णता में व्यक्त कर पाते हैं, क्योंकि तकनीकी अर्थों की संपूर्ण विविधता को एक-दो शब्दों के भीतर समेट पाना संभव नहीं। सामान्यतः किसी तकनीकी संकल्पना के विभिन्न अर्थ-लक्षणों में से एक-दो प्रमुख लक्षणों को आधार मानकर संपूर्ण संकल्पना का नामकरण कर दिया जाता है। शेष अर्थ-लक्षण परिभाषाओं के माध्यम से प्राप्त किए जाते हैं। परिभाषा-सापेक्ष होने के कारण ही ये 'पारिभाषिक शब्द' कहलाते हैं।

2. शब्दावली का मानकीकरण

पारिभाषिक शब्दों के साथ मानकीकरण का प्रश्न अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है। यदि पारिभाषिक शब्द मानक नहीं हैं तो वे सही अर्थों में पारिभाषिक नहीं। मानकीकरण प्रक्रिया का पहला चरण है "रूपों की विविधता को कम से कम करना"। मानकता की स्थिति से पूर्व एक ही तकनीकी संकल्पना के लिए एक से अधिक शब्द या रूप प्रचलन में हो सकते हैं या एक शब्द के एकाधिक तकनीकी अर्थ हो सकते हैं। एक ही तकनीकी संकल्पना के लिए एक से अधिक शब्दों या शब्द-रूपों में से एक शब्द या शब्द-रूप का चयन मानकीकरण प्रक्रिया का पहला सोपान है। यह कोडीकरण की प्रक्रिया भी कहलाती है जिसके फलस्वरूप समान विषय-क्षेत्रों में काम करने वाले विशेषज्ञों के बीच, चाहे वे किसी भी दूरस्थ क्षेत्र या देश में हों, सफल संप्रेषण संभव होता है। इससे शब्दावली में समरूपता आती है। इसका प्राप्य लक्ष्य है : "एक शब्द एक अर्थ"। उदाहरण के लिए 'Director' शब्द के लिए विभिन्न, हिंदी भाषी क्षेत्रों में 'निदेशक', 'निर्देशक ', 'संचालक', तथा 'प्रबंधक' शब्दों का प्रयोग मिलता हैं। इसी प्रकार 'Engineer'शब्द के लिए 'इंजीनियर', 'अभियंता', और 'यंत्री' शब्द प्रयोग में मिलते हैं। पर्यायों की इस विविधता के बीच एक अर्थ के लिए एक शब्दरूप का चयन या निर्धारण शब्दावली मानकीकरण प्रक्रिया का पहला सोपान है। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली

के निर्माण का कार्यक्रम इसी प्रक्रिया का एक अंग है जिसका एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है पारिभाषिक शब्दावली के पर्यायों में यथासंभव समरूपता लाना।

भाषा-व्यवहार के अधिक से अधिक क्षेत्रों में इन शब्दों का व्यापक प्रयोग मानकीकरण प्रक्रिया का दूसरा चरण है जिसे विस्तारीकरण (elaboration) कहते हैं। विस्तारीकरण का तात्पर्य है "व्यवहार या प्रकार्य की विविधता को अधिक से अधिक बढ़ाना"। दूसरे शब्दों में, अभीष्ट तकनीकी अर्थों में शब्दों को रूढ़ कर देना या अनेक विकल्पों में से एक विकल्प का चयन करना ही मानकीकरण के लिए पर्याप्त नहीं। अधिक से अधिक व्यवहार-क्षेत्रों में इनका अभीष्ट तकनीकी अर्थों में प्रयोग भी उतना ही आवश्यक है। इनका प्रयोग-क्षेत्र जितना व्यापक होगा ये उतने ही अधिक मानक होंगे। इसी प्रक्रिया में इन शब्दों का प्रयोग-परीक्षण भी होता है जिससे इन्हें सामाजिक स्वीकृति या अस्वीकृति मिलती है। इसी प्रक्रिया के दौरान शब्दावली का पुनरीक्षण और संशोधन भी होता रहता है। शब्दों का निर्माण अपने में लक्ष्य नहीं है, बल्कि प्रयोग तक पहुँचने का पहला चरण है। नए शब्दों की सार्थकता उसके प्रयोग में है। यदि वे शब्द प्रयोग या प्रचलन में नहीं आ पाते तो चयन या व्याकरण की दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी वे निरर्थक हैं।

मानकीकरण की यह प्रक्रिया भाषा को अंतिम सोपान शैलीकरण (stylisation) की ओर ले जाती है। यह वह स्थिति है जब भाषा में तकनीकी शब्दावली और तकनीकी शैली दोनों का विकास होता है। यह तकनीकी शैली विशिष्ट व्यवहार-क्षेत्र से जुड़ी होती है और अपने शैली-वैशिष्ट्य के कारण अन्य व्यवहार-क्षेत्रों की भाषा-शैली से भेद बनाए रखती है, जैसे कार्यालय, उद्योग, पत्रकारिता, गणित, अर्थशास्त्र, आदि अलग-अलग विषय क्षेत्रों में प्रयुक्त विशिष्ट प्रकार की तकनीकी भाषा-शैली का विकास।

यहाँ एक सहज प्रश्न उठ सकता है कि केंद्रीय सरकार ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के माध्यम से विभिन्न विषयों के जो लाखों शब्द विकसित या निर्मित किए हैं, क्या वे मानक कहे जा सकते हैं? शब्दावली-निर्माण शब्दावली की मानकीकरण प्रक्रिया का पहला सोपान है। इस शब्दावली में से जो शब्द प्रचलन में आ चुके हैं वे मानक बन चुके हैं। जो शब्द प्रचलन में नहीं आए और जिनके स्थान पर अधिकांशतः अन्य शब्द प्रचलित हो रहे हैं, वे या तो मानकता की स्थिति को नहीं प्राप्त कर पाए हैं या अभी परिवीक्षाकाल से ही गुजर रहे हैं। लेकिन इस प्रकार के किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व दो बातें आवश्यक हैं :-

पहली, कई तकनीकी शब्द आम व्यवहार में गैरतकनीकी या अर्धतकनीकी अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, और यह संभव है कि इन गैरतकनीकी संदों में पाठक की सुविधा को प्रमुखता देते हुए आयोग

द्वारा प्रस्तावित तकनीकी शब्द के स्थान पर कोई अन्य निकटतम गैरतकनीकी पर्याय प्रयुक्त किया जा रहा हो। इस भिन्नता का एक कारण यह भी हो सकता है कि प्रयोक्ता को आयोग की प्रस्तावित शब्दावली का ज्ञान ही न हो या उसके पास यह शब्दावली उपलब्ध ही न हो।

दूसरी, उन विषयों में जिनमें भारतीय भाषाओं के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन या लेखन कार्य हो रहा है (जैसे सामाजिक विज्ञान, स्नातक स्तर पर विज्ञान), नवनिर्मित शब्दावली का प्रयोग-परीक्षण भी हो रहा है और वहाँ से प्राप्त फीडबैक का उपयोग शब्दावली को संशोधित करने या मानक रूप देने में सहायक हो रहा है। इसके विपरीत जिन विषयों में हिंदी के माध्यम से कोई अध्ययन-अध्यापन या लेखन-कार्य अभीष्ट मात्रा में नहीं हो रहा है (जैसे, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, प्रबंधविज्ञान, उच्चविज्ञान) उनमें नई शब्दावली का प्रयोग-परीक्षण संभव नहीं। जब इन क्षेत्रों में हिंदी संप्रेषण का माध्यम बनेगी तभी इनकी शब्दावली का प्रयोग-परीक्षण और मानकीकरण शुरू होगा।

आयोग द्वारा प्रस्तावित ऐसे पारिभाषिक शब्द जो अनुकूल व्यवहार-क्षेत्र के अभाव में प्रयोगसिद्ध या मानक नहीं बन पाए हैं, के संदर्भ - शब्दावली के रूप में अपना महत्व रखते हैं। इनकी उपस्थिति जहाँ एक ओर यह सुनिश्चित करती है कि लेखक या अनुवादक मॉडल शब्दावली के अभाव में अपनी-अपनी टकसाल खोलकर शब्दावली के क्षेत्र में अराजकता पैदा न करें, वहाँ यह भी सुनिश्चित करती है कि प्रयोग के स्तर पर इसकी उपयुक्तता सिद्ध न होने पर प्रयोक्ता प्रस्तावित शब्द या नार्म से हटकर उपयुक्त विकल्प प्रस्तुत करे। संभव है इस दौरान दो या अधिक पर्याय-विकल्प मान्यता के लिए संघर्षरत हों। इनमें से अंततोगत्वा कौन-सा पर्याय-विकल्य मान्य होगा, इसका अंतिम निर्णय प्रयोक्ता करेगा।

3. पारिभाषिक शब्दावली की विकास-प्रक्रिया

पारिभाषिक शब्दावली का विकास, भाषा को वैज्ञानिक और तकनीकी अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। नई तकनीकी प्रगति और वैज्ञानिक खोजें न केवल नई वस्तुओं और नए विचारों को जन्म देती हैं, बल्कि नए तकनीकी शब्दों-भाषारूपों और विशिष्ट अभिव्यक्ति-शैली को भी जन्म देती है। जो भाषा जितने अधिक व्यवहार-क्षेत्रों और ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं की सूक्ष्म संकल्पनाओं और तकनीकी अर्थों को अभिव्यक्त करने में समर्थ होगी वह भाषा सामाजिक और भाषिक दृष्टि से उतनी ही अधिक विकसित और समृद्ध होगी। किसी भी भाषा की यह सामर्थ्य इस बात पर निर्भर करती है कि उस भाषा के तकनीकी शब्दों और शैली रूपों का प्रयोग कितना मानक और व्यापक है।

किसी भी भाषा-समाज में पारिभाषिक शब्दों का विकास दो प्रक्रियाओं से संभव है: (i) प्राकृतिक विकास प्रक्रिया (ii) नियोजित विकास-प्रक्रिया।

(i) प्राकृतिक विकास-प्रक्रिया : तकनीकी (या पारिभाषिक) शब्दों का प्राकृतिक विकास उन स्थितियों में होता है जहाँ नई संकल्पनाओं को जन्म देने वाला व्यक्ति ही उनका नामकरण करता है। वह लेखों, पुस्तकों या व्याख्यानों में सर्वप्रथम उनका प्रयोग करता है। इस प्रकार हर नया पारिभाषिक शब्द अपने संदर्भ तथा परिवेश से जुड़कर और वाक्यों में प्रयुक्त होकर ही पाठक के सामने आता है, जहाँ सामान्यत: उसका आशय स्वत: प्रकट हो जाता है। इस प्रक्रिया में नए पारिभाषिक शब्दों की यात्रा वास्तविक प्रयोग से शुरू होती है। कुछ समय तक वे एक प्रकार के परिवीक्षाकाल से गुजरते हैं और यदि इस दौरान वे सामाजिक व्यवहार या प्रचलन में बने रहे तो उन्हें सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है और वे शब्दकोश में स्थान पा जाते हैं। जो पारिभाषिक शब्द इस दौरान प्रयोग में अपने को जीवित नहीं रख पाते वे स्वत: लुप्त हो जाते हैं और शब्दकोश तक नहीं पहुँच पाते। विकसित देशों की भाषाओं में, जहाँ ज्ञान-विज्ञान में मौलिक चिंतन होता है, इसी प्रक्रिया से तकनीकी शब्दावली का विकास होता है, जैसे अमरीका, इग्लैंड, फ्राँस, जर्मनी, जापान, रूस आदि। इन देशों की भाषाओं में केवल थोड़े- बहुत उन्हीं तकनीकी शब्दों का अनुवाद या पर्याय निर्धारण करने की आवश्यकता पड़ती है जो अन्य देशों में विकसित ज्ञान से संबद्ध है और जिनका नामकरण मूलत: उन्हीं देशों की भाषाओं में हुआ है।

किस प्रकार के नए शब्द सामाजिक स्वीकृति प्राप्त कर प्रचलन में आते हैं इसका पूर्वानुमान लगाना कठिन होता है, लेकिन फिर भी दो-तीन बातें इसे नि:संदेह प्रभावित करती है : जिस सिद्धांत तथा क्षेत्र में उसका प्रयोग हुआ है उसका सापेक्षिक महत्व, जिस संकल्पना व वस्तु के लिए उस शब्द का प्रयोग हुआ है, उसकी निजी सशक्तता तथा गुणवत्ता और जिस व्यक्ति द्वारा उसका प्रयोग हुआ है उसके व्यक्तित्व का अपनी नई नीति के संदर्भ में रूस के राष्ट्रपति गोर्बाचैव द्वारा प्रयुक्त दो शब्द glasnost और perestroica रातों-रात संचार माध्यमों के जरिए विश्वभर में प्रचलित हो गए।

(ii) नियोजित विकास-प्रक्रिया : जो देश अन्य देशों में विकसित ज्ञान-विज्ञान को अपनी भाषा में ग्रहण करना चाहते हैं उन्हें पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के लिए नियोजित विकास प्रक्रिया का सहारा लेना पड़ता है। यह प्रक्रिया वस्तुत: भाषा नियोजन का एक अंग है। भाषा नियोजन के दो पक्ष माने गए :

(क) भाषा का स्थितिपरक नियोजन (status planning) जिसमें सरकार विभिन्न सामाजिक प्रयोजनों और व्यवहार-क्षेत्रों के लिए भाषाओं की स्थिति या भूमिकाएं निर्धारित करती है; जैसे, संघ की राजभाषा तथा राज्यों की राजभाषाओं का निर्धारण, प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में माध्यम की भाषा/

भाषाओं का निर्धारण, शिक्षा पाठ्यक्रम में भाषाविशेष का अनिवार्य या ऐच्छिक अध्ययन संबंधी निर्णय, आदि।

(ख) भाषा का कायिक नियोजन (corpus planning), जिसमें भाषा की काया या कलेवर को समृद्ध करने के लिए अनेक विकास कार्यों का नियोजन किया जाता है; जैसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का निर्माण विकास, तकनीकी साहित्य की रचना, शब्दकोशों का निर्माण, भाषा रूपों का मानकीकरण, भाषा-शिक्षण विधियों का विकास, भाषा संबंधी कार्यों के लिए उपयुक्त मुद्रण, टेलिप्रिन्टर और कंप्यूटर प्रणाली का विकास आदि। भाषानियोजन एक सायास कार्य है जिसकी परिणति क्रियान्वयन में होती है। अतः नियोजित विकास को नियंत्रित तथा मॉनीटर करने के लिए एक सीमा तक सरकार या किसी संस्था को इसका दायित्व वहन करना पड़ता है (जो स्थिति प्राकृतिक विकास-प्रक्रिया पर लागू नहीं होती)। भाषा-नियोजन सरकार द्वारा किसी राजशासन में भाषा की संरचना और प्रकार्यात्मक भूमिका दोनों का विधान करने के लिए किया गया प्रयत्न है।

इस प्रकार की विकास प्रक्रिया में अन्य भाषाओं में विकसित पारिभाषिक शब्दों के लिए अपनी भाषा में उपयुक्त पर्यायों का निर्माण या निर्धारण करने की आवश्यकता पड़ती है। इसमें एक सीमा तक अनुवाद पद्धति का भी सहारा लिया जाता है। इस प्रक्रिया में तकनीकी पर्याय तथा मूल संकल्पना के बीच प्रायः सीधा संबंध नहीं हो पाता, क्योंकि मूल संकल्पना और पर्याय के बीच एक अन्य भाषा का शब्द (मध्यस्थ घटक) होता है। भारतीय भाषाओं के संदर्भ में देखें तो अंग्रेजी वह मध्यस्थ घटक है। शब्द-निर्माण के समय व्यक्ति प्रायः सीधे मूल संकल्पना के लिए नहीं, बल्कि अंग्रेज़ी शब्द के लिए या अंग्रेज़ी शब्द द्वारा ध्वनित अर्थ के लिए पर्याय निर्धारित करता है। मूल संकल्पना का जो अंश अंग्रेज़ी शब्द द्वारा प्रत्यक्षतः प्रकट नहीं होता वह अस्वीकृत हो सकता है। इस प्रकार मध्यस्थ भाषा की यह स्थिति जितनी सुविधाजनक है उतनी ही बाधक भी। इससे यदि कोई सुविधा है तो यह कि मूल संकल्पना को स्वयं उद्घाटित करने का कष्ट उठाए बिना हम मध्यस्थ भाषा के सहारे इच्छित अर्थ तक पहुँच जाते हैं। इसके कुछ दुष्परिणाम भी हैं। लौकिक जगत या वस्तु को देखने का हर भाषा-समाज का एक विशिष्ट दृष्टिकोण होता है और उसी के अनुसार वह संकल्पनाओं को विभक्त कर एक विस्तृत अर्थ-जाल तैयार करता है। इससे हर भाषा की अपनी एक प्रकृति विकसित होती है जिसके अनुरूप उस भाषा में भावों को व्यक्त करने का एक खास प्रतिरूप स्थिर होता चला जाता है। (उदाहरणार्थ, हिंदी की एक संकल्पना 'नमस्कार' अंग्रेजी में कम से कम पाँच संकल्पनाओं में विभक्त है -Good Morning, Good Day, Good Afternoon, Good Night, Good Bye)। अतःपर्याय-निर्धारण की प्रक्रिया में जाने-अनजाने अंग्रेज़ी के हर शब्द के लिए पारिभाषिक शब्दों का शाब्दिक हिंदी पर्याय ढूँढ़ने या निर्धारित करने की प्रवृत्ति प्रमुख हो जाती है जिससे प्रयोग में कृत्रिमता आने की संभावना रहती है। उदाहरणार्थ,

अंग्रेज़ी में एक अर्थ-परिवार के हैं : acceptance, agreement, concord, accord, approval, sanction, consent, assent. इनमें से कुछ शब्दों के अर्थ कुछ शब्द तकनीकी संदर्भो में एक-दूसरे से भिन्न हैं, लेकिन गैरतकनीकी या अर्धतकनीकी संदर्भो में कुछ शब्द परस्पर एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हैं, लेकिन जब गैरतकनीकी संदों में भी इनके लिए भिन्न हिंदी पर्यायों का प्रयोग होता है तो भाषा में कुछ कृत्रिमता आ जाती है, जैसे "आपकी छुट्टी संस्वीकृत हो गई है। (your leave has been sanctioned).

नियोजित विकास प्रक्रिया प्राकृतिक विकास प्रक्रिया से एक और दृष्टि से भी भिन्न है। इसमें सामान्यतः पारिभाषिक शब्द प्रयोगसिद्ध होने से पूर्व ही शब्दसंग्रहों तथा कोशों में स्थान प्राप्त कर लेते हैं और तब उसके बाद उनके प्रयोग का आग्रह होता है जो प्रायः प्रयोक्ताओं के बीच अपरिचित होने के कारण शीघ्र प्रचलन में नहीं आ पाते। यह प्रक्रिया एक प्रकार से प्राकृतिक विकास-प्रक्रिया के विपरीत है जहाँ प्रयोगसिद्ध होने के बाद ही शब्द शब्दकोश में स्थान पाते हैं।

4. शब्द-निर्माण की विधियाँ

जब किसी संकल्पना के लिए नए शब्द की आवश्यकता होती है तो हमेशा नए शब्द का निर्माण नहीं किया जाता। पहला प्रयास यह होता है कि यथासंभव भाषा-भंडार में उपलब्ध ऐसे शब्द का चयन किया जाए जो स्वतः परिचित या सुस्पष्ट हो, नई संकल्पना या वस्तु के गुण-धर्म का अधिक-से-अधिक बोध कराने में समर्थ हो या जिससे धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि के योग से इच्छित अर्थ बोध कराने वाला शब्द निर्मित किया जा सके। इस प्रक्रिया में कभी विद्यमान शब्द के अर्थ को विस्तृत भी करना पड़ सकता है और कभी संकुचित भी। हिंदी में भी तकनीकी शब्दावली के निर्माण में इन्हीं विधियों का प्रयोग किया गया है जो इस प्रकार हैं:-

क. अर्थ-विस्तार : कभी-कभी पहले से ही उपलब्ध कुछ शब्दों को जो निकटस्थ अर्थ का बोध कराते हों, नए तकनीकी अर्थ के लिए भी रूढ़ कर दिया जाता है। इस स्थिति में वे शब्द पुराने तथा नए दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होते हैं जिनका अर्थभेद संदर्भ से ही स्पष्ट होता हैं; जैसे बिजली, आकाशवाणी, विमोचन, लाभांश आदि।

ख. अर्थ-संकोच : कभी-कभी भाषा के शब्द-भंडार से ऐसे शब्दों का चयन कर लिया जाता है जो निकटस्थ लेकिन व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं या पहले प्रयुक्त होते थे। ऐसे शब्दों के अर्थों को संकुचित कर किसी विशेष तकनीकी अर्थ के लिए रूढ़ कर दिया जाता है, जैसे संसद (Parliament), जनगणना (census)। संस्कृत में 'संसद का प्रयोग प्रत्येक की सभा के लिए होता था। इसी प्रकार

जनगणना' का सामान्य अर्थ जनों की गणना करना है, लेकिन जनगणना अब census मात्र के लिए रूढ़ हो गया है।

ग. अर्थ-सृर्जन : कभी-कभी उपयुक्त शब्द उपलब्धन होने के कारण पूर्णतः नए शब्दों का सृजन करना पड़ता है। अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच में, जहाँ विद्यमान शब्दों में ही नए अर्थों का सृजन किया जाता है, इस प्रक्रिया में नए शब्दों का सृजन होता है जिनमें अभीष्ट अर्थ आरोपित कर दिए जाते हैं। नए शब्दों का सृजन प्रायः धातु या शब्द में प्रत्यय तथा उपसर्ग लगाकर, या समस्त पद बनाकर किया जाता है, जैसे संकाय (faculty), नसबंदी, सर्वहारा, विमान- परिचारिका, परियोजना (project), आस्थगन (deferment), अभियंता (engineer), दूरदर्शन, आदि।

घ. शाब्दिक अनुवाद : कुछ तकनीकी शब्द मूल या मध्यस्थ भाषा से अनुवाद द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। यद्यपि इस प्रकार का अनुवाद, अनूदित भाषा के शब्द के शब्दभंडार से मेल नहीं खाता, लेकिन यदि कोई भाषा-समाज मध्यस्थ भाषा का सामूहिक स्तर पर प्रयोग करता है तो इस प्रकार का शाब्दिक अनुवाद सहज लगने लगता है, जैसे, श्वेतपत्र, लालफीताशाही, वायुप्रदूषण, स्वर्णजयंती, कालाधन, संदेहलाभ (benefit of doubt), आदि।

ङ. अंग्रेजी शब्दों का ग्रहण : अंतराष्ट्रीय शब्दों को या ऐसे शब्दों को जो हिंदी में रच-पच गए हैं और अत्यधिक प्रचलन में हैं, यथावत् ग्रहण कर लिया जाता है; जैसे, बैंक नोटिस, बोनस, स्टेशन, बल्ब, हीटर, रेलवे आदि। अंग्रेज़ी से गृहीत कुछ शब्दों को यथावत् स्वीकार न कर उनका उच्चारण व लेखन की दृष्टि से हिंदीकरण कर दिया जाता है; जैसे, तकनीकी, अकादमी, अंतरिम, त्रासदी, कामदी, एवेलांश (avalanche) आदि।

च. मिश्र या संकर पद्धति : बोधगम्यता तथा सुविधा को ध्यान में रखते हुए कभी-कभी अंग्रेज़ी के शब्दों में हिंदी के प्रत्ययों को जोड़कर भी शब्द बनाए गए हैं और कभी-कभी आधे अंग्रेज़ी और आधे हिंदी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया हैं; जैसे वोल्टता (voltage), रजिस्ट्रीकृत, कार्बनीकरण, शेयरधारक, कोडीकरण आदि। इस प्रकार के शब्द संकर शब्द भी कहलाते हैं। अनुभव से यह पता चलता है कि हिंदी भाषी समाज ने इस प्रकार के मिश्रण को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया और आज इनके स्थान पर 'वोल्टेज' 'रजिस्टर्ड' या 'पंजीकृत' 'अंशधारक' (या शेयर होल्डर) शब्दों का प्रयोग ही अधिक प्रचलित है।

शब्दावली और प्रयोग

शब्द-निर्माण की सार्थकता उसके प्रयोग में है। प्रयोग में आने पर ही शब्दों का मूल्यांकन और परीक्षण होता है और उसकी शक्ति और दुर्बलता सामने आती है। शब्दों का परिमार्जन तथा उनकी

कमियों की पूर्ति भी प्रयोग-प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही होती है। इस प्रकार निर्माण से प्रयोग तक की यात्रा पूरी करने के बाद ही पारिभाषिक शब्द सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करते हैं। शब्द या पर्याय निर्माण स्वयं में बहुत कठिन कार्य नहीं है, कठिन कार्य है उन्हें प्रचलन में लाना और उन्हें सामाजिक स्वीकृति दिलाना। इसके लिए शब्दों की प्रयोग- आवृत्ति आवश्यक है।

शब्द, स्वंय में न कठिन होते हैं न सरल। वे या तो परिचित होते है या अपरिचित। परिचित शब्द हमें सरल लगते हैं, अपरिचित शब्द कठिन। यदि किसी शब्द से हमारा साक्षात्कार बार-बार कई माध्यमों से होता है तो वह स्वतः हमारे निजी शब्द भंडार का अंग बन जाता है और सरल लगने लगता है। समाचारपत्र, पुस्तक, रेडियो, दूरदर्शन, व्याख्यान आदि के माध्यम से बार-बार हमारे सामने आए अनेक तथाकथित कठिन या अपरिचित शब्द आज हमारे लिए सहज हो गए हैं, जैसे 'पर्यावरण' 'वायुप्रदूषण' 'अंतरिक्ष' 'विधानसभा' 'संसद' 'अभियंता' 'पंजीकरण' आदि। भाषा की सहज प्रकृति के अनुकूल बने पर्याय अपेक्षाकृत अधिक सरलता से ग्राह्य । होते हैं। जिन संकल्पनाओं के लिए पहले सेही किसी अन्य भाषा (जैसे, भारत में अंग्रेज़ी) के शब्द काफ़ी समय से प्रचलित हो चुके हों, उनके स्थान पर अपनी भाषा के नए शब्दों को प्रयोग में ले आना प्रायः मुश्किल होता है। कभी-कभी दूसरी भाषा से प्राप्त तकनीकी शब्दों का प्रयोग करने के लिए प्रयोक्ता अपनी भाषा में पर्याय बनने तक का इंतजार नहीं कर पाता और इस प्रकार समय पर अपनी भाषा के पर्याय उपलब्ध न होने के कारण वह मूल शब्द का ही प्रयोग करने लग जाता है जो थोड़े समय में पूर्ण प्रचलन में आ जाता है।

(विज्ञान गरिमा सिंधु पत्रिका के पूर्व अंक के सौजन्य से)

वनस्पतिविज्ञान मूलभूत शब्दावली

English	Hindi
Abaxial	अपाक्ष
Abiotic	अजैव, जीवेतर
Abscission	विलगन
Absorption	अवशोषण
Absorptive spectrum	अवशोषी स्पेक्ट्रम
Acantha	कंट
Acarpous	1.अनंडपी 2.अफली
Acclimatization	पर्यनुकूलन
Accumulator plant	धातु-संचयी पादप
Achene	ऐकीन
Achlamydeous	अपरिदली
Acicular	सूच्याकार
Acolpate	खाँच रहित
Acropetal	अग्राभिसारी
Actinostele	अरीय रंभ
Acute	निशिताग्र, तीव्र
Adaptability	अनुकूलनशीलता
Adaxial	अभ्यक्ष
Adelphogamy	जनक-संतति युग्मन
Adenosine triphosphate (ATP)	ऐडेनोसिन ट्राइफॉस्फेट

Adenovirus	ग्रंथिविषाणु, एडेनोवाइरस
Adnation	संलग्नता
Aeropalynology	वायु-परागाणु विज्ञान
Adsorption	अधिशोषण
Adoriferous	गंधयुक्त, गंधग्राही
Adventitious	अपस्थानिक
Aecidiospore	इसीडियम बीजाणु, इसीडियोस्पोर
Aeroplankton	वातप्लवक
Afforestation	वनरोपण
Agamogenesis	अलिंगीजनन
Agamospermy	अनिषेकबीजता
Agar	ऐगार
Agglomeration	समूह, समूहन, संपिंडन
Agglutination	समूहन, आश्लेषण
Agrostology	घास-विज्ञान
Aheliotropic	सूर्यापवर्ती
Airborne	वायुवाहिता
Akinete	निश्चेष्ट (बीजाणु)
Albino	वर्णकहीन (जीव)
Alcoholic fermentation	ऐल्कोहॉली किण्वन
Algal bloom	शैवाल प्रस्फुटन
Alkaloid	ऐल्केलॉइड

Allele	विकल्पी, युग्मविकल्पी
Allelopathy	युग्मविकल्पी अपकारिता. एलीलोपैथी
Amphistomatic	उभयरंध्री
Amphithecium	बहिस्थीसियम, बहि:स्तर
Amphitropous	अनुप्रस्थ (बीजांड), ऐम्फिट्रॉपस
Amphivasal	पोषवाह केंद्री, फ्लोएम केंद्री
Anaerobe	अवायुजीव, अनॉक्सीजीव
Anatropous	प्रतीप (बीजांड)
Androgynophore	पुंजायांगधर
Anemophilous	वायुपरागित
Aneuploidy	असुगुणिता
Anisogamy	असमयुग्मकता
Annual ring	वार्षिक वलय
Anomalous secondary growth	असंगत द्वितीयक वृद्धि
Antherozoid	पुंमणु
Antibiotic	प्रतिजैविक, ऐन्टिबायोटिक
Anticoagulant	प्रतिस्कंदक
Anticodon	प्रतिप्रकूट, प्रतिकोडॉन
Antigen	प्रतिजन
Antipodal cell	प्रतिव्यासांत कोशिका
Antiseptic	पूतिरोधी
Antitoxin	प्रतिआविष

Aplanogamete	अचल युग्मक
Apomixis	असंगजनन
Apospory	अपबीजाणुता
Aqua-culture	जल-कृषि
Arboreal	1.वृक्षीय 2. कृक्षवासी
Arbovirus	संवाविषाणु, संधिपाद वाहित विषाणु, आर्बोवाइरस
Aril	बीजचोल
Ascent of sap	रसारोहण
Ascolichen	ऐस्कोलाइकेन
Aseptic	1.पूतिहीन, अपूतित 2. अजर्म
Asymbiotic	असहजीवी
Asynapsis	असूत्रयुग्मन
Atrophy	क्षीणता
Autolysis	स्वलयन
autopolyploidy	स्वबहुगुणिता
Autosome	अलिंगसूत्र
Autotroph	स्वपोषी
Autoecious	एकाश्रयी
Autumn wood	शरद दारु
Auxotroph	विपोषी
Axile placentation	स्तंभीय बीजांडन्यास
Back cross	1.प्रतीप संकर 2. प्रतीप संकरण

Back mutation	प्रतीप उत्परिवर्तन
Bacterioid	जीवाणुसम
Bacteriophage	जीवाणुभोजी
Bagasse	खोई
Balanced lethal	संतुलित घातक
Base pair	क्षारक युग्म
Basidiolichen	बेसिडियोलाइकेन
Basipetal	तलाभिसारी
Benthos	नितलक
Bicarpellary	द्विअंडपी
Bicollateral bundle	उभयपोषवाही पूल
Biflagellate	द्विकशाभिक
Bilabiate	द्वि-ओष्ठी
Binary fission	द्वि-खंडन
Binomial nomenclature	द्विपदनाम-पद्धति
Biodegradation	जैवनिम्नीकरण
Biodiversity	जैवविविधिता
Biological clock	जैव घड़ी, जैव नियतकालिकता
Biological oxygen demand	जैविक ऑक्सीजन मात्रा
Biome	जीवोम, बायोम
Bioremediation	जैव उपचारण
Bioshere	जैवमंडल

Biota	जीवजात
biotype	जीवप्ररूप
Bivalent chromosome	युगली गुणसूत्र
Blight	1.अंगमारी 2.शीर्णन
Blister	फफोला
Bloom	पुष्पपुंज, फुल्लिका, फूलना, खिलना
Blue-green algae	नील-हरित शैवाल
Bordered pit	परिवेशित गर्त
Budding	1.मुकुलन 2.चश्मा लगाना
Buffer solution	उभयरोधी विलयन
Bulbiform	बल्बरूपी
Bulbil	पत्रप्रकलिका
Bundle sheath	पूलाच्छद
Caducous	आशुपाती
Calvin cycle	कैल्विन, चक्र
Campanulate	घंटाकार
Capillitium	तंतुजाल, कैपिलिशियम
Capitulum	मुंडक
Capsule	संपुटिका, कैप्स्यूल
Carcinogen	कैन्सरजन
Carnivorous	मांसाहारी
Carpogonium	कार्पोगोनियम

Carpophore	फलधर
Carposporophyte	कार्पोबीजाणुद्भिद्
Caruncle	बीजचोलक, कैरंकल
Catkin	नतकणिश, कैटकिन
Cauline	स्तंभिक
Centromere	गुणसूत्रबिंदु, सेंट्रोमियर
Centrosome	तारककाय, सेंट्रोसोम
Chalaza	निभाग, कैलाजा
Chalazogamy	निभागीयुग्मन
Chemoautotroph	रसो-स्वपोषी, रसो-स्वपेषित
Chemonastic	रसो-अनुकुंचनिक
Chemosynthesis	रसोसंश्लेषण
Chemotaxis	रसो-अनुचलन
Chitin	काइटिन
Chlamydospore	क्लैमिडोबीजाणु
Chromatograph	वर्णलेख
Chromonema	वर्णसूत्र
Circinalis	कुंडलित
Clamp connection	क्लैम्प बंधन
Cleistogamous	अनुन्मील्य-परागणी
Climax	चरम अवस्था
Clonal selection	क्लोनीय वरण

Closed bundle	अवर्धी पूल
Coagulation	स्कंदन
Coccus	गोलाणु
Codominance	सहप्रभाविता
Coenobium	समंडल
Coenocyte	संकोशिकी
Coenogamete	संयुग्मक
Collateral bundle	बहि:फ्लोएमी पूल, बहि:पोषवाही पूल
Columella	स्तंभिका
Commensalism	सहभोजिता
Companion cell	सहचर कोशिका
Compatibility	1.संगतता 2.निषेच्यता संयोज्यता
Composite fruit	संग्रथित फल
Conidiophore	कोनिडियमधर
Coniferophyte	कोनीफरोद्मिद्
Conjoint bundle	संयुक्त पूल
Conjugating tube	संयुग्मन नलिका
Contamination	संदूषण
Coralloid	प्रवालाभ
Cork	काग, कार्क
Corm	घनकंद, कॉर्म
Coronate	किरीटाकार, किरीटी

Corymb	समशिख, कोरिम्ब
Crista	क्रिस्टा
Cross fertilization	पर-निषेचन
Cross pollination	पर-परागण
Crossing over	विनिमय
Crozier	क्रोजियर
Cruciform (corolla)	क्रॉसरूप, क्रॉसरूपी (दलपुंज)
Crustose	पर्पटीमय
Cryoplankton	हिमप्लवक
Cultvar	कृषिजोपजाति
Cupule	प्यालिका
Cuticular	क्यूटिकली, उपचर्मी उपत्वची
Cyathium	सास्थियम
Cycadophyte	साइकैडोद्भिद्
Cymose	ससीमाक्षी
Cypseal	सिप्सेला
Cytochrome	साइटोक्रोम
Cytokinin	साइटोकाइनिन
Cytotoxin	कोशिका आविष
Damping off	आर्द्रपतन
Dark reaction	अप्रकाशिक अभिक्रिया
Day neutral plant	दिवसनिरपेक्ष पादप

Deamination	विऐमीनीकरण, विऐमीनन
Deciduous	पतझड़ी, पर्णपाती
Decumbent	शयान
Decussate	क्रॉसित
Deliquescence	1. लीनाक्षता 2. प्रस्वेदन
Deme	समुदय, डीम
Dendrochronology	वृक्षकालानुक्रमण, द्रुम कालानुक्रमण
Dendroid	वृक्षाम, द्रुमाभ
Denitrification	विनाइट्रीकरण
Dessication	जलशुष्कन, शुष्कन
Diad	द्विक
Dihybrid	द्विसंकर
Dioecious	पृथक्लिंगी
Diplobiont	द्विविधजीवी
Diplophase	द्विगुणित प्रावस्था
Diplotene stage	द्विपट्ट अवस्था
Diploxylic	द्विदारूक
Disc florect	बिंब पुष्पक
Disinfectant	रोगाणुनाशी, संक्रमणहारी
Disjunction	वियोजन
Diurnal	1.दिवा, दिवाचर 2.दैनिक
DNA blotting	डी.एन.ए.शोषण, डी.एन.ए. ब्लॉटिंग

DNA fingerprinting	डी.एन.ए. अंगुली छाप, डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग
Dorsifixed	पृष्ठालग्न
Dorsiventral	पृष्ठाधर
Downy mildew	मृदुरोमिल आसिता
Drupe	अष्ठिल (फल)
Early wood	अग्रदारु
Ecad	पारिज, इकैड
Echinulate	लघुकंटकी
Ecocline	पारिप्रवणता
Eco-friendly	पारि-हितैषी
Ecosystem	पारितंत्र, पारिस्थितिक तंत्र
Ecotone	इकोटोन, संक्रमिका
Edaphic	मृदीय
Edaphon	मृदाजीवी
Effluent	बहि: स्त्राव
Egg apparatus	अंड उपकरण
Elaioplast	तेलद्लवक, इलाओप्लास्ट
Elaiosome	तेलांग
Elater	इलेटर
Elaterophore	इलेटरधर
Embryo sac	भ्रूण-कोश
Endarch	अंत:आदिदारुक

Endemism	विशेषक्षेत्रिता, स्थानिकता
Endobiotic	जीवांतर्वासी
Endomitosis	अंत: सूत्रण, अंत: सूत्रीविभाजन
Endoplasmic reticulum	अंतर्द्रव्यी जालिका
Endosmosis	अंत: परासरण
Endosperm	भ्रूणपोष
Endothecium	अंतस्थीसियम
Eocene	आदिनूतन, इओसीन
Ensiform	खड्गरूप
Entomophilous	कीट-परागित
Ephemeral	अल्पकालिक
Epiblema	मूलीय त्वाचा
Epicalyx	बहिर्दलपुंज, एपिकैलिक्स
Epicarp	बाह्यफलभित्ति
Epicole	उपरिवासी
Epigeal	भूम्युपरिक
Epigynous	जायांगोपरिक
Epilose	विरोमी
Epinasty	अध:कुंचन
Epistasis	1.प्रबलता 2.अध्यंतरण
Epithecium	अधिथीसियम
Ergastic substance	कोशिकीय अजैव पदार्थ

Ergotism	अर्गट रोग
Etaerio	पुंज
Etiolated	पांडुरित
Etiology	हेतुविज्ञान
Eucarpic	अंशकायफलिक
Euchromatin	यूक्रोमैटिन
Eurypalynous	विविधपरागी
Eusporangiate	सुबीजाणुधानीय
Evergreen forest	सदापर्णी वन, सदाबहार जंगल
Exarch	बाह्य-आदिदारुक
Exergonic	ऊर्जाजनिक
Exindusiate	सोरसछद-हीन
Exosomosis	बहि: परासरण
Exospore	बहिर्बीजाणु
Exotic	विदेशी, विदेशज
Ex-stipulate	अननुपर्णी
Extinct	विलुप्त
Extrastelar	रंभबाह्य
Extrachromosomal	गुणसूत्रबाह्य
Extrafascicular	पूलबाह्य
Extrorse	बहिर्मुखी
Exudate (exude)	1.रिसाव, नि:स्राव (सं) 2.नि:स्रव होना, रिसना

	(क्रि)
Eye sport	दृक् बिंदु
Fairy ring	छत्रक वृत्त
False septum	आभासी पट
Fascicular cambium	पूलीय, एधा
Fecundity	1.बहुप्रजता 2.जननक्षमता
Fibrous root	झकड़ा जड़
Filament	1.सूत्र, तंतु 2.पुंतंतु (पराग कोश) 3.शैवाल तंतु
Filial	संतानीय
Filicoid	प्रपर्णाभ, फर्नाभ
Filiform	तंतुरूप
Fimbriate	झालरदार
Flagelliform	कशाभरूपी
Flavoxanthin	फ्लैवोजैन्थिन
Flocculation	ऊर्णन
floret	पुष्पक
Foliaceous	पर्णिल, पर्णाकार
Foliose	पर्णिल
Follicle	1.गर्त 2.पुटक
Food chain	खाद्य श्रृंखला
Food vacuole	खाद्यधानी, खाद्य रसधानी
Food web	आहार जाल

Forage	चारा
Fossilization	जीवाश्मीभवन
Free central placentation	मुक्त-अक्षीय बीजांडन्यास
Free energy	मुक्त ऊर्जा
Fucoxanthin	फ्यूकोजैन्थिन
Funicle	बीजांड-वृंत, रज्जुक
Funiculus	बीजांड-वृंत
Furrow	खातिका, खांचा, खांच,
Fusiform	तर्कुरूप
Gametophore	युग्मकधर
Gamopetalous	संयुक्तदली
Genetic code	आनुवंशिक कूट
Genetic drift	आनुवंशिक विचलन
Genetic incompatibility	आनुवंशिक असंगतता
Genetic isolation	आनुवंशिक विलगन
Genome	संजीन, जीनोम
Genotype	जीनप्ररूप
Germ pore	जनन-छिद्र
Glabrous (=glabrate)	अरोमिल
Glaucous	नीलाभ
Globule	1.गोलिका 2. पुंधानी
Glomerule	ग्लोमेरूल

Glume	तुष
Glycoside	ग्लाइकोसाइड
Golgi apparatus	गॉल्जी उपकरण
G-phase (growth phase)	जी-प्रावस्था (वृद्धि प्रावस्था)
Gram stain	ग्रैम अभिरंजक
Gram –negative	ग्रैम-ऋणात्मक
Gram- positive	ग्रैम धनात्मक
Grana (granum)	ग्रैना (ग्रैनम)
Green house effect	1.हरितगृह प्रभाव, पौधाघर प्रभाव, ग्रीन हाउस प्रभाव
Green manure	हरी खाद
Ground meristem	भरण विभज्योतक
Ground tissue	भरण-ऊतक
Growth cure	वृद्धि -वक्र
Growth hormone	वृद्धि हॉर्मोन
Growth ring	वृद्धि वलय
Guard cell	द्वार-कोशिका
Gully erosion	गली अपरदन
Guttation	बिंदुस्राव
Gynandrium	पुंजायांगी स्तंभ
Gynandrophore	पुंजायांगधर
Gynandrous	पुंजायांगी

Gynostegium	पुंवर्तिकाग्रछत्र, गाइनोस्टीजियम
Haematoxylin	हेमैटॉक्सिलिन
Half life	अर्ध आयु
Halic	लवणी, हैलिक
Halosere	लवणक्रमक
Hanging drop culture	निलंबी बिंदु संवर्धन
Haplodiplobiontic	समद्विगुणिता-गुणित
Haplont	अगुणितक
Hardening	कठोरण, दृढ़ीयन
Haustorium	चूषकांग
Heartwood	अंत:काष्ठ
Heliophyte	आतपोद्भिद्
Heliotrospism	सूर्यानुवर्तन, आतपानुवर्तन
Hemiangiocarpous	अनावृतावृत-हाइमिनियमी
Hemicellulose	हेमीसेलुलोस
Herbivore	शाकाहारी
Herkogamy	स्व-अनिषेच्य उभयलिंगिता
Hermaphrodite	उभयलिंगी
Heterocyst	हेटेरोसिस्ट
Heteroecious	भिन्नाश्रयी
Heterokaryon	विषमकेंद्रक
Heteromerous	विषमावयवी

Heterosis	संकरओज, हेटरोसिस
Heterostyly	विषमवर्तिकता
Heterotrichous	1.विषम शूक 2.विषम तंतुक
Heterotroph	परपोषित
Hexaploid	षट्गुणित
Hill reaction	हिल अभिक्रिया
Hilum	नाभिका
Hispid	दृढ़लोमी
Holocarpic	पूर्णकायफलिक
Homologous pair	समजात युग्म
Homospory	समबीजाणुता
Homothallic	समथैलसी
Homozygous	समयुग्मजी
Hormogone	हॉर्मोगोन
Hormone	हॉर्मोन
Host	परपोषी, पोषी
Humus	ह्यूमस
Husk	भूसी
Hybrid vigour	संकर ओज
Hybridization	संकरण
Hydroponics	जल-संवर्धन
Hymenium	हाइमीनियम

Hypanthodium	हाइपैन्थोडियम
Hypertonic	अतिपरासारी
Hypertrophy	अतिवृद्धि
Hypogeal	अधोभूमिक
Hypothecium	अधस्थीसियम, हाइपोथीसियम
Imbricate	कोरछादी
Immunity	प्रतिरक्षा
Impermeability	अपारगम्यता
In situ	स्वस्थाने
In vitro	पात्रे
In vivo	जीवे
Incompatibility	1.असंगतता 2.अनिषेच्यता
Incomplete dominance	अपूर्ण प्रभाविता
Indehiscent	अस्फुटनशील
Independent assortment	स्वतंत्र अपव्यूहन
Indusium	सोरसछद, इंडूशियम
Inferior ovary	अधोवर्ती अंडाशय
Inflorescence	पुष्पक्रम
Infundibulum	कीपक
Inhibition	संदमक
Inoculation	संरोपण, निवेशन
Insectivorous plant	कीटाहारी पादप

Intercalary	अंतर्वेशी, अंतर्विष्ट
Interfascicular	अंतरापूलीय
Interferon	इन्टरफेरॉन
Internode	पर्व
Interspecific	अंतराजातीय
Intracellular	अंत: कोशिक
Intrafascicular	अंत: पूलीय
Introrse	अंतर्मुखी
Involucre	1.सहपत्रचक्र 2.परिवेष्टन 3.परिचक्र
Isomorphic	समरूपी
Isogamete	समयुग्मक
Isokont	समकक्षशाभिक
Isotonic	समपरासारी
Isotope	समस्थानिक
Isozyme	समएन्जाइम, आइसोजाइम
Karyotype	केंद्रकप्ररूप, गुणसूत्रप्ररूप
Kernel	गुठली, अष्टि
Kinetochore	काइनेटोकोर
Kreb cycle	क्रेब चक्र
Laggard	मंदपक्व
Lamarckism	लामार्कवाद
Lamella	पटलिका

Lanate	लोमश, बालदार
Late wood	पश्चदारु
Latent period	प्रसुप्त अवधि
Laticiferous	लैटेक्सधर
Layring	1.परतन 2.दाब लगाना
Leaching	निक्षालन
Leaf blade	पर्ण फलक
Leaflet	1.पर्णक 2.पत्रक
Lectotype	चयनप्ररूप
Leghaemoglobin	लेगहीमोग्लोबिन
Lenticel	वातरंध्र
Leptophyll	तनुपर्ण
Lesion	विक्षत
Lateral conjugation	पार्श्व संयुग्मन
Leucoplast	अवर्णी लवक ल्यूकोप्लास्ट
Liana	कठलता
Lichen	लाइकेन
Life form	जीव रूप
Ligniform	काष्ठरूप
Ligulate	जीभिकाकार
Ligule	जीभिका
Limnetic	सरोवरी, सरोजीवी

Lineage	वंश परंपरा
Liposome	वसाकाय
Lithophyte	शैलोद्भिद्
Lithosere	शैलक्रमक
Litoral (littoral)	वेलांचली
Locule	पालिका
Loculicidal	कोष्ठक
Locus	विस्थल
Lomentum	लोमेन्टम
Long-day plant	दीर्घ प्रदीप्तिकाली पादप
Lophotrichous	गुच्छकशाभी, दीर्घकशाभी
Lotic	1.सरित्जीवी 2.सरित
Lysigenous cavity	लयजात गुहिका
Macrocyclic	दीर्घचक्री
Lyrate	बीणाकार, लायररूपी
Mangrove	गरान, मैंग्रोव
Manoxylic	विरलदारुक
Maternal inheritance	मातृक वंशागित
Matrix potential	आधात्री विभव
Megasporangium	गुरुबीजाणुधानी
Melanin	मेलानिन
Mendel's law	मेन्डेल-नियम

Mericarp	फलांशक
Meristele	मेरीस्टील
Meristem	विभज्योतक
Mesarch	मध्यादिदारुक
Mesocarp	मध्यफलभित्ति
Mesophytic	समोद्भिद्
Mesospore	मध्य चोल, मध्यबीजाणु
MessengerRNA	दूत आर.एन.ए.
Metachromatic	1.विविधरंजनीय 2.विविधरंजक
Metaphase	मध्यावस्था
Metastasis	उपापचय
Metaxenia	परागाणु प्रभाव
Metaxylem	अनुदारु
Microcyclic	लघुचक्री
Micropyle	बीजांडद्वार, अंडद्वार
Microsome	सूक्ष्मकाय
Middle lamella	मध्यपटलिका
Mitochondrion	सूत्रकणिका
Mitosis	समसूत्रण
Molasses	शीरा, मोलैसेज
Monodelphous	एकसंघी
Monandrous	1.एकपुंकेसरी, 2.एकपुंधानिक

Moiliform	मालाकार
Monocarpic	1.एकश:फलनी 2.एककार्पोनियमी
Monocarpellary	एकांडपी
Monoclimax	एकचरम
Monoecious	उभयलिंगाश्रयी
Monophyletic	एकस्रोतोद्भवी
Monotypic	एकलप्ररूपी
Mosaic	किर्मीर, मोजेक
Mother cell	जनक कोशिका
Mucilage	श्लेष्मक, म्युसिलेज
Mucous	श्लेष्मल
Mucronate	तीक्ष्णाग्री, नोकदार
Multiparous	बहुशाखी
Mutant	उत्परिवर्ती
Mutualistic	सहोपकारिता
Mycoplasma	माइकोप्लाज्मा
Mycorrhiza	कवकमूल
Mycotoxin	कवकाविष
Nannandrium	पुंवामन
Nannoplankton	परासूक्ष्मप्लवक
Napiform	कुंभीरूप
Natural selection	प्राकृतिक वरण

Neck canal cell	ग्रीवा नाल कोशिका
Necrosis	ऊतकक्षय
Nectariferous	मकरंदधर
Niche	1.निकेत, 2. कर्मस्थिति, कर्मता
Nitrogen fixation	नाइट्रोजन यौगिकी
Node	पर्वसंधि, गांठ
Nodule	ग्रंथिका
Nomenclatural type	नामपद्धति प्ररूप
Nucellus	बीजांडकाय
Nucleolus	केंद्रिक, न्यूक्लिओलस
Nucleoprotein	केंद्रकप्रोटीन
Nucleotide	न्यूक्लिओटाइड
Nullisomic	शून्यसूत्री
Nullisomy	शून्यसूत्रता
Nyctinasty	निशानुकुंचन
Obcordate	प्रतिहृदयाकार
Obligate	अविकल्पी
Oblique	तिर्यक्, तिरछा
Ochrea	औक्रिया
Okazaki fragment	ऑकाज़ाकी खंड
Oligotrophic	अल्पपोषी
Omnivorous	सर्वाहारी

Oncology	अर्बुदविज्ञान, कैंसरविज्ञान
Ontogenetic	व्यक्तिवृत्तीय
Operator gene	प्रचालक जीन
Operculum	प्रच्छद
Operon	ओपेरॉन
Orchid	ऑर्किड
Organelle	अंगक
Organographic	अंगवर्णनात्मक
Organotrophy	कार्बनिकपोषिता
Ornithophilous	पक्षिपरागित
Osmophilic	उच्चसांद्रतारागी
Osmoregulation	परासरणनियमन
Osmotic potential	परासरण-विभव
Osmotic pressure	परासरण-दाब
Oviparvous	अंडप्रजक, अंडज
Ovoid	अंडाभ, अंडाकार
Ovuliferous	बीजांडधर
Oxybiotic	ऑक्सीजीवी
Oxylophyte	अम्लोद्भिद्
Oxysere	अम्लक्रमक
Pachynema	स्थूलसूत्र
Palaeontology	जीवाश्मविज्ञान, जीवाश्मिकी

Palea	पेलिया, शल्किका
Palisade tissue	खंभ ऊतक
Palmate	हस्ताकार
Palmella stage	श्लेष्मस्थता, पामेला अवस्था
Palynology	परागाणुविज्ञान
Pandemic	सर्वव्यापी
Paniculate	पुष्पगुच्छ
Pappus	रोमगुच्छ
Paraphysis	सहसूत्र
Parenchyma	मृदूतक
Parietal	भित्तीय
Paripinnate	समपिच्छकी
Parthenocarpy	अनिषेफलन
Parthenogenesis	अनिषेकजनन
Pasteurisation	पास्तेरीकरण
Pedicel	वृंत,पुष्पवृंत
Pedicellate	सवृंत
Pedigree	वंशावली
Pedology	मृदा-विज्ञान
Perennial	1.बहुवर्षी, चिरस्थायी 2.सदानीर, बारहमासी
Perianth	परिदलपुंज
Periblem	वल्कुटजन

Pericambium	परिएधा, पेरिकैम्बियम
Pericarp	फलभित्ति
Perichaetium	परिलिंगधानी
Periclinal	परिनतिक, परिनत
Pericycle	परिरंभ
Perigonium	पेरिगोनियम
Permeability	पारगम्यता
Persistent	दीर्घस्थायी, अपाती
Petiolate	पर्णवृंतीय
Petrified	अश्मीभूत
Phagocyte	भक्षकाणु
Perithecium	पेरिथीसियम
Phellem	काग
Phellogen	कागजन
Phenolology	लक्षणविज्ञान
Phosphorescence	स्फुरदीप्ति
Phosphorolysis	फॉस्फोरिक अपघटन
Photolysis	प्रकाश-अपघटन
Photon	फोटॉन
Photoperiod	दीप्तिकाल
Photorespiration	प्रकाश श्वसन
Photosynthesis	प्रकाश-संश्लेषण

photosystem	प्रकाशतंत्र
Phototactic	प्रकाशानुचलित
Phototrophic	प्रकाशपोषित
Phycophage	शैवालभक्षी
Phyllid	पर्णिका
Phylloclade	पर्णाभस्तंभ
Phyllody	पर्णाभता
Phyllome	पर्णोम
phyllotaxy	पर्णविन्यास
Phycobiont	शैवालांश
Physiognomy	रूपाकृतिविज्ञान
Phytochrome	पादपवर्णक, फाइटोक्रोम
Phytotoxic	पादप-आविषालु
Pileus	छत्र
Pinnate	पिच्छाकार
Pinnatified	दीर्घपिच्छाकार
pinnule	पिच्छिका
Pitcher plant	घटपर्णी
Pith	मज्जा, पिथ
Pitted	गर्तमय, गर्तित
Placenta	बीजांडासन
Placentation	बीजांडान्यास

Plankton	प्लवक
Plantation	रोपण
Plasma membrance	जीवद्रव्य कला, प्लैज्मा झिल्ली
Plasmalemma	जीवद्रव्यकला
Plasmodesma	जीवद्रव्यतंतु
Plectostele	पट्टिल रंभ
Pleomorphic	बहुरूपी
Plumule	प्रांकुर
Pneumatophore	श्वसन-मूल
Podsolic soil	पॉडसॉली मृदा
Pollen sac	परागकोष
Pollinator	परागणकारी
Polyandrous	बहुपुंकेसरी
Polyanthous	बहुपुष्पी
Polyarch	बहु-आदिदारुक
Polycarpellary	बहु-अंडपी
Pollinium	परागपिंड
Polycentric	बहुकेंद्री
Polyphyletic	बहुस्रोतोद्भवी
Polyphyllous	1.पृथक्परिदलीय 2.बहुपर्णी
Polysome	बहुमूलिकायुक्त
Polystele	बहुरंभ

Polyxylic	बहुदारुकी
Pomiform	सेवरूप
Population	समष्टि
Population genetics	समष्टि आनुवंशिकी
Pore fungi	छिद्रिल कवक
Post climax	उत्तर-चरम
Post-fertilization	निषेचनोत्तर
Potential water	विभल जल
Pre-climax	प्राक्चरम
Prickle	तीक्ष्णवर्ध
Primitive	आदि, आद्य
Primordial	आद्य, आदिकालिक
Probasidium	पूर्वबेसिडियम, प्रोबेसिडियम
Procambium	प्राक्एधा
Prokaryote (procaryonta)	प्रोकैरियोटा
Procumbent	शयान
Producer	उत्पादक
Progressive	प्रगामी
Proliferation	प्रचुरोद्भवन
Prop root	अवस्तंभ मूल
Propagation	1.संचरण 2.प्रवर्धन
Prophase	पूर्वावस्था

Prophylactic activity	रोगनिरोधी सक्रियता
Proplastid	प्राक्लवक
Prosenchyma	दीर्घ ऊतक, दीर्घोतक
Protandry	पुंपूर्वता
Prothallus	प्रोथैलस
Protocorm	आदिघनकंद, प्रोटोकॉर्म
Protonema	प्रथमतंतु
Protophlome	प्राक्फ्लोएम
Protophyll	आदिपर्ण
Protoplankton	आदिप्लवक
Protostele	ठोसरंभ
Psammophillous	बालुकारागी
Psammophyte	बालुकोद्भिद्
Psammosere	बालुकीयक्रमक
Pseudo-axillary	कूटकक्षीय
Pseudocapillitium	आभासी तंतुजाल, आभासी कैपिलिशियम
Pseudoelater	आभासी इलेटर
Pseudoembryo	आभासीभ्रूण
Pseudogamy	आभसीतंतु
Pterocarpous	पक्षफली
Pulp	मज्जा, गूदा, लुगदी
Pulsation	स्पंदन

Pulvinate	तल्पयुक्त
Punctate	बिंदुकित
Pure bred	शुद्ध वंशज
Pure culture	1.शुद्ध संवर्ध 2.शुद्ध संवर्धन
Pure line	शुद्ध वंशक्रम
Putrefaction	पूयन, सड़न, पूतीभवन
Pycnospore	पिक्नोबीजाणु
Pycnoxylic	घनदारुक
Pyrenoid	पायरीनॉइड
Quadrant	चतुर्थांश
Quadrat	वर्गजालिका, क्वाड्रैट
Quantasome	क्वांटासोम
Quarantine	संगरोध, क्वारंटाइन
Quiescent cell	प्रशांत कोशिका
Quincuntial	पंचकी
Racemose	असीमाक्षी
Rachis	प्राक्ष, रैकिस
Radial	अरीय
Ramal	शाखीय
Ramiform	शाखारूप
Range	1.परास 2.परिसर 3.चरागाह गोचर
Raphe	रैफी

Raphide	रैफाइड
Ray floret	अर-पुष्पक
Reciprocal	व्युत्क्रम, अन्योन्य, पारस्परिक
Recapitulation	पुनरावर्तन
Recessive	अप्रभावी
Recombination	पुनर्योजन
Reed	नरकुल, रीड
Regenerartive cell	पुनरुत्पादक कोशिका
Regma	रेग्मा
Regression	1.पश्चगमन 2.प्रतिक्रमण
Regulator gene	नियामक जीन
Reniform	वृक्काकार
Repression	दमन
Resolving power	विभेदन क्षमता
Resource	1.संसाधन, 2.संपदा
Restriction enzyme	प्रतिबंधन एन्जाइम
Retrose	पश्चमुखी
Reversion	प्रत्यावर्तन
Revolute	कोरकुंचित
Rheotaxis	धारानुचलन
Rhizogen	मूलजनक
Rhizomorph	तंतुजटा

Rhizophore	राइजोफोर
Rhomboidal	चतुष्कोणी
Rhythm	1.लय, ताल 2.आवर्ति
Rogue	1.अवांछित 2.अपप्ररूप (वर्गिकी)
Rosette	रोजेट
Rudiment	आद्यंग, आद्यवशेष
Ruminate endosperm	चर्बिताभ भ्रूणपोष
Saccate	सपुट
Saccharification	शर्करीयण
Saccule	कोषक, थैलिका
Sagittate	बाणाकार
Sand culture	बालुकी संवर्ध, बालुकी संवर्धन
Sap wood	रसदारू
Sarcotesta	मांसल चोल
Scandent	आरोही
Schizocarp	भिदुरफल
Scion	कलम
Sciophilous	छायारागी
Sclerenchyma	दृढ़ोतक
Sclerotesta	दृढ़ चोल
Secondry growth	द्वितीयक वृद्धि, गौण वृद्धि
Sedentary	स्थानबद्ध

Seed fern	बीजी पर्णांग
Segregation	संपृथकन, विसंयोजन
Seismonasty	कंपानुकुंचन
Self-pollination	स्वपरागण
Sempervirens	नितहरित
Senescence	जीर्णता
Sepsis	पूतीयन, सजर्मता
Septicidal	पटविदारक
Sere	क्रमक
Sereclimax	क्रमीचरम
Sericulture	पंक्तिबद्ध रेशम
Serrate	क्रकची
Serrule	सूक्ष्मक्रमक
Serum	सीरम
Sessile	अवृंत
Sewerage	मल-व्यवस्था
Sex linkage	लिंग सहलग्नता
Short day plant	अल्पप्रदीप्तिकाली पौधा
Sibling	सहोदर
Sieve plate	चालनी पट्टिका
Sieve tube	चालनी नलिका
Sigmoid	अवग्रहरूपी, सिग्मारुपी

Silicicolous	चकमकवासी, सिलिकावासी
Silviculture	वनवर्धन
Siphonostel	नालरंभ
Slime	अवपंक
Smog	धुहासा, धुमकुहा
Smudge	1.धब्बा 2.श्याम चित्ति
Soil profile	मृदा परिच्छेदिका
Sol	विलय, सॉल
Solenostele	नलीरंभ
Solenostelic	नलीरंभीय
Solum	संमृदा, सोलम
Southern blotting	सदर्न शोषण, सदर्न ब्लॉटिंग
Spathe	स्पेथ
Speciation	जाति-उद्भवन
Species	जाति, स्पीशीज
Specific epithet	जातिय संकेत पद
Spermatangium	अचलपुमणुधानी
Spermatium	अचलपुमणु
Spermocarp	निषिक्तांडफलिका
Spicula	कंटिका
Spike	कणिश
Spindle	तर्कु

Spinose	शूलमय
Spontaneous	स्वतः
Sporangiophore	बीजाणुधानीधर
Sporangium	बीजाणुधानी
Sporocarp	बीजाणु-फलिका
Sporulation	बीजाणुजनन
Spur	दलपुट
Squamose	शल्कसम
Staining	अभिरंजन
Stalk	वृंत
Stamen	पुंकेसर
Staminode	बंध्य पुंकेसर
Standard deviation	मानक विचलन
Stele	रंभ
Stellate	ताराकार
Sterigma	प्रांगुल
Sterile	1.बंध्य, 2.अनुर्वर 3.निर्जर्म, रोगाणुहित
Stilt root	अवस्तंभ मूल
Stimulus	1.उद्दीपन 2.उद्दीपक
Stipel	अनुपर्णिका
Stock culture	स्टॉक संवर्धन
Stolon	भूस्तारी

Stomium	रंध्रक, मुख
Stone cell	दृढ़ कोशिका
Stratified	स्तरित
Strobilus	शंकु
Stroma	पीठिका
Struggle fore existence	जीवन-संघर्ष
Sublethal	अवघातक
Subsidiary cell	सहायक कोशिका
Subsoil	अवमृदा
Subterranean	भूमिगत
Succession	अनुक्रम, अनुक्रमण
Succulent	गूदेदार, मांसलोद्भिद
Sucker	अंतः भूस्तारी
Supernatant	अधिप्लवी
Suppressor gene	निरोधक जीन
Surface tension	पृष्ठ तनाव
Survival	उत्तरजीविता, अतिजीविता
Susceptibility	सुग्राहिता
Suspensor	निलंबन
Symbiosis	सहजीवन, सहजीविता
Sympodium	संधिताक्ष
Synangium	संधानी, संबीजाणुधानी

Syncarpous	युक्तांडपी
Syndrome	संलक्षण
Syngamy	युग्मक-संलयन
Synonym	पर्यायनाम
Synergid	सहायकोशिका
Tapetum	टेपीटम
Taxis	अनुचलन
T-distribution	टी-वितरण
Tegmen	प्रवार, टेगमेन
Teleutosorus (teliosorus)	टेल्यूटोबीजाणुधानी पुंज, टेल्यूटोसोरस
Telome	टीलोम
Telomere	अंतखंड
Telophase	अंत्यावस्था
Tendril	प्रतान
Tepal	परिदल
Terminalization	उपांतीभवन
Terminator codon	समापक कोडॉन
Test cross	परीक्षार्थ संकरण
Testa	बीजचोल
Tetradynamous	चतुर्दीर्धी
Tetraploid	चतुर्गुणित
Thalamus	पुष्पासन

Theca	प्रावरक
Thylakiod	थायलेकॉइड
Timber line	वृक्ष सीमा
Tissue culture	ऊतक संवर्धन
Tomentose	घन-रोमिल
Topography	स्थलाकृति
Torus	पुष्पासन
Totipotent	पूर्णशक्त
Toxin	आविष
Toxid	आविषाभ
Trabecula	संबंधक
Tracheidal	वाहिनिकीय
Transamination	पार ऐमीनन
Transcription	अनुलेखन
Transduction	पारक्रमण
Transformation	रूपांतरण
Transfusion cell	संचरण-कोशिका
Transgenic	पारजीनी
Transpiration	वाष्पोत्सर्जन
Triarch	त्रिआदिदारुक
Tribe	उपकुल, संवर्ग
Trichome	त्वचारोम

Trihybrid	त्रिसंकर
Trilete	त्रि-अरीय
Trisomic	त्रिगुणित
Trivial name trisomic	रूढ़ नाम, एकाधिसूत्री
Tube cell	नली कोशिका
Tumour	अर्बुद
Tunica	कंचक
Turbid	आविल
Turgid	स्फीत
Turgor	स्फीति
Umbel	पुष्पछत्र
Urceolate	कुंभाकार
Undershrub	उपक्षुप
Uniparous	एकशाखी
Univalent	एकसंयोजी
Uracil	यूरेसिल
Uredospore (=urediospore)	यूरीडोबीजाणु
Vacuolation	रसधानीयन
Valvate	कोरस्पर्शी
Variegated	शबल, शबलित
Variety	किस्म
Vegetation	वनस्पति, पेड़-पौधे

Vegetative cell	कायिक कोशिका
Veil	गुंठिका
Velamen	आर्द्रताग्राही
Venation	शिराविन्यास
Ventral canal cell	अंडधा नाल कोशिका
Vermiculate	कृमिल
Vermiform	कृमिरूप
Vernalization	वसंतीकरण
Vernation	किसलय-विन्यास
Versatile	मुक्तदोली
Verticillaster	कूटचक्रक
Vexillum	1.ध्वजक 2.पिच्छ-फलक
Virulence	उग्रता
Virus	विषाणु
Vitality	जीवनशक्ति
Wart	किणक, मस्सा
Water bloom	जल प्रस्फुटन
Weathering	अपक्षय, अपक्षयण
Weed	खरपतवार, अपतृण
Weedicide	अपतृणनाशी, खरपतवारनाशी
Whiplash type	प्रतोद प्रकार
Wilting co-effcient	म्लानि गुणांक

Wood parenchyma	दारु-मृदूतक
Xanthophylls	पर्णपीत, जैन्थोफिल
Xenia	1.अपर पराग-प्रभाव, 2.अतिप्रबलता,
xerocolous	मरुवासी
Xerophile	मरुरागी
Xerophyte	मरुद्भिद्
Xerosere	मरुक्रमक
Xylocarpous	काष्ठफली
Xylotomy	दारुशारीर
Yeast	खमीर, यीस्ट
Yield	उत्पाद, लब्धि, उपज
Zone of elongation	दीर्घीकरण क्षेत्र
Zoospore	अलैंगिक चलबीजाणु
Zygospore	युग्माणु
Zygotene (zygonema)	युग्मपट्ट (युग्मसूत्र)
Zygote	युग्मज

ग्राहक फार्म

सेवा में :

अध्यक्ष,

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,

पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110066

महोदय,

कृपया मुझे "विज्ञान गरिमा सिंधु" (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए ..... से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

(हस्ताक्षर)

	सामान्य ग्राहकों / संस्थाओं के लिए	विद्यार्थियों के लिए
प्रति अंक	रु. 14.00	रु. 8.00
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	रु. 30.00
पाँच वर्ष	रु. 250.00	रु. 150.00
दस वर्ष	रु. 500.00	रु. 300.00
बीस वर्ष	रु. 1000.00	रु. 600.00

डिमांड ड्राफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकांउट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी हैतो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करे :

कृपया डिमांड ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम और पता लिखें

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री ..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ..... विभाग का छात्र/की छात्रा है।

(हस्ताक्षर)

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)

(मोहर)

प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र

Sales Counters of Department of Publication

1.	**किताब महल** प्रकाशन विभाग, बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एम्पोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली-110001	**Kitab Mahal** Department of Publication, Baba Kharag Singh Marg, State Emporia Building, Unit No.-21, New Delhi-110001
2.	**बिक्री पटल** प्रकाशन विभाग, उद्योग भवन, गेट न.-3, नई दिल्ली-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Udyog Bhawan, Gate No.-3, New Delhi-110001
3.	**बिक्री पटल** प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली-110001	**Sale Counter** Department of Publication, Union Public Service Commission, Dholpur House, New Delhi-110001
5.	**बिक्री पटल** प्रकाशन विभाग, सी.जी.ओ.काम्पलेक्स, न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई-400020	**Sale Counter** Department of Publication, C.G.O. Complex, New Marine Lines, Mumbai-400020
6.	**पुस्तक डिपो** प्रकाशन विभाग, के.एस.राय मार्ग, कोलकाता-700001	**Pustak Depot,** Department of Publication, K. S. Roy Marg, Kolkata-700001s

आयोग का बिक्री केंद्र

Sales Counter of CSTT

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मंत्रालय पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066	Commission for Scientific and Technical Terminology Ministry of Education West Block-VII, R. K. Puram, New Delhi-110066

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

For detailed information please contact:

प्रभारी अधिकारी (बिक्री) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 फोन नं.-011&26105211/विस्तार-24	The Officer-in-Charge (Sales) Commission for Scientific and Technical Terminology Ministry of Education West Block-VII, R. K. Puram, New Delhi-110066 Ph. No.-011-26105211/ Extn.-246

लेखकों के लिए निर्देश-

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें। लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करें तथा प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
6. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं।
7. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
8. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र-व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है। अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएँगे। अतः लेखक रुपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
9. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 2500/- रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
10. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:
11. अपने लेख E-mail द्वारा तथा CD में भी (फॉन्ट के साथ) आयोग को भेज सकते है।
12. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजें।

संपादक,
विज्ञान गरिमा सिंधु